दक्खिनी हिन्दी
का
उद्भव और विकास

डा० श्रीराम शर्मा
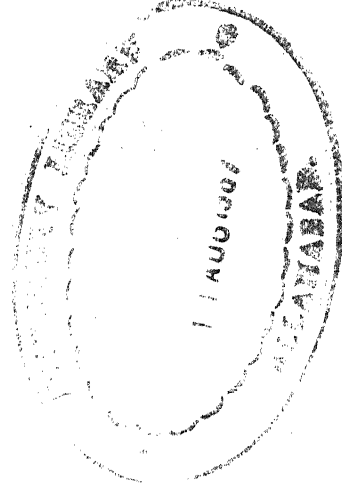
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
श्री गोपालचन्द्र सिंह
सचिव
प्रथम शासन-निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रथम संस्करण
मूल्य १२.००
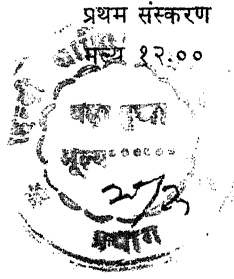
मुद्रक
श्री रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

भाषाशास्त्र-वेत्ता
डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी को
सादर समर्पित

भाषाशास्त्र-वेत्ता
डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी को
सादर समर्पित

प्रकाशकीय

हिन्दी भाषा के रूप को परिनिष्ठित एवं स्वाभाविक बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय तथा जनपदीय बोलियों के अध्ययन की परम आवश्यकता है। भाषाविदों ने इस अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव भी किया है और हिन्दी भाषा के सर्वांगीण अध्ययन के लिए उसकी उपभाषाओं और जनपदीय बोलियों के अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। इस सन्दर्भ में पूर्वी, पश्चिमी तथा उत्तरी क्षेत्र की प्रमुख उपभाषाओं और बोलियों के अध्ययन प्रकाशित भी हो चुके हैं, किन्तु दक्खिनी हिन्दी पर अभी तक ऐसा कोई सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत नहीं हो सका, जो हिन्दी भाषा के इस अभाव की पूर्ति कर सके।

हमें हर्ष है कि डा० श्रीराम शर्मा ने प्रसिद्ध भाषाशास्त्रविद् डा० विश्वनाथ जी के निर्देशन में "दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास" लिखकर इस अभाव की पूर्ति करने का सुयश प्राप्त किया है। इस ग्रन्थ का विषय दक्खिन की उस बोली से सम्बद्ध है जिसमें लगभग पाँच सौ वर्ष का लिखा हुआ साहित्य है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय दक्खिनी हिन्दी का अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह बोली उत्तर भारत की हिन्दी से निकलकर दक्खिन के उस क्षेत्र में विकसित होती है जहाँ तेलुगु, तमिल और मराठी भाषाओं का संगम है। जहाँ इस बोली के विकास में तमिल, तेलुगु और मराठी भाषियों का योगदान है वहीं मध्य एसिया के अरब, ईराक, ईरान देशों से आने वाले साधकों, विचारकों और कवियों ने भी इसी बोली को अपना माध्यम बनाया है।

इस दृष्टि से इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित कर सम्मेलन अपने को गौरवान्वित समझ रहा है। आशा है, भाषाओं, बोलियों पर अध्ययन करने वाले शोधकों एवं भाषातत्ववेत्ताओं के लिए यह कृति उपादेय सिद्ध होगी।

गोपालचन्द्र सिंह
सचिव

प्राक्कथन

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी के सर्वांगपूर्ण अध्ययन के लिए उसकी उपभाषाओं और मुख्य-मुख्य बोलियों का अध्ययन कितना महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से हिन्दी के प्रामाणिक व्याकरण और शब्द-कोश के निर्माण के लिए तो इस प्रकार का अध्ययन अनिवार्य ही है। हिन्दी का जो परिनिष्ठित और परिष्कृत रूप इस समय साहित्य में प्रयुक्त हो रहा है, वह किसी एक नगर, जनपद अथवा दो-चार जिलों में विकसित नहीं हुआ है। उसके विकास में सदियों से समस्त देश का योग रहा है। असाधारण ज्ञानी और दार्शनिक से लेकर सामान्य किसान तक सभी ने इस भाषा के शब्द-भंडार को समृद्ध किया है। जहाँ तक शब्दावली का सम्बन्ध है, इसका साहित्यिक रूप पूर्णतया संस्कृत का ऋणी है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अँग्रेजी भाषा का योगदान महत्वपूर्ण है। देश की हिन्दीतर भाषाएँ भी अनेक क्षेत्रों में अपने चिन्तन का सारभाग हिन्दी को प्रदान करती रही हैं, किन्तु इन नाना दिशाओं से पोषण ग्रहण करते हुए भी हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की परम्परा अविच्छिन्न रही है। यह मानी हुई बात है कि वक्ता या लेखक जिस क्षेत्र में निवास करता है, वहाँ की बोली प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उसकी वाणी को सँवारती है। ये बोलियाँ इस समय भी विकास की ओर अग्रसर हो रही हैं और अपनी विकास-शीलता के कारण भाषा के साहित्यिक रूप को अभिनव, समृद्धि और शक्ति प्रदान करती हैं। कबीर, नानक, जायसी, तुलसी और सूरदास की भाषा में जो सहजता है, गंभीर से गंभीर भावों की अभिव्यक्ति में जो ऋजुता है, वह इन्हीं बोलियों की देन है। प्रेमचन्द की भाषा का प्रवाह तथा प्रांजलता 'लमही' के आसपास की जन-बोली से सुरंजित है। झाँसी के आसपास की बोली से श्री वृन्दावनलाल वर्मा की रचनाओं का शृंगार तो हुआ ही है, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अमरवाणी भी उससे अलंकृत हुई है। इन्हीं सब कारणों से भाषायी अध्ययन तथा प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य के अवगाहन के लिए जनसमाज में प्रचलित बोलियों का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। भविष्य में हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को सजीव तथा अकृत्रिम बनाये रखने के लिए इन बोलियों का योगदान और भी महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

हिन्दी से सम्बन्धित पूर्वी बोलियों के अध्ययन में डाक्टर ए० एफ० रूडोल्फ हार्नली तथा जी० ए० ग्रिअर्सन ने सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व बहुत परिश्रम किया था। इस शताब्दी के आरंभ में कई भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। इन विद्वानों में डाक्टर बाबूराम सक्सेना अग्रणी हैं, जिनके अवधी से सम्बन्धित भाषावैज्ञानिक अध्ययन से नई दिशा का निर्धारण हुआ। बिहार प्रदेश के शासन ने भी मेरे निर्देशन में वहाँ की बोलियों के अध्ययन तथा सर्वेक्षण का प्रवर्तन किया था।यह कार्य अब भी हो रहा है। डाक्टर उदयनारायण तिवारी का भोजपुरी-सम्बन्धी ग्रन्थ

हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। पूर्वी बोलियों के अध्ययन में लोक-गीतों के प्रामाणिक संकलनों से भी सहायता मिली है।

इधर हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियों की ध्वनियों का सर्वाङ्गीण अध्ययन हो रहा है। भारतीय विद्वानों में सर्वप्रथम डाक्टर मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' ने इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया था। इसी प्रकार मैंने भोजपुरी ध्वनियों का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया, जो प्रयोगात्मक प्रणालियों पर आधारित है।

पूरब की बोलियों पर देश-विदेश के अनेक भाषा-वैज्ञानिकों के अध्ययन से हम लोग लाभान्वित हुए हैं ; किन्तु पछाँह की अधिकांश बोलियाँ अब भी अनुसन्धाताओं की प्रतीक्षा कर रही हैं। पंजाबी और व्रज को छोड़ कर अन्य बोलियों पर कोई विशेष काम अभी नहीं हुआ है। पछाँही बोलियों का विश्लेषण इसलिए भी आवश्यक है कि हिन्दी के वर्तमान परिनिष्ठित रूप के विकास में उनका व्यापक आधार रहा है।

पछाँह की बोलियों से दक्खिनी का घनिष्ट सम्बन्ध है। हिन्दी ही नहीं उर्दू के साहित्यिक परिनिष्ठित रूप के अध्ययन के लिए भी इन बोलियों का अध्ययन आवश्यक है। इसका एक कारण तो यह है कि परिनिष्ठित हिन्दी या उर्दू के अध्ययन के लिए हमारे पास १८ वीं सदी से पहले की लिखित सामग्री बहुत कम है, जब कि दक्खिनी में १४ वीं सदी से लेकर १८ वीं सदी तक पाँच सौ वर्षों में लिखा हुआ समृद्ध साहित्य है। दूसरा कारण यह है कि हिन्दी से सम्बन्धित इस बोली का विकास उत्तर से हट कर दक्षिण के उस क्षेत्र में हुआ, जहाँ दक्षिण भारत की दो बड़ी गौरव-शाली भाषाएँ—तेलुगु तथा कन्नड़—बोली जाती हैं। इस बोली के विकास में गुजराती और मराठी ने भी सहायता की है। अरब, ईरान तथा मध्य-एशिया के देशों से आनेवाले साधकों और विचारकों के भाव-वहन करने का अवसर इस बोली को प्राप्त हुआ।

अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल में अमीर ख़ुसरो ने हिन्दी के उस रूप को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का यत्न किया था, जो क्षेत्रीय और जनपदीय प्रभावों से उठकर एक व्यापक क्षेत्र की भाषा के रूप में परिणत होता जा रहा था। अमीर ख़ुसरो के पश्चात् कई कारणों से उत्तर भारत में इस भाषा को विकास का पूरा-पूरा अवसर नहीं मिल सका, जब कि राजस्थानी, मैथिली, अवधी और ब्रजभाषा ने १४ वीं शती से १८ वीं शती तक चरम उन्नति की। इसके विपरीत दक्षिण भारत में अमीर ख़ुसरो की मृत्यु के थोड़े ही समय बाद उसका विकास प्रारंभ हो गया। आरंभ में ही इसे ख़ाजा बन्दे नवाज गेसूदराज (१३२२ ई०—१४२३ ई०) जैसे प्रभावशाली साधक के विचारों को व्यक्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुहम्मद कुली कुत्ब-शाह (१५८१ ई०–१६११ ई०) और द्वितीय अली आदिलशाह (शासन-काल १६५६ ई०–१६७३ ई०) जैसे शासकों ने दक्खिनी में कविता लिखी और इसके लेखकों को आश्रय दिया। वजही (१६ वीं शती का पूर्वार्द्ध), गवासी (मृत्यु १६५० ई०), नुसरती (मृत्यु १६८० ई० के आसपास) और इब्ने निशाती (१६१० ई०–१६६० ई० के लगभग) जैसे यशस्वी कवियों की आम रचनाएँ इस बोली को उपलब्ध हुईं।

अब भी दक्षिण भारत में, विशेष रूप से आन्ध्र, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य में लाखों

नर-नारी घर में इस बोली का उपयोग करते हैं। कुछ लोग कविता भी लिखते हैं। इस बोली का लोक-साहित्य समृद्ध है। जनता आज भी इसके लोक-साहित्य में पहले की तरह रस लेती है। इस बात की बहुत आवश्यकता है कि दक्खिनी का उत्कृष्ट साहित्य आवश्यक टिप्पणियों के साथ हिन्दी में प्रकाशित हो।

इस शोध-प्रबन्ध के लेखक डाक्टर श्रीराम शर्मा ने सौ से अधिक लेखकों का परिचय अपनी पुस्तक 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' में दिया था। इस पुस्तक में लेखकों की रचना के नमूने संकलित हैं। वजही की कालजयी रचना 'सबरस' और 'अली आदिलशाह का काव्य संग्रह' ये दोनों महत्वपूर्ण ग्रन्थ इन्हीं के प्रयास से हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय के 'कन्हैयालाल माणिकलाल हिन्दी विद्यापीठ' के तत्वावधान में तैयार किया गया था, जिस पर १९६० ई० में आगरा विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की थी। दक्खिनी का विवेचन करते समय यथास्थान हिन्दी से सम्बन्धित विविध बोलियों और मराठी, गुजराती तथा द्रविड़ कुल की भाषाओं के साथ उसकी तुलना की गई है। यह जानकारी हिन्दी-भाषा के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगी।

इस ग्रन्थ के सुविज्ञ लेखक ने दक्खिनी के अध्ययन में व्यापक दृष्टि और विवेक से काम लिया है। भाषा के साथ ही साथ उन्हें साहित्य की भी मर्मज्ञता है। दक्खिनी के शोधकार्य में उनकी साधना पूर्णतः सफल हो।

यू० जी० सी० भवन
मथुरा रोड
नई दिल्ली
२१ जनवरी, १९६४ ई०

विश्वनाथप्रसाद
निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत शासन

कृतज्ञता

दक्खिनी के अध्ययन के लिए मुझे जिन विद्वानों से अत्यधिक प्रेरणा और सहायता मिली है, उनमें से चन्द्रबलीजी पाँडे और राहुलजी अब संसार में नहीं हैं।

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी और डाक्टर रामविलास शर्मा से सदैव अभीष्ट सहायता प्राप्त करता रहा हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूपरेखा श्री पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी के परामर्श से तैयार की गई।

आगरा विश्वविद्यालय के क० मा० मुंशी हिन्दी विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक (अब केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के हिन्दी निदेशालय के निदेशक) डाक्टर विश्वनाथप्रसादजी के निर्देशन में यह प्रबन्ध तैयार हुआ। इस प्रबन्ध के प्रस्तुतिकरण में अनुसन्धाता से अधिक पथ-प्रदर्शक को चिन्ता का भार वहन करना पड़ा। कठिनाइयों के निराकरण में वे अग्रसर रहे। आदरणीय गुरु के अकृत्रिम मधुर स्वभाव, मनस्विता और सहायता की सहज प्रवृत्ति के कारण अनुसन्धान ने किसी क्षण भी दुविधा उपस्थित नहीं की। इस प्रकार के आदर्श गुरु की उपलब्धि पूर्वार्जित पुण्य का परिणाम मानता हूँ।

आगरा विश्वविद्यालय के क० मा० विद्यापीठ के श्री उदयशंकर शास्त्री का स्नेह सदैव सहायक रहा। श्री भगतरामजी गुप्त (सेडमल भगतराम व्यापारिक प्रतिष्ठान के एक संचालक) और श्री डाबर (प्रिन्सिपल, गवर्नमेन्ट आर्ट्स ऐण्ड साइन्स कालेज, गुलबर्गा) ने टेपरिकार्डर तथा अन्य उपकरणों से सहायता की। श्री माणिकराव ने मानचित्र बनाया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इस प्रबन्ध को प्रकाशनार्थ स्वीकार किया। सम्मेलन द्वारा रचना का प्रकाशन हिन्दी के किसी भी लेखक के लिए गौरव की बात है। सम्मेलन के विशेष कार्याधिकारी श्री विद्या भास्कर, सहायक मंत्री श्री रामप्रतापजी त्रिपाठी शास्त्री और प्रकाशन-विभाग के श्री देवदत्त शास्त्री ने प्रबन्ध के प्रकाशन में अत्यधिक रुचि ली। इन तीनों महानुभावों और सम्मेलन मुद्रणालय के कार्यकर्ताओं के कारण प्रबन्ध इतने अच्छे रूप में प्रकाशित हो रहा है। प्रबन्ध में सर्वत्र अन्य लेखकों, विद्वानों के विचारों से पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है।

इस प्रबन्ध के लेखन-प्रकाशन और दक्खिनी के अध्ययन में जिन लोगों से याचित-अयाचित सहायता मिली है, उन सब के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

श्रीराम शर्मा

संकेत

अ ना	— अलीनामा (नुसरती)
अप	— अपभ्रंश
अ फ़ा	— अरबी-फ़ारसी
अली	— अली आदिल शाह (द्वितीय) (काव्य संग्रह)
आ द्र	— आदि द्रविड़ भाषा
आ भा आ	— आदि भारतीय आर्य भाषा
इ अ	— इवोल्यूशन ऑफ़ अवधी (डाक्टर बाबूराम सक्सेना)
इ इ	— मसनवी इसरारे इश्क़ (मोमिन दक्कनी)
इ ना	— इर्शाद नामा (शाह् बुरहानुद्दीन जानम)
ए व	— एकवचन
ओ डे बें	— ओरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ़ बंगाली लैंग्वेज (चटर्जी)
कं ग्रा आ	— कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ आर्यन लैंग्वैजेस (बीम्स)
कं ग्रा गौ	— कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ गौडियन लैंग्वेजेस (हार्नली)
कं ग्रा द्र	— कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ द्रविडियन लैंग्वेजेस (काल्डवेल)
कं ग्रा प्रा	— कम्परेटिव ग्रामर ऑफ़ प्राकृत लैंग्वेजेस (पिशेल)
क अ मा	— कहानी अशरफ़ियों की माला
क इ पा	— कहानी इन्दर पाशाज़ादी
क चो श	— कहानी चोर शाहज़ादे
क जा प	— कहानी जादू का पत्थर
क नौ हा	— कहानी नौसर हार
क प श	— कहानी परियों की शाहज़ादी
क भा ब	— कहानी भाई बहन
क ल पु	— कहानी लकड़ी की पुतली
क ला प	— कहानी लाल परी
क स पा	— कहानी सबर पाशा
क सा भा	— कहानी सात भाइयों की
क सि ब	— कहानी सिपै की बेटी
क़ु क़ु	— कुल्लियात मुहम्मद कुली क़ुत्बशाह्
क़ु मु	— क़ुत्ब मुश्तरी (वजही)

कृ	— कृदन्त
ख बो	— खड़ी बोली
ख़तीब	— 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' में ख़तीब की दो कविताएँ।
खु ना	— ख़ुशनामा (मीरांजी शम्सुल उश्शाक़)
गी	— गीत
गुल	— गुलशने इश्क़ (नुसरती)
च मा	— क़िस्सा चन्द्र बदन व माहियार
टे रि	— टेप रिकार्ड
त	— तद्धित
त ह्	— तर्जुमा नाम ए हक़ (वली दकनी)
द	— दक्खिनी
द हि	— दक्खिनी हिन्दी (डाक्टर बाबूराम सक्सेना)
न द्रा	— नव्य द्राविड
न ना	— नजात नामा (अयागी)
न भा आ	— नव्य भारतीय आर्य भाषा
पं	— पंजाबी
पं ना	— पंछीनामा (वजदी)
प हि	— पच्छिमी हिन्दी
पु	— पुल्लिग
पू हि	— पूरबी हिन्दी
प्रा	— प्राकृत
प्रा प्र	— प्राकृत प्रकाश (वररुचि)
प्रा व्या	— प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्र)
फूल	— फूलबन (इब्ने निशाती)
ब व	— बहुवचन
बो	— बोली, बोलचाल
भा आ हिं	— भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (चटर्जी)
म द्र	— मध्यकालीन द्रविड भाषा।
म ल	— मनलगन (बहरी)
मरा	— मराठी
मे आ	— मेराजुल आशक़ीन (ख़ाजा बन्दे नवाज़)
राज	— राजस्थानी
ला फा म	— ला फ़ार्मेशन दे ला लैंग्वा मराथे (जूल ब्लाक)
लो गी	— लोक-गीत

सब	— सबरस
सु सु	— सुख सुहेला (शाह बुरहानुद्दीन जानम)
स्त्री	— स्त्रीलिंग
शा म व्या	— शास्त्रीय मराठी व्याकरण (दामले)
हि फो	— हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स (डाक्टर क़ादरी 'ज़ोर')।
हि भा इ	— हिन्दी भाषा का इतिहास (डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा)
हुसेनी	— (दर मनाक़बत अब्दुल क़ादर)

विषय-सूची

पूर्वपीठिका

गोदावरी तथा कृष्णा के बीच का प्रदेश भारतीय इतिहास के अनेक गौरवपूर्ण पृष्ठों से सम्बन्ध रखता है। हमारे विशाल देश के चतुर्दिकव्यापी विस्तृत अन्तिम छोरों को राजनीतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक साम्य प्रदान करना मनीषियों के लिए ही नहीं, आयुधजीवियों के लिए भी दुस्साध्य कार्य रहा है, किन्तु अनेक ज्ञात-अज्ञात कारणों से इतिहास के आरंभिक काल से यह साम्य बहुत सी बातों में विद्यमान है। देश-विदेश के विद्वान् अनेक प्रकार से उत्तर तथा दक्षिण के विभेदों को गत सौ वर्षों से प्रस्तुत करते रहे हैं, किन्तु नृवंश, जाति, भाषा, मान्यता, सामाजिक संगठन और परम्परा की दृष्टि से उत्तर-दक्षिण अथवा आर्य और द्रविडों की पृथकता के जितने उदाहरण इतिहास, तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और नृवंश-शास्त्र के पृष्ठों में अंकित हैं, उनसे अधिक उदाहरण देश के प्राचीन वाङमय तथा जन-जीवन में उपलब्ध हैं, जो उत्तर तथा दक्षिण की विभाजक रेखा के अस्तित्व की साक्षी नहीं देते। उत्तर-दक्षिण के विभिन्न जन-समूहों में अभिन्नता और साम्य के अनेक उपकरण क्रियाशील रहे हैं। इस अभिन्नता और साम्य की स्थापना में गोदावरी-कृष्णा के मध्य में स्थित भू-प्रदेश ने महत्वपूर्ण योग दिया है। पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई विन्ध्य और सतपुड़ा की अगम्य शृंखलाओं को दोनों ओर के अगणित अगस्त्यों ने पदयात्रा के युग में पराजित किया था। उसी युग से गोदावरी-कृष्णा का भू-प्रदेश सामाजिक व्यवस्था, मानवी भावों और चिन्तन के क्षेत्र में दक्षिणी समुद्रतट से कावेरी की उपत्यका तक किये गये महत्वपूर्ण अनुष्ठानों का सम्बन्ध सिन्धु, शतद्रु, वितस्ता, गंगा, यमुना और सरस्वती के तीर पर अनुष्ठित साधनाओं तथा प्राप्त सिद्धियों के साथ स्थापित करता रहा है।

दक्षिण : दक्षिणापथ

उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में अन्य तीन दिशाओं के निवासियों की भांति दक्षिण-निवासियों का भी उल्लेख मिलता है। प्राचीन साहित्य में दक्षिणापथ और दक्षिण शब्द का प्रयोग केवल दिशावाची नहीं है। दक्षिण के विभिन्न प्रान्तों और निवासियों से महाकाव्य-काल के मनीषी परिचित थे। आरंभ में "दक्षिणापथ" शब्द का प्रयोग उस मार्ग के लिए किया जाता था जो विन्ध्याटवी से दक्षिण की ओर जाता था। कुछ काल के पश्चात् इस पथ के आसपास बसे हुए प्रदेश के लिए "दक्षिणापथ" शब्द का प्रयोग होने लगा। जब नल-दमयन्ती विपत्ति के समय दण्डकारण्य और उससे सम्बन्धित लघु-लघु अरण्यानियों को पार कर दक्षिण की ओर अग्रसर हुए तो वे दोनों ऐसे स्थल पर पहुँचे, जहां अनेक मार्गों का सम्मिलन होता था। एक मार्ग विदर्भ को जाता था, दूसरा

कौसलों के प्रदेश को। दक्षिणापथ की ओर जानेवाले अनेक मार्ग वहां से प्रारंभ होते थे।[1] इस प्रकार महाभारत काल में "दक्षिणापथ" शब्द विशेष प्रान्त के लिए प्रयुक्त होने लगा था। दक्षिण के द्रविड़ो का प्रदेश दक्षिणापथ से भिन्न था। कोप भवन में रोष प्रकट करती कैकेयी के समाश्वासन के लिए महाराज दशरथ ने कहा था "द्रविड़, सिन्धु-सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, वङ्ग, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और कौसल के पास जो धन-धान्य है, सब तुम्हें दे सकता हूं।"[2]

गुप्तकाल में नर्मदा से लेकर कन्याकुमारी तक की भूमि "दक्षिणापथ" मानी जाती थी। राजशेखर (८८०–९२० ई०) ने आर्यावर्त्त तथा दक्षिणापथ की सीमा माहिष्मती नगरी को माना है।[3] इन्दौर से चालीस मील दक्षिण नर्मदा के तट पर अवस्थित महेश्वर माहिष्मती नगरी थी। इन सब उल्लेखों से पता चलता है कि दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा नर्मदा बनाती थी किन्तु दक्षिण में उसकी सीमा निश्चित नहीं थी। महाकाव्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन दिनों दक्षिणापथ की दक्षिणी सीमा आन्ध्र से मिली हुई थी।

वाल्मीकि रामायण में कुछ स्थानों पर दक्षिणवासियों के लिए "दाक्षिणात्य" शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि दक्षिण के निवासी रामायण काल में एक नाम से

---

१. एते गच्छन्ति बहवः पन्थानो दक्षिणापथम्
अवन्तीमृक्षवन्तं च समतिक्रम्य पर्वतम्
एष विन्ध्यो महाशैलः पयोष्णी च समुद्रगा
आश्रमाश्च महर्षीणाममी पुष्पफलान्विताः
एष पन्था विदर्भाणामयं गच्छति कोसलान्
अतः परंच देशोऽयं दक्षिणे दक्षिणापथः
—महाभारत ३।५८।२०—२२

२. द्रविडाः सिन्धुसौवीराः सोराष्ट्रा दक्षिणापथाः
वंगांग मगधा मत्स्याः समृद्धाः काशिकोसलाः ॥३७॥
तत्र जातं बहुद्रव्यं धनधान्ययजाविकम्
ततो वृणोष्व कैकेयी यद्यत्वं मनसेच्छसि ॥३८॥
वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग (१०)

३. माहिष्मत्याः परतो दक्षिणापथः। यत्र महाराष्ट्र माहिषकाश्मक विदर्भ कुन्तल क्रथकैशिक सूर्पारिक काञ्ची केरल कावेर मुरल वानवासक सिंहल चोड दण्डक पाण्ड्य पल्लव गांग नाशिक्य कौङ्कण कोल्ल गिरि वल्लर प्रभृतयो जनपदाः।—राजशेखर, काव्य मीमांसा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, १९५४ ई०, सप्तदश अध्याय, पृ०—२२६।

सम्बोधित किये जाने लगे थे।[१] राजशेखर ने भी दाक्षिणात्य शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[२]

महाकाव्यों के समय में दक्षिण अनेक प्रान्तों में विभक्त था और प्रत्येक प्रान्त का व्यक्ति "दाक्षिणात्य" शब्द के अतिरिक्त अपने प्रान्त के नाम से भी संबोधित किया जाता था। इस समय दक्षिण में आन्ध्र, कर्णाटक, तमिलनाड और केरल जिस क्रम से बसे हुए हैं, महाकाव्यों के काल में भी ऐसा ही क्रम विद्यमान था। दक्षिण में स्थल-मार्ग से प्रवेश करनेवाला व्यक्ति आन्ध्र से यात्रा प्रारंभ करता था। सीता की खोज के लिए जो वानर दक्षिण दिशा की ओर जा रहे थे, उनका मार्ग-निर्देश करते समय सुग्रीव ने कहा था--"विन्ध्याचल, नर्मदा, कृष्णवेणी, वरदा, दण्डकारण्य और गोदावरी के आसपास के प्रदेशों में खोज करने के पश्चात् आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पांड्य और उसके पश्चात् आयोमुख पर्वत पर जाना चाहिए।[३]

आन्ध्र : द्रविड़

उत्तर से दक्षिण में प्रवेश करते समय आन्ध्र पार करना पड़ता था। भाषाशास्त्री तथा इतिहासज्ञ यह प्रमाणित करते रहे हैं कि भाषा और रक्त की दृष्टि से आन्ध्र जन भी द्रविड़कुल से सम्बन्धित हैं, किन्तु संस्कृत के महाकाव्यों में आन्ध्र और द्रविड़ों को भिन्न भिन्न अंकित किया गया है। महाकाव्यों के रचयिता आन्ध्र प्रदेश और आन्ध्र जनों से परिचित थे। दक्षिण के द्रविड और

---

१. प्राचीनान् सिन्धु सौवीरान् सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान्।
दाक्षिणात्यान्नरेन्द्रांश्च समस्तानानयस्व ह।
वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १३।

२. पाञ्चाल नेपथ्यविधिर्नराणां
स्त्रीणां पुनर्नन्दतु दाक्षिणात्यः
यज्जल्पितं यच्चरितादिकं त-
दन्योन्य संभिन्नमवान्तिदेशे।
काव्यमीमांसा, तृतीय अध्याय, पृ० २०

३. सहस्रशिरसं विन्ध्यं नानाद्रुमलतायुतम्
नर्मदां च नदीं दुर्गां महोरग निषेवितम् (८)
ततो गोदावरीं रम्यां कृष्णवेणीं महानदीम्
वरदां च महाभाग महोरगनिषेविताम् (९)
अन्वीक्ष्यदण्डकारण्यं सपर्वत नदीगुहम्
नदीं गोदावरीं चैव सर्वमेवानुपश्यत (१२)
तथैवान्ध्रांश्च पुण्ड्रांश्च चोलान्पाण्ड्यान् सकेरलान्
अयोमुखश्च गन्तव्यः पर्वतो धातुमण्डितः (१३)
--वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ४१

कुन्तलों से आन्ध्र भिन्न माने जाते थे। तालचर, चूचुप, वेणुप जैसी गिरि-गह्वरनिवासी जातियों का समावेश न आन्ध्रों में किया जाता था और न द्रविडों में। ये जातियां आज भी असभ्यावस्था में पर्वतों और अरण्यों में रहती हैं। आन्ध्र तथा कर्णाटक के अरण्यों और पर्वतों में बसनेवाले भारत के प्राचीन निवासी गोंड आदि आज भी द्रविडों से पृथक अस्तित्व रखते हैं। महाभारत में इन जातियों का उल्लेख मिलता है।[1]

एक स्थान पर आन्ध्र, पाण्ड्य तथा केरल में से किसी शब्द का प्रयोग न करते हुए केवल द्रविड़ शब्द का प्रयोग किया गया है।[2] आन्ध्रों का उल्लेख उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में मिलता है।[3]

महाराष्ट्र

अशोक के एक शिलालेख में कुछ दाक्षिणात्य जनों-भोज, महाभोज, सत्तियपुत्त, केरलपुत्त, पेतेनिक, पांड्य और चोलों का उल्लेख मिलता है। दक्षिणापथ का बड़ा भाग आगे चलकर महाराष्ट्र में सम्मिलित हो गया। दक्षिण के महाराष्ट्र प्रान्त और उसके निवासियों का उल्लेख महाकाव्यों में उस रूप में नहीं मिलता जिस रूप में आन्ध्र, द्रविड़ तथा उनके प्रदेशों का वर्णन मिलता है। सबसे पहले वराहमिहिर (५०५ ई०) ने महाराष्ट्र शब्द का प्रयोग प्रान्त विशेष के लिए किया। सत्याश्रय पुलकेशी के बदामीवाले शिलालेख (६६१ ई०) में भी एक प्रान्त के लिये महाराष्ट्र शब्द का प्रयोग मिलता है। महाराष्ट्र के तीन भाग हैं—

---

१. पुरोगमाश्च ते सन्तु द्रविडाः सहकुन्तलैः
आन्ध्रास्तालचराश्चैव चूचुपावेणुपास्तथा।
महाभारत ५।१३८।२५
आकर्षः कुन्तलश्चैव वानवाप्यान्ध्रकास्तथा॥ ११
द्रविडाः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा।
कुन्तिभोजो महातेजाः सुह्मश्च सुमहाबलः॥
महाभारत २।३१।१२
पाण्ड्यांश्च द्रविडाश्चैव सहितांश्चोड्र केरलैः
आन्ध्रांस्तालवनांश्चैव कलिंगानोष्ट्र कर्णिकान्
महाभारत २।२८।४८

२. एवं ते द्रविडाभीराः पुण्ड्राश्च शबरैः सह
वृषलत्वं परिगता व्युत्थानात् क्षत्रधर्मिणः
महाभारत १४।२९।१६

३. तस्य हा विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः। पंचाशदेवज्यायांसो मधुच्छन्दसः पंचाशत कनीयांसः। तद्येज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे।ताननुव्याजहान्तान्वः। प्रजाभक्षिष्टेति त एतेन्ध्राः पुण्ड्राशवराः पुलिंदा मूतिबा इत्याद्युदंत्या बहवो भवन्ति। ऐतरेय ब्राह्मण, ७।३।१८।

(१) अपरांत (कोंकण), (२) विदर्भ, (३) दंडकारण्य। विदर्भ तथा दण्डकारण्य दक्षिणापथ से सम्बन्धित थे।

इतिहासज्ञों के मत से आर्य जन विन्ध्याद्रि को पार करके दक्षिणापथ में बसे। कुछ आर्य-जनों के सम्बन्ध में अशोक के उपर्युक्त शिलालेख से जानकारी प्राप्त होती है।

सत्तियपुत्त--सात्वतपुत्र सत्तियपुत्त कहाने लगे। ये लोग उत्तर से दक्षिणापथ में आये थे। गौरीशंकर ओझा ने सत्तियपुत्त का सम्बन्ध "सत्यपुत्र", और केतकर ने इस शब्द का सम्बन्ध "सतपुड़ा" से जोड़ा है। पेतेनिक का सम्बन्ध पैठन (प्रतिष्ठान) नगर से है। जो लोग मगध से दक्षिणापथ में आये वे महाराजिक अथवा महाराष्ट्रिक कहाने लगे। कुछ लोग जनवाची महाराष्ट्रिक और प्रान्तवाची महाराष्ट्र में सम्बन्ध स्थापित करते हैं। कुछ राष्ट्रिक लोग बेलगांव और सोलापुर के निकट बस गये। राष्ट्रिकों की मातृभाषा पांचाली थी। उत्तर भारत की एक क्षत्रिय जाति-वैराष्ट्रिक-महाराष्ट्र में बस गई। वैराष्ट्रिक लोग उत्तर कुरु और उत्तर मद्र से आये थे। वैराष्ट्रिकों की भाषा अपभ्रंश थी।

अधिकांश विद्वान् द्रविडों और आर्यों को भिन्न भिन्न जातियों से संबंधित मानते हैं। इस सम्बन्ध में जो प्रमाण दिये जाते हैं, वे विवादरहित नहीं हैं। इस विवादास्पद सामग्री के संबंध में विचार करना यहां विषय की दृष्टि से आवश्यक नहीं है। कुमारिल भट्ट के समय जब ब्राह्मणों को पंच गौड़ों और पंच द्रविड़ों में विभक्त किया गया तब तमिल, आन्ध्र, और कर्णाटक के साथ साथ गुर्जर तथा महाराष्ट्र के ब्राह्मण पंच द्रविड़ कहाने लगे।

५०० ई० पू० से ६०० ई० प० तक उत्तर के निवासी बड़ी संख्या में दक्षिणापथ में बसते रहे और वहां से कुछ परिवार दक्षिण की ओर अग्रसर हुए। ५०० ई० पू० से ६०० ई० प० का ग्यारह सौ वर्ष का काल भारतीय आर्य भाषा की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण था। म० भा० आ० के समस्त परिवर्तन इसी युग में हुए और न० भा० आ० में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रकट हुए उनका सूत्रपात भी इसी युग में हुआ था। कुरु, पांचाल, मद्र और मगध से प्रव्रजित नागरिक अपनी क्षेत्रीय प्राकृतों के साथ दक्षिणापथ में आये थे। इन विभिन्न प्राकृत भाषियों के सम्मिलन से एक परिष्कृत सामान्य प्राकृत का प्रचलन हुआ, जो "महाराष्ट्री" के नाम से प्रसिद्ध हुई और दीर्घ काल के लिए उत्तर भारतीयों के लिए भी वह आदर्श भाषा का काम देती रही। परिष्कृत भाषा होने के कारण महाराष्ट्री कुछ काल के लिए समस्त भारत में महत्वपूर्ण स्थान पर आसीन रही।

६०० ई० प० से १२ वीं शती तक व्यापक रूप में उत्तरवासियों का आगमन दक्षिण में नहीं हुआ, फिर भी उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण से उत्तर का आवागमन रुद्ध नहीं हुआ था। जब १३ वीं शती में मुसलमानों ने दक्षिणपर आक्रमण प्रारंभ किया तो १९वीं शती तक उत्तर के सहस्रों परिवार यहां आकर बसते रहे। इस काल के प्रवासी दक्षिणापथ तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने चोल, केरल और पाण्ड्य के निवासियों को पराजित किया और आन्ध्र तथा कर्णाटक में दूर दूर तक कई नये ग्राम और नगर बसाये। इन अभियानों से पहले जो उत्तरवासी दक्षिणापथ में बसे थे उन्हें भी नवागन्तुकों के सम्मुख परास्त होना पड़ा। नवागन्तुकों के नेता एक भिन्न धर्म

तथा संस्कृति के पोषक थे और दूसरे धर्म तथा दूसरों की संस्कृति के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था, अतः दक्षिण में एक नये युग का श्रीगणेश हुआ।

दक्खिन

पिछली पांच-छः शताब्दियों से 'दक्खिन' शब्द जिस सीमित क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता रहा है, उतने सीमित क्षेत्र के लिए कभी दक्षिण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। उत्तर में नर्मदा, पश्चिम में ताप्ती और पूर्व में महानदी से समुद्र पर्यन्त की भूमि दक्षिण कहाती थी, किन्तु मुसलमानों के आगमन के पश्चात् "दक्खिन" शब्द उस भूभाग के लिए प्रयुक्त होने लगा जो किसी समय दक्षिणापथ कहाता था। खानदेश, बरार और अपरान्त को छोड़ कर शेष महाराष्ट्र दक्खिन कहाने लगा। कुछ प्रमाण ऐसे मिलते हैं, जिनके अनुसार गोदावरी और कृष्णा के बीच का प्रदेश दक्खिन था। जब मुगलों ने दक्षिण के स्वतंत्र राज्यों को समाप्त करके अपने साम्राज्य का विस्तार किया तो "दक्खिन" शब्द भी व्यापक क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होने लगा।

अकबर ने प्रशासनिक दृष्टि से मालवा, बरार, खानदेश और गुजरात को मिलाकर "दक्खिन" प्रदेश बनाया था। आगे चलकर अहमदनगर राज्य का क्षेत्रफल भी "दक्खिन प्रदेश" में सम्मिलित हो गया। राजकुमार दानियाल दक्खिन का राज्यपाल नियुक्त हुआ था।[1] जहांगीर तथा शाहजहां के समय में मालवा तथा गुजरात को छोड़ कर दक्खिन की स्थिति पूर्ववत बनी रही। औरंगजेब के काल में "दक्खिन" में आन्ध्र तथा कर्णाटक का बहुत बड़ा क्षेत्र सम्मिलित हो गया। गोलकुण्डा और बीजापुर के पतन के कारण यह संभव हो सका। औरंगजेब के अभियान से बहुत पहले दक्षिण के मुस्लिम शासक विजयनगर साम्राज्य को परास्त कर चुके थे, अतः विजयनगर द्वारा शासित सुदूर दक्षिण पर मुगलों का अनायास अधिकार हो गया। इस स्थिति में अकबरकालीन "दक्खिन" की सीमाओं में परिवर्तन हुआ। मालवा तथा गुजरात दक्खिन में नहीं रहे। औरंगज़ेब ने छह प्रदेशों को मिलाकर "दक्खिन प्रान्त" की रचना की। ये छह प्रान्त थे—(१) बरार, (२) खानदेश, (३) औरंगाबाद, (४) हैदराबाद, (५) मुहम्मदाबाद (बीदर), (६) बीजापुर।

औरंगजेब की विजय से पहले बीजापुर और गोलकुण्डा के शासक अपने को "दक्खिन के शासक" मानते थे। यदि इन शासकों की धारणा को स्वीकार कर लिया जाय तो विन्ध्याचल से दक्षिण में मुगलों द्वारा शासित विदर्भ और खानदेश के अतिरिक्त उस समय के गोलकुण्डा और बीजापुर राज्य के क्षेत्रफल को मिलाकर दक्खिन बनता था। गोलकुण्डा के लोग तेलंगाना को दक्खिन का श्रेष्ठ भूभाग मानते थे। तेलुगु भाषी प्रदेश काकतीय वंश की पराजय के पश्चात दो भागों में विभक्त हो गया था। लगभग आधे आन्ध्र प्रदेश पर विजयनगर और आधे पर गोलकुंडा का शासन था। जिस प्रदेश पर गोलकुण्डा के कुतुबशाहों का अधिकार था, उसका एक भाग तेलंगाना कहाता था और आज भी कहाता है। इस प्रदेश के सम्बन्ध में गोलकुंडा के कवि वजही ने लिखा है :—

---

१. विन्सेण्ट स्मिथ – अकबर, पृ० २८६।

दखन-सा नई ठार संसार में
पंच फ़ाज़िलां का है इस ठार में
दखन है नगीना अंगूठी है जग
अँगूठी कूं हुरमत नगीना है लग
दखन मुल्क कूं धन अजब साज है
के सब मुल्क सर होर दखन ताज है
दखन मुल्क मोती च खासा अहै
तिलंगाना इसका खुलासा अहै।[1]

गोलकुण्डा का शासक मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह अपने मुकुट को दक्खिन की राज्यसत्ता का प्रतीक मानता था—

दिसें नारियल के फल यूं जमर्रुद मर्तबानां जूं
होर उसके ताज कूं कहता है प्याला कर दखन सारा।[2]

बीजापुर के कवियों ने बीजापुर नरेश को दक्खिन का शासक बताया है। नुसरती ने अपने आश्रयदाता अली आदिलशाह (द्वितीय) के सम्बन्ध में लिखा है—

दखन नित है इस फ़ख़्र ते बाग़ बाग़
के तिस घर में तुझ-सा गुहर शब चिराग़।[3]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दक्खिन भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस भू-प्रदेश में दक्षिण की तीन भाषाओं का संगम हुआ है। यहां अनेक संस्कृतियों का उद्‌गम और विकास हुआ। कई राजवंशों ने इस प्रदेश में अपने युग का पथप्रदर्शन किया और विद्वानों ने साहित्य-सर्जन में योग दिया। इस प्रदेश पर २०० ई० पूर्व सातवाहनों का शासन था। त्रैकूटक, वाकाटक, गुप्त, कलचुरी, चालुक्य और राष्ट्रकूटों के पश्चात् यादव वंश ने शासन किया। १३वीं शती के अन्तिम दिनों में अलाउद्दीन खिलजी के अभियानों के कारण यह परम्परा समाप्त हुई। दूसरी ओर काकतीय और विजयनगर के शासकों की परम्परा थी। यह परम्परा चौदहवीं शती में काकतीयों की और सोलहवीं शती में विजयनगर की पराजय के साथ समाप्त हुई। सातवाहनों से लेकर काकतीयों, यादवों और विजयनगर के राज्यों तक इस प्रदेश में कला, साहित्य और वाणिज्य ने जो अभूतपूर्व उन्नति की उसकी साक्षी अजन्ता की गुफाएं अपनी कलापूर्ण कृतियों और एलूरा का कैलास मन्दिर अपनी विशालता से देता है। वरंगल तथा विजयनगर के ध्वंसावशिष्ट देवमन्दिर और राजप्रासाद

---

१. वजही – क़ुतुब मुश्तरी, पृ० १७९।
२. मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह – कुल्लियाते मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह।
३. नुसरती – अलीनामा।

उस युग के ऐश्वर्य तथा प्रताप की गाथा सुनाते हैं। भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में "गाथा सप्तशती" और "सेतुबन्ध" इसी युग की देन हैं। इस महत्वपूर्ण युग में उत्तर तथा दक्षिण में बहुत कुछ आदान-प्रदान हुआ। दोनों प्रदेशों में पहले से अधिक वैचारिक समानता स्थापित हुई। जिस समय उत्तर भारत से मुसलमानों के नेतृत्व में दक्षिण पर आक्रमण हुआ, नव्य भारतीय आर्य भाषाएं बहुत विकसित हो चुकी थीं और साहित्य में उचित स्थान प्राप्त करने की प्रतीक्षा कर रही थीं। उनका संबन्ध अपभ्रंश से टूट चुका था। दक्खिनी के विकास क्रम को समझने के लिए यह काल महत्वपूर्ण है, अतः इस काल की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया जाता है :—

(१) १३वीं शती के अन्तिम दशक में देवगिरि पर अलाउद्दीन खिलजी की विजय के साथ दक्खिन अथवा दक्षिणापथ के इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। खिलजी दक्षिण पर अधिक प्रभाव नहीं डाल सका। उसके सेनापति मलिक काफूर ने देवगिरि के साथ साथ वरंगल पर अधिकार कर के उन घटनाओं के लिए पृष्ठभूमि तैयार की जो मुहम्मद तुगलक के समय घटित हुई।

(२) मुहम्मद तुगलक के समय समूचे भारत को एक शासन के अन्तर्गत लाने का यत्न किया गया। दक्षिण में अपनी सत्ता स्थायी रखने के लिए मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली के स्थान पर "देवगिरि" में राजधानी बनाने का निश्चय १३२७ ई० में किया। इस निर्णय के फलस्वरूप दिल्ली के सामन्तों, श्रेष्ठियों और श्रमिकों को दिल्ली से देवगिरि जाना पड़ा। देवगिरि को राजधानी के अनुरूप बनाने के लिए लाखों रुपये व्यय हुए, किन्तु मुहम्मद तुगलक को अपना निश्चय परिवर्तित करना पड़ा और राजधानी पुनः दिल्ली चली गई। यह घटना भाषा की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। दिल्ली से आनेवाले कई परिवार देवगिरि में रह गये। जब तुगलक वंश का शासन शिथिल हो गया तो इन्हीं परिवारों ने मिलकर अलाउद्दीन बहमनशाह के नेतृत्व में बहमनी राजवंश की स्थापना की। जो परिवार दिल्ली से देवगिरि आये और देवगिरि से गुलबर्गा गये उनमें अधिक संख्या उन परिवारों की थी जो मूलतः दिल्ली के निवासी थे। कुछ परिवारों का सम्बन्ध अन्य हिन्दी भाषी प्रदेशों से था। उस समय खड़ी बोली का जो रूप प्रचलित था वह इन परिवारों के साथ देवगिरि पहुंचा। कुछ मुस्लिम परिवारों को छोड़कर व्यापारी और श्रमिक, घरों और बाजारों में खड़ी बोली का उपयोग करते थे।

(३) सन् १३४७ ई० में अलाउद्दीन बहमनशाह ने दक्खिन की स्वतंत्रता की घोषणा की और गुलबर्गा में बहमनी वंश के शासन की स्थापना हुई। गुलबर्गा में मुस्लिम संस्कृति के एक नये केन्द्र की स्थापना से दक्खिन में अनेक प्रतिक्रियाएं हुई। बहमनियों के पास दाभोल, चोल, राजपुर और गोवा के बन्दरगाह थे जिनके कारण ईरान, अरब, अफ्रीका और मलाया से उनका सीधा सम्पर्क स्थापित हुआ। इन देशों के अनेक महत्वाकांक्षी भाग्यान्वेषी युवक दिल्ली की यात्रा किये बिना गुलबर्गा तथा अन्य दक्खिनी नगरों में पहुंचते थे। इन लोगों की मातृभाषा फारसी, अरबी अथवा तुर्की थी। मुहम्मद तुगलक के समय में जो परिवार दिल्ली से आये थे वे अपने मूल स्थान से दूर हो गये, अतः उनके बरताव-व्यवहार, वेश-भूषा तथा रहन-सहन का विकास स्वतंत्र रूप से होने लगा। साथ ही मुहम्मद (बहमनी) के समय गुलबर्गा को मुस्लिम संस्कृति और अरबी-

पन्द्रहवीं शती के अन्तिम दशक में दक्षिण भारत
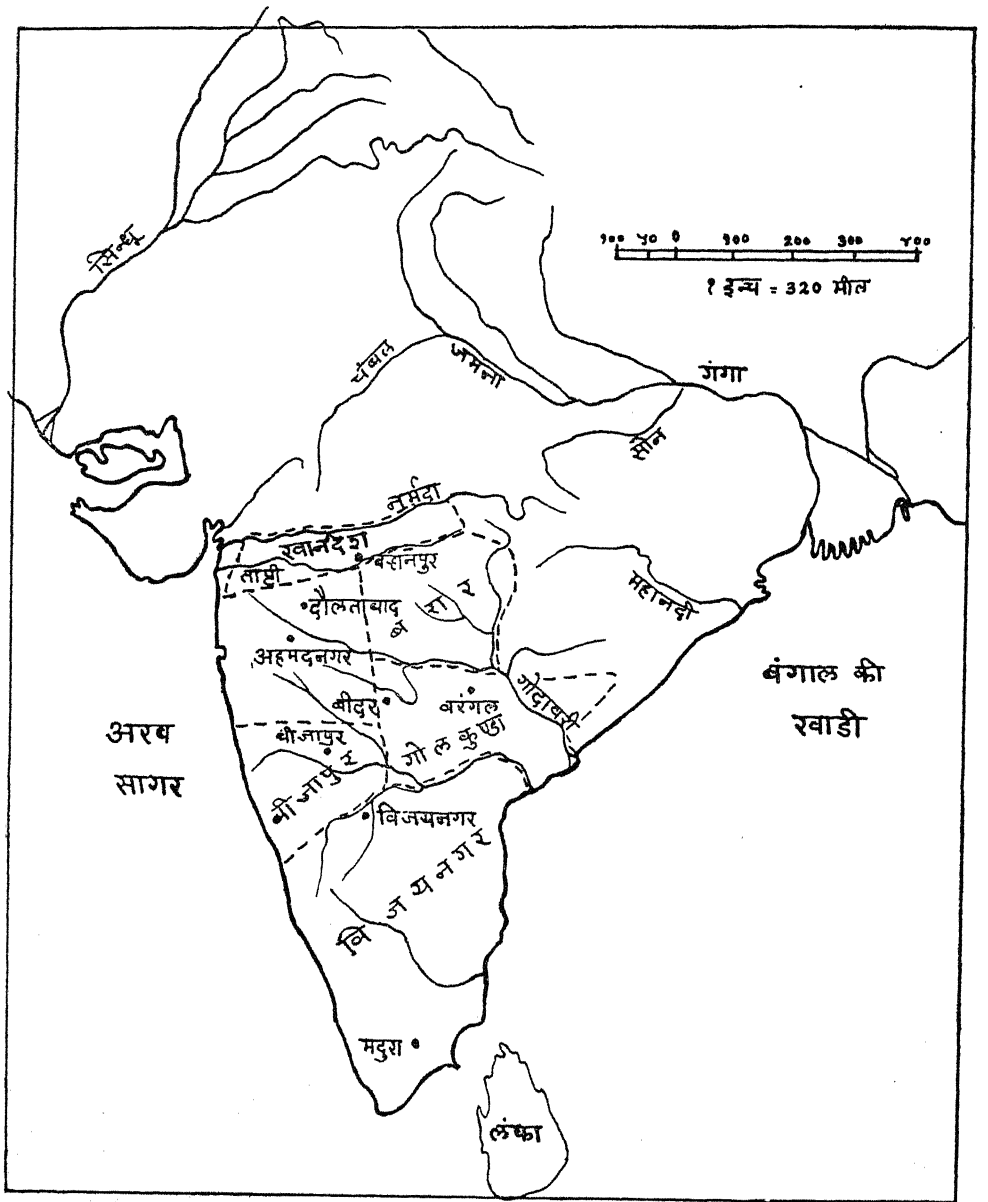
फ़ारसी के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बनाने का यत्न किया गया। मुहम्मद बहमनी (द्वितीय) ने फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ शीराज़ी को निमंत्रित किया था, किन्तु कुछ कारणों से हाफ़िज़ भारत नहीं आ सके। जो मुसलमान उत्तर से दक्खिन में आकर बसे थे वे अपने आप को दक्खिनी अथवा मुल्की कहते थे और ईरान, ईराक़ तथा अरब से आने वाले मुसलमान "आफ़ाक़ी" के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।[1] आफ़ाक़ी लोग ईरानी और अरबी वेश-भूषा तथा भाषा का प्रतिनिधित्व करते थे और दक्खनी लोग तुगलककालीन उत्तर भारतीय संस्कृति तथा भाषा के प्रतिनिधि थे। मूलतः ईरान और अरब से आनेवाले परिवार स्थानीय हिन्दू ही नहीं मुसलमानों से भी अपने को श्रेष्ठ मानते यह स्वाभाविक था और यह भी स्वाभाविक था कि दक्खिनी मुसलमान भाषा और अध्ययन के क्षेत्र में आफ़ाक़ियों की श्रेष्ठता को स्वीकार करने पर भी छोटेपन की भावना से उत्पन्न होनेवाली प्रतिक्रिया से वंचित न रहते। बहमनी वंश के शासक कभी आफ़ाक़ियों को बढ़ावा देते थे और कभी दक्खिनी मुसलमानों को। दक्खिनी मुसलमानों को स्थानीय कुलीन हिन्दुओं का समर्थन भी प्राप्त था। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्खिनी मुसलमान महाराष्ट्र तथा कर्णाटक की प्राचीन संस्कृति और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण से परिचित हो गये। आफ़ाक़ी और दक्खिनी लोगों का संघर्ष केवल प्रशासनिक विषयों में ही नहीं था, दैनिक जीवन और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी यह संघर्ष विद्यमान था। मुहम्मद बहमनी (द्वितीय, १३७८–१३९७ ई०) ने बाहरी लोगों को प्रोत्साहित किया। उसने गुलबर्गा को सांस्कृतिक केन्द्र बनाकर दिल्ली को नीचा दिखाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसके उत्तराधिकारी फ़ीरोज़ बहमनी (१३९७–१४२२ ई०) को राजनीतिक कारणों से दक्खिनी लोगों का सहयोग प्राप्त करना पड़ा। अकबर के दादा बाबर (शासनकाल १५२६–१५३० ई०) के गद्दीपर बैठने से १३० वर्ष पूर्व फ़ीरोज़ बहमनी ने अरबी-ईरानी संस्कृति से हटकर दक्खिनी मुसलमानों, उत्तर भारत से आये हिन्दुओं और स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त किया और उनकी संस्कृति में अधिक रुचि ली। गुलबर्गा कन्नड़ भाषी क्षेत्र में पड़ता था। यहां की जन-संस्कृति का उसने आदर किया। कर्णाटकी ब्राह्मणों को ऊंचे पद दिये गये। नरसिंह नामक ब्राह्मण बहमनीवंश का गुरु बना और विजयनगर की राजकन्या का विवाह फ़ीरोज़ के साथ हुआ।[2] फ़ीरोज़ के मकबरे पर हिन्दू स्थापत्यकला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उसने स्थानीय संस्कृति और बाहरी प्रभावों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।

दक्खिनी के ज्ञात प्रथम लेखक ख़ाजा बन्देनवाज़ गेसूदराज़ के पिता मुहम्मद तुगलक के काल में देवगिरि आये थे और उनका देहान्त ३० जून १३३२ ई० को खुल्दाबाद (औरंगाबाद) में हुआ था। ख़ाजा बन्देनवाज़ नब्बे वर्ष की आयु में गुलबर्गा पहुंचे थे। उन दिनों वहां बहमनी वंश का शासन था। बहमनी वंश के नरेशों को दक्षिण में विजयनगर और उत्तर तथा पश्चिम में खानदेश, मालवा और गुजरात के शासकों के साथ संघर्ष करना पड़ा।

---

१. हारूँखाँ शेरवानी – दी बहमनीज़ आफ़ दी डक्कन, पृ० ११४।

२. हारूँखाँ शेरवानी – दी बहमनीज़ आफ़ दी डैक्कन, पृ० १४४, १४७।

(४) बहमनी साम्राज्य का पतन उसके प्रमुख सामन्तों के विद्रोह के कारण हुआ। सर्वप्रथम अमीर क़ासिम बरीद ने १४८७ ई० में बीदर में बरीदशाही वंश का शासन स्थापित किया। सन् १४९० ई० में बहमनियों की सेवा से निवृत्त हो अहमद निजामशाह ने अहमदनगर में और यूसुफ आदिलशाह ने बीजापुर में नये राज्यों की नींव डाली। इन तीन राज्यों की स्थापना के पश्चात् सुलतान कुलीकुतुबशाह ने १५१२ ई० में गोलकुण्डा को राजधानी बनाकर अपने राज्य की नींव डाली। इन चारों राज्यों ने बहमनीवंश द्वारा संस्थापित नीति पर आचरण करने का प्रयत्न किया। बहमनी शासन के समय दक्खिन और दिल्ली में घनिष्ठ संबंध नहीं रह गया था। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि गुजरात, मालवा तथा खानदेश में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य स्थापित हो चुके थे। ये राज्य दिल्ली के बादशाहों को उलझाये रखते थे और जब अवकाश मिलता बहमनी शासकों के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर देते थे। यह स्थिति बहमनी साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् अकबरी शासन के प्रारंभिक काल में भी बनी रही। जब बहमनी साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् दक्खिन में चार मुस्लिम राज्य स्थापित हुए तो वे एक दूसरे से स्पर्द्धा करते थे, किन्तु विजयनगर के कारण उनमें एकता हो जाती थी। इन चारों राज्यों की यह आकांक्षा थी कि दिल्ली की भांति बीजापुर, अहमदनगर, बीदर और गोलकुंडा मुस्लिम संस्कृति के केन्द्र बनें। जिन स्थितियों में इन मुस्लिम राज्यों को शासन करना पड़ रहा था, उनका यह स्वाभाविक परिणाम था कि यहां उदारता से कार्य लिया जाता। इसीलिए स्थानीय कला और साहित्य को थोड़ा बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा। चारों राज्यों में अहमदनगर ने शीघ्रता से उन्नति की। १६वीं शती में अहमदनगर समृद्ध और सुशासित राज्य था। अकबर के आक्रमण के कारण चारों में सबसे पहले इसी राज्य का पतन हुआ। अहमदनगर के पश्चात् सांस्कृतिक विकास और समृद्धि की दृष्टि से बीजापुर का नाम लिया जा सकता है। बीदर बहमनी वंश के समय ही उजड़ गया था। बरीदशाहों के समय उसकी स्थिति खराब होती गई। गोलकुण्डा ने अन्त में प्रगति की और पग बढ़ाया और शीघ्र ही उसने त्रुटि पूरी कर ली।

अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के शासक दिल्ली के शासकों से इस बात में सर्वथा भिन्न थे कि अरब और ईरान की संस्कृति में रुचि और आस्था होने पर भी स्थानीय भाषाओं और रीति-रिवाजों से उनका लगाव था। आफ़ाक़ियों को उचित सम्मान देते हुए भी यहां के राजवंशों ने दक्खिनी समाज को स्वाभाविक विकास का अवसर प्रदान किया। उस समय की परिस्थिति ने दक्खिन में धर्म, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में समन्वय और सहिष्णुता के प्रयोग का जो दायित्व उन्हें सौंपा था, इन राज्यों ने उसे अच्छी तरह निभाया। बीजापुर के शासकों को अपने कार्यकाल के पूर्वार्द्ध में विजयनगर के राजाओं से और उत्तरार्द्ध में मराठों से संघर्ष करना पड़ा, किन्तु वहां के स्थापत्य में हिन्दू वास्तुकला का प्रभाव अहमदनगर और गोलकुण्डा से अधिक है। यह आश्चर्यजनक बात है कि बीजापुर में मुस्लिमकाल में आनेवाले परिवार वहां के मूल निवासियों में जिस तरह घुलमिल गये हैं, उस तरह दक्खिन के अन्य राज्यों में संभव नहीं हो सका। बीजापुर में दक्खिनी का जो साहित्य लिखा गया उसमें संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक हैं। दक्खिनी में अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग करके नई शैली को जन्म देनेवाला पहला कवि नुसरती

बीजापुर में हुआ, किन्तु नुसरती की रचना में भी संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

(५) जब दिल्ली के सिंहासन पर मुगलवंश के नरेश आसीन हुए, दक्खिन की राजनीति में पुनः बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। उन दिनों एशिया में सत्ता प्राप्त करने के लिए तीन शक्तियां संघर्षरत थीं। इस संघर्ष से भारत का कोई मुस्लिम राज्य पृथक नहीं रह सकता था। दक्खिन के मुस्लिम शासकों पर इस संघर्ष का प्रभाव पड़ा।

उन दिनों पश्चिमी और मध्य एसिया के मुस्लिम शासक तीन गुटों में बंटे हुए थे—(१) उस्मानी गुट, (२) तुर्की गुट, (३) ईरानी गुट। मुगलों ने अपने साम्राज्य की नींव अब्बासी ख़िलाफ़त के ध्वंसावशेषों पर रखी थी। इसके अतिरिक्त मुग़ल और तुर्क सुन्नी थे, जब कि ईरान के शासक शिया थे। सुन्नियों के पास उन दिनों अधिक शक्ति थी और उनके ऐश्वर्य का ठिकाना नहीं था। १६वीं शती में दिल्ली के मुगल सम्राट एक ओर सम्पूर्ण भारत पर अधिकार पाने के लिए प्रयत्नशील थे, दूसरी ओर भारत से बाहर वे अपने पूर्वजों के खोये हुए राज्य को हस्तगत करने के लिए भी यत्न करते रहे। तैमूर के वंशधर मध्य एसिया के शासक बनने का स्वप्न देखें, यह स्वाभाविक था। बाबर ने समरक़न्द और बुख़ारा को पुनः हस्तगत करना चाहा, हुमायूं बदख्शां से आगे नहीं बढ़ सका, अकबर काबुल तक ही पहुंचा। जहांगीर के मन की इच्छा मन ही में रह गई। ईरानी बादशाहों और मुग़ल शासकों में कंधार के लिए दीर्घकाल तक संघर्ष चलता रहा। बाबर कंधार को पुनः प्राप्त करने में सफल हो गया था किन्तु जहांगीर के शासन-काल में शाह अब्बास (प्रथम) ने उसे फिर से जीत लिया। शाहजहां के कार्यकाल में औरंगजेब ने दो बार और दारा ने एक बार कंधार के लिए जी तोड़ प्रयत्न किये, किन्तु दोनों असफल रहे।

वैसे ईरान के सम्बन्ध में मुग़ल बादशाहों ने सदैव अच्छे भाव प्रकट किये। दिखावे के लिए ईरानी शासकों ने भी यही किया, किन्तु अन्दर ही अन्दर दोनों ओर वैमनस्य पनपता रहा। ईरान के शाहों ने मुग़लों की लम्बी-चौड़ी विरुदावली स्वीकार नहीं की। वे लोग ईरान की ओर से बाबर को दी गई सहायता और हुमायूं को शाह तहमास्प द्वारा प्रदत्त संरक्षण का उल्लेख बार बार करते रहे। इधर मुग़ल सम्राट ईरानी शाहों को प्रताप और ऐश्वर्य में अपने समकक्ष नहीं मानते थे। राज्य के क्षेत्रफल और ऐश्वर्य की दृष्टि से मुग़लों और ईरानी शाहों की तुलना नहीं की जा सकती थी।

ईरान के शाह शक्ति बढ़ाने का यत्न करते रहे। भारत में बीजापुर और गोलकुण्डा के राजवंश शिया थे, अतः बहुत दूर होने पर भी इन राज्यों में उनकी विशेष रुचि थी। एसिया की गतिविधियों पर ध्यान रखनेवाले मुगल इन दोनों राज्यों का अस्तित्व हितकर न मानते, यह स्वाभाविक था। मुग़लों से भयभीत होकर ये दोनों राज्य ईरानी शाहों और दक्षिण की हिन्दू-मुस्लिम जनता से सहयोग प्राप्त करते, यह भी स्वाभाविक था। सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य करने की आकांक्षा मुग़लों में इन्हीं कारणों से जागृत हुई। उत्तर भारत से दक्षिण की ओर आनेवाले मुख्य मार्ग—उज्जैन-देवगिरि मार्ग—पर सर्वप्रथम अहमदनगर की सीमा पड़ती थी। गुजरात, खानदेश और बरार के लिए भी अहमदनगर को पराजित करना आवश्यक था। इन्हीं सब कारणों से अकबर

ने दक्षिणी राज्यों में सर्वप्रथम अहमदनगर पर आक्रमण किया। इस आक्रमण की उल्लेखनीय घटना यह थी कि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि खानखाना अब्दुर्रहीम 'रहीम' राजकुमार दानियाल के साथ भेजे गये थे। इससे पूर्व ख़ानख़ाना राजकुमार मुराद के साथ अहमदनगर पर आक्रमण कर चुके थे, किन्तु खानखाना और मुराद में कुछ बातों पर मतभेद हो गया और अहमदनगर की ओर से चाँदबीबी ने ऐसा नेतृत्व किया कि मुगलों को सफलता नहीं मिली। कुछ समय पश्चात् अहमदनगर परास्त होगया और दानियाल दक्खिन (अहमदनगर, बरार, खानदेश, मालवा और गुजरात) के राज्यपाल बने और ख़ानख़ाना बहुत दिनों तक दक्खिन में रहे।

पूरे दक्खिन पर अधिकार करने के लिए शाहजहाँ भी प्रयत्नशील रहा, किन्तु १५९१ ई० में खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा को अधीनता स्वीकार कराने के लिए दूत भेज कर जो कार्य अकबर ने प्रारम्भ किया था, उसकी पूर्ति औरंगज़ेब के शासन-काल में हुई।

बीजापुर और गोलकुण्डा की पराजय के पश्चात् औरंगज़ेब दक्षिण की राजनीति में बुरी तरह उलझ गया, दक्षिण के इन दो राज्यों के पतन के पश्चात् समूचे भारत की राजनीति का सन्तुलन जाता रहा, परिणामस्वरूप मराठा शक्ति का उदय हुआ। मराठों से निपटने के लिए औरंगज़ेब ने ८० वर्ष की आयु में पण्ढरपुर से ८० मील दूर भीमा के तट पर ब्रह्मपुरी नामक स्थान को अपने अन्तिम निवासस्थान के लिए चुना, ब्रह्मपुरी का नाम इस्लामपुरी रखा गया। औरंगज़ेब २१ मई १६९५ से १९ अक्टूबर १६९९ ई० तक यहीं से राज्य का संचालन करता रहा। मराठों के विरुद्ध अन्तिम अभियान के लिए उसने यहीं से प्रयाण किया और इस अभियान से वह २० जनवरी १७०६ को लौटा। एक वर्ष, एक मास पश्चात् २० फरवरी १७०७ ई० को उसका देहान्त हुआ। ब्रह्मपुरी से पहले औरंगज़ेब कुछ समय के लिए औरंगाबाद में रह चुका था। उन दिनों औरंगाबाद में सैनिक शिविर ही नहीं राज्य का संचालन-केन्द्र भी था। उत्तर भारत से आये सहस्रों सैनिक, व्यापारी, प्रबन्धक और श्रमिक औरंगाबाद और इस्लामपुरी में रहते थे। औरंगज़ेब के ये अभियान 'दक्खिनी' के विकास में सहायक सिद्ध हुए।

औरंगज़ेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य क्षीण हो गया। मराठों ने दक्षिणापथ पर अधिकार कर लिया। कर्णाटक में मैसूर का नया राज्य शक्तिशाली होता गया और हैदराबाद में आसफ़जाही वंश का शासन स्थापित हुआ। इन बड़े-बड़े राज्यों के अतिरिक्त कई छोटे-छोटे राज्य थे। अंग्रेज़ी राज्य के क़ारण हैदराबाद तथा मैसूर की रियासतें बच गईं, शेष राज्य बम्बई अथवा मद्रास में मिला लिये गये।

अंग्रेज़ों से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् राज्यों की पुनर्रचना हुई। कन्नड़भाषियों का मैसूर और तेलुगुभाषियों का आन्ध्र राज्य स्थापित हुआ और मराठी भाषी भी एक शासन के अन्तर्गत शासित होने लगे। गुजरात और महाराष्ट्र की स्थापना हुई। इस प्रकार काकतीयों और यादवों के पश्चात् गोदावरी-कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के प्रदेश और मराठी भाषी क्षेत्र की जो स्थिति लगभग आठ सौ वर्ष तक रही वह बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है। यहाँ प्रमुख राजवंशों की तालिका दी जा रही है, जिससे तत्कालीन परिस्थितियों को समझने में सहायता मिले:—

बहमनी वंश

१.	अलाउद्दीन बहमनशाह	(शासनकाल १३४७-५८ ई०)
२.	मुहम्मद (प्रथम)	(१३५८-७७ ई०)
३.	मुजाहिद	(१३७७-७८ ई०)
४.	दाऊद	(१३७८)
५.	मुहम्मद (द्वितीय)	(१३७८-९७)
६.	गयासुद्दीन	(१३९७)
७.	शम्सुद्दीन	(१३९७)
८.	फ़ीरोज़	(१३९७-१४२२)
९.	अहमद	(१४२२-३५)
१०.	अलाउद्दीन (द्वितीय)	(१४३६-५८)
११.	हुमायूं (अत्याचारी)	(१४५८-६१)
१२.	निज़ामशाह	(१४६१-६३)
१३.	मुहम्मद (तृतीय)	(१४६३-८२)
१४.	महमूद	(१४८२-१५१८)
१५.	अहमद	(१५१८-२१)
१६.	अलाउद्दीन	(१५२१)
१७.	वलीउल्ला	(१५२१-२४)
१८.	कलीमुल्ला	(१५२४-२७)

बरीदशाही (बीदर)

१.	अमीर क़ासिम बरीद	(१४८७-१५०४)
२.	अमीर अली बरीद	(१५०४-४२)
३.	अली बरीद शाह (प्रथम)	(१५४२-७९)
४.	इब्राहीम बरीदशाह	(१५७९-८६)
५.	क़ासिम बरीदशाह	(१५८६-८९)
६.	अमीर बरीदशाह	(१५८९-१६०१)
७.	मीरज़ा अली बरीद शाह	(१६०१-१६०४)
८.	अली बरीदशाह (द्वितीय)	(१६०४-१६१९)

१६१९ ई० में बीदर बीजापुर के अधिकार में चला गया।

निजामशाही (अहमदनगर)

१.	अहमद निज़ामशाह	(१४९०-१५०९)
२.	बुरहान निज़ामशाह	(१५०९-५३)

३. हुसेन निज़ामशाह (प्रथम)	(१५५३-१५६५)
४. मुर्तज़ा निज़ामशाह (प्रथम)	(१५६५-१५८६)
५. हुसेन निज़ामशाह (द्वितीय)	(१५८६-८९)
६. इस्माइल निज़ामशाह	(१५८९-१५९६)
७. अहमद	(१५९६-१६०३)
८. मुर्तज़ा निज़ामशाह (द्वितीय)	(१६०३-१६३०)
९. हुसेन निज़ामशाह (तृतीय)	(१६३०-१६३३)

१६३३ ई० में मुग़लों की सेना ने अहमदनगर पर अधिकार किया और समूचा राज्य मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

आदिलशाही (बीजापुर)

१. यूसुफ़ आदिलशाह	(१४९०-१५१०)
२. इस्माईल आदिलशाह	(१५१०-१५३४)
३. मल्लू आदिलशाह	(१५३४)
४. इब्राहीम आदिलशाह (प्रथम)	(१५३४-५८)
५. अली आदिलशाह (प्रथम)	(१५५८-१५८०)
६. इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय)	(१५८०-१६२७)
७. मुहम्मद आदिलशाह	(१६२७-१६५७)
८. अली आदिलशाह (द्वितीय)	(१६५७-१६७२)
९. सिकन्दर आदिलशाह	(१६७२-१६८६)

१६८६ में औरंगज़ेब के आक्रमण के फलस्वरूप बीजापुर की पराजय हुई और राज्य का भूभाग मुग़ल साम्राज्य में सम्मिलित हो गया।

क़ुतुबशाही (गोलकुण्डा)

१. सुलतान कुली क़ुतुबशाह	(१५१२-१५४३)
२. जमशीद क़ुतुबशाह	(१५४३-१५५०)
३. सुभान कुली क़ुतुबशाह	(१५५०)
४. इब्राहीम क़ुतुबशाह	(१५५०-१५८०)
५. मुहम्मद कुली क़ुतुबशाह	(१५८०-१६१२)
६. मुहम्मद क़ुतुबशाह	(१६१२-१६२६)
७. अब्दुल्ला क़ुतुबशाह	(१६२७-१६७२)
८. अबुलहसन क़ुतुबशाह	(१६७२-१६८७)

१६८७ ई० में औरंगज़ेब से पराजित होने के कारण गोलकुण्डा का भू-प्रदेश मुग़ल साम्राज्य में मिलाया गया।

दक्खिन के इन राज्यों के अतिरिक्त आसपास के राज्यों के आरम्भ तथा अन्त का संवत्सर दक्खिनी के विकास-क्रम को जानने में सहायक रहेगा। गुजरात में सन् १३९६ में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई, मुग़ल आक्रमण के कारण १५७२ ई० में यह राज्य समाप्त हुआ। मालवा में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना १३९२ ई० में और समाप्ति १४३६ में हुई। यहाँ एक नये राज्यवंश ने राज्य प्रारम्भ किया। १५३१ ई० में गुजरात के बादशाह ने मालवा को गुजरात में मिलाया। खानदेश में सन् १३८२ में जो स्वतन्त्र राज्य स्थापित हुआ था वह १५९७ में कुछ दिनों के लिए गुजरात के अधीन रहा। सन् १६०१ में इस प्रदेश पर मुग़लों का अधिकार हुआ।

मुस्लिम काल की प्रमुख घटनाओं का कालक्रम इस प्रकार है:—

	घटना	वर्ष
१.	अलाउद्दीन खिलजी का देवगिरि पर आक्रमण	(१२९५ ई०)
२.	अलाउद्दीन खिलजी का गुजरात पर अधिकार	(१२९७ ई०)
३.	देवगिरि पर मलिक काफ़ूर का आक्रमण	(१३०६-७ ई०)
४.	वरंगल के प्रताप रुद्रदेव (द्वितीय) की पराजय	(१३०८ ई०)
५.	वरंगल की पुनः पराजय और पूर्णतया पतन	(१३२३ ई०)
६.	मुहम्मद तुगलक द्वारा दिल्ली से दौलताबाद को राजधानी का परिवर्तन	(१३२७ ई०)
७.	दिल्ली-निवासियों को दौलताबाद जाने का आदेश	(१३२९ ई०)
८.	मालवा के महमूद (प्रथम) ने बहमनियों पर आक्रमण किया; गुजरात का महमूद बघर्रा निज़ामशाह (बहमनी) की सहायता के लिए गया	(१४६२ ई०)
९.	हुमायूं के काल में गुजरात का शासक बहादुरशाह पराजित	(१५३५ ई०)
१०.	अकबर के काल में मालवा तथा गुजरात पर मुग़लों का आक्रमण	(१५६८ ई०)
११.	गुजरात पर मुगलों का पुनः आक्रमण	(१५७२ ई०)
१२.	अकबर के समय खानदेश पर मुग़ल सेना ने अधिकार किया	(१५७७ ई०)
१३.	अकबर ने बरार पर अधिकार किया	(१५९६ ई०)
१४.	जहाँगीर के समय दक्खिन पर चढ़ाई	(१६०८ ई०)
१५.	खुर्रम (आगे चलकर शाहजहाँ) दक्खिन का राज्यपाल बना	(१६१६ ई०)
१६.	शाहजहाँ ने अहमदनगर को पुनः अधिकार में लिया	(१६३० ई०)
१७.	शाहजहाँ के समय मुग़लों का बीजापुर पर आक्रमण	(१६३२ ई०)
१८.	औरंगज़ेब दक्खिन का राज्यपाल बना	(१६३७ ई०)
१९.	औरंगज़ेब ने गोलकुण्डा पर आक्रमण किया	(१६५५ ई०)
२०.	औरंगज़ेब के एक पुत्र से गोलकुण्डा की राजकुमारी का विवाह	(१६५६ ई०)
२१.	औरंगज़ेब ने बीदर, कल्याणी और गुलबर्गा पर अधिकार किया	(१६५७ ई०)
२२.	बीजापुर पर मुग़लों का असफल आक्रमण	(१६७९ ई०)
२३.	औरंगज़ेब ने बीजापुर पर घेरा डाला	(१६८५ ई०)

२४. बीजापुर का पतन (१६८६ ई०)
२५. औरंगज़ेब की मृत्यु (१७०७ ई०)
२६. निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह ने आसफ़जाही शासन की स्थापना की। (१७२४ ई०)

दक्खिनी भाषा

जिस तरह मध्यकाल में नवागन्तुकों के सम्मिलन से दक्षिणापथ में परिष्कृत महाराष्ट्रीय प्राकृत का रूप प्रकट हुआ उसी भाँति नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में महत्वपूर्ण भाषा हिन्दी के परिष्करण में इस प्रदेश ने योग दिया। ऊपर जिन घटनाओं की सूची दी गई है, उनसे यह स्पष्ट होता है कि इतिहास के आरम्भिक काल से उत्तर-दक्षिण में घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। पाण्ड्य तथा केरल के शासकों का सम्बन्ध सदैव मध्य दक्षिण के शासकों के साथ रहा और मध्य दक्षिण के राजवंश उत्तरी और पश्चिमी भारत के सम्पर्क में रहे। राजनीति के अतिरिक्त धार्मिक और सांस्कृतिक एकता अधिक पुष्ट रही है। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, प्राचीनकाल से उत्तर-दक्षिण में अनेक भाषाओं की विद्यमानता में भी एक सामान्य भाषा का व्यवहार होता था। अनेक शतियों तक संस्कृत धार्मिक भाषा ही नहीं संस्कृति और राजकाज की भाषा बनी रही। ८ वीं शती तक दक्षिण के शासक ताम्रपत्र अथवा शासन-पत्र संस्कृत में ही लिखते थे। बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार के कारण तथा उत्तर भारत में प्राकृत को सांस्कृतिक तथा साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर लेने पर दक्षिण में भी प्राकृत अपनाई गयी। अपभ्रंश काल में दक्षिण के मनीषी पीछे नहीं रहे। राष्ट्रकूट आस्थान के राजकवि पुष्पदन्त आदि ने अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अपभ्रंश को प्रदान कीं। यह सम्पर्क नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के युग में भी सहायक सिद्ध हुआ। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् १४वीं शती में अधिक सफल प्रयत्न किये गये।

अलाउद्दीन खिलजी से लेकर आसफ़जाह (प्रथम) तक जितने सम्राटों और सामन्तों के नेतृत्व में दक्खिन अथवा दक्षिण पर आक्रमण हुए, उनमें से कुछ को छोड़कर सभी अभियानों में सहस्रों परिवार उत्तर भारत से दक्षिण पहुँचे और उनमें से बहुत से परिवार यहां बस गये। अनेक महत्वाकांक्षी भाग्यान्वेषी युवकों ने दक्खिन को ही अपना कार्य-क्षेत्र चुना। अधिकांश सैनिक या तो हिन्दू थे या ऐसे व्यक्ति जिन्होंने कुछ समय पूर्व ही इस्लाम स्वीकार किया था। नव मुसलमानों और हिन्दू सैनिकों तथा श्रमिकों के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे अपने सामन्तों की सांस्कृतिक भाषा फ़ारसी अथवा मातृभाषा अरबी, तुर्की, पश्तो आदि को अपनी भाषा के रूप में अपनाते। ये सामान्य सैनिक अथवा श्रमिक एक ही स्थान से नहीं आये थे। किसी का सम्बन्ध बिहार से था, किसी का अवध से और किसी का राजस्थान से। इन सेनाओं के नायकों में ऐसे लोगों की संख्या अधिक थी जो दिल्ली में बस गये थे या दिल्ली में जनमे थे। वे लोग खड़ी बोली से अच्छी तरह परिचित थे। उन दिनों खड़ी बोली आज की भांति परिष्कृत नहीं हुई थी। खड़ी बोली पर हरियाना, मेवात, शेखावाटी तथा ब्रज से सम्बन्धित बोलियों का प्रभाव था। उत्तर भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए ये परिवार घरेलू जीवन में अपनी बोली बोलते थे और दूसरे क्षेत्र के व्यक्ति से मिलते समय खड़ी बोली का प्रयोग करते थे। धीरे-धीरे दिल्ली के आसपास की बोली सांस्कृतिक भाषा

के रूप में स्वीकार की जाने लगी और ऐसे शब्दों तथा शब्द-रूपों का व्यवहार क्रमशः कम होता गया जो किसी विशेष क्षेत्र में ही व्यवहृत होते थे।

इन अभियानों के नायकों में अभिजात वर्ग के मुसलमान थे। इस वर्ग के मुसलमान दो-चार पीढ़ी पहले अरब, ईरान, तुर्की और अफ़गानिस्तान से प्रव्रजित होकर दिल्ली पहुँचे थे। इन परिवारों ने अपने पूर्वजों की भाषा बहुत काल तक सुरक्षित रखी। जो मुसलमान परिवार सीधे दक्खिन में आये, वे लोग धार्मिक दृष्टि से अरबी को और साहित्यिक दृष्टि से फ़ारसी को महत्त्व देते थे। दक्खिन के आफ़ाक़ियों और दिल्ली से आये हुए अभिजात-वर्ग के मुस्लिम परिवारों के सामने बड़ी कठिनाई यह थी कि कुछ बहुभाषाविदों को छोड़ कर ईरान का निवासी तुर्क से किस भाषा में बात करे, अरबी बोलने वाला व्यक्ति अफ़गान को अपने मनोभावों से कैसे अवगत कराये ? इन विदेशी मुसलमानों ने सांस्कृतिक दृष्टि से फ़ारसी को स्वीकार कर लिया। अभिजात वर्ग के व्यक्तियों के सम्मुख दूसरा प्रश्न यह था कि सामान्य-जनों से किस भाषा में बातचीत करें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए खड़ी बोली पर ध्यान दिया गया जो व्याकरण की दृष्टि से सरल थी और व्यापक क्षेत्र में समझी जाती थी। क्षेत्रीय प्रभावों के रहते हुए भी खड़ी बोली में इस प्रकार की विशेषता थी कि राजस्थान से लेकर बिहार के अन्तिम छोर तक जनता उसे समझ सकती थी। हिन्दी भाषी क्षेत्र में साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थानी के पश्चात् अवधी महत्त्वपूर्ण भाषा थी। कुछ समय बीतने पर ब्रज ने अवधी का स्थान ग्रहण किया। ब्रज के पश्चात् खड़ी बोली यह स्थान ग्रहण करती है। आगन्तुक मुसलमानों ने खड़ी बोली का महत्त्व समझा था। सामान्य जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने इसे स्वीकार किया। अभिजात वर्ग के जो मुसलमान भारतीय साहित्य में रुचि रखते थे, उन्होंने अवधी और ब्रज का अध्ययन किया। 'सबरस' नामक ग्रन्थ में अमीर खुसरो का लिखा हुआ खड़ी बोली का एक दोहा उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार ब्रज के अनेक दोहे विषय को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए लिखे गये हैं।

बहमनी साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् अरब, ईरान और तुर्की से कई परिवार सीधे दक्खिन में आकर बसे। औरंगज़ेब की विजय के पश्चात् बाहरी लोगों का सीधे दक्खिन में आना बन्द हुआ। इन नवागन्तुकों के लिए भाषा की कठिनाई बहुत बड़ी बाधा थी। स्थानीय भाषाएँ—तेलुगु, मराठी और कन्नड़ उनके लिए अत्यन्त दुरूह थीं। फिर दिल्ली से आनेवाला कुलीन व्यक्ति एक वर्ष दक्खिन में रहता था, दो वर्ष गुजरात में और छः महीने बंगाल में। इसी प्रकार दक्खिन का आफ़ाक़ी कभी मराठी भाषी क्षेत्र में नियुक्त होता, कभी तेलुगुभाषी प्रदेश में और कभी कर्णाटक में। यही कारण है कि आफ़ाक़ी लोगों ने भी खड़ी बोली को सामान्य बोलचाल के लिए स्वीकार कर लिया, यद्यपि इस स्वीकृति के कारण दक्खिनी में फ़ारसी के अधिक और अरबी के कुछ कम शब्द सम्मिलित हो गये। खड़ी बोली बोलते समय सामान्य जनता ने भी अरबी-फ़ारसी के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग में गौरव अनुभव किया। मुहम्मद तुगलक से लेकर औरंगज़ेब तक दक्खिनी राज्यों का सम्पर्क किसी न किसी रूप में दिल्ली से रहा, अतः दिल्ली की खड़ी बोली जिस भाँति परिष्कृत होती गई, उसका बहुत कुछ प्रभाव दक्खिनी पर भी पड़ा, किन्तु उसका ढाँचा वही बना रहा जो मुहम्मद तुगलक के समय में था। पंजाब, राजस्थान, अवध और बिहार के निवासी

खड़ी बोली का उपयोग अपने ढंग से करते थे। साहित्यिक दक्खिनी में भी यह प्रभाव विद्यमान रहा।

इस विषय में मुस्लिम धर्म-प्रचारकों और सन्तों तथा धर्मशास्त्रज्ञों का उल्लेख आवश्यक है। दक्खिनी के मूल निवासियों में धर्म-प्रचार करना इन लोगों का मुख्य उद्देश्य नहीं था। इन प्रचारकों का मुख्य उद्देश्य यह था कि सहस्रों की संख्या में जो मुसलमान अथवा नव मुसलमान दक्खिन में आकर बस गये थे उन्हें धार्मिक दृष्टि से केन्द्रीय भावधारा से पृथक् न होने दिया जाय। इस्लाम के प्रथम बड़े धर्म-प्रचारक ख़ाजा बन्देनवाज़ इसी लिए ९० वर्ष की आयु में अन्तःप्रेरणा से दक्खिन आये थे। ख़ाजा बन्देनवाज़ के पश्चात् गत छह सौ वर्षों में कई बार सहस्र सहस्र शिष्यों के साथ मुस्लिम सन्त यहाँ आते रहे और गुलबर्गा, बीजापुर, औरंगाबाद तथा अन्य नगरों में धर्मप्रचार का केन्द्र बना कर अपना कार्य करते रहे। ये साधु-सन्त जिस जनता में प्रचार करने के लिए आये थे, उसके लिए खड़ी बोली ही माध्यम बन सकती थी। फलस्वरूप खड़ी बोली का प्रयोग इन सन्तों ने किया। लगभग डेढ़ सौ वर्ष बीतने पर साहित्य के लिए दक्खिनी का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। सन्तों और धर्मशास्त्रों के कारण दक्खिनी में दर्शन और धर्मशास्त्र से सम्बन्धित अनेक अरबी पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त होने लगे।

दक्खिनी पर मराठी तथा गुजराती का प्रभाव

दक्खिनी पर स्थानीय बोलियों का प्रभाव पड़ा। मुसलमानों का आगमन सर्वप्रथम देवगिरि में हुआ। उन दिनों देवगिरि महाराष्ट्र की प्रशासनिक राजधानी ही नहीं थी, विद्या की राजधानी भी देवगिरि के निकट पैठन (प्रतिष्ठान) में थी। मराठी आर्यकुल की भाषा है। खड़ी बोली और मराठी में कई विषयों में साम्य है। मलिक काफूर और मुहम्मद तुगलक के समय जो उत्तर भारतीय परिवार देवगिरि पहुँचे थे, वे मुख्य धारा से दूर पड़ चुके थे। साठ-सत्तर वर्ष में उन्होंने अपनी भाषाओं की मुख्य धारा से हट कर जो सामान्य बोली अपनायी उसका रूप इसी काल में निर्धारित हुआ। मराठी ने इन दिनों दक्खिनी पर जो प्रभाव डाला वह अमिट बना रहा। औरंगज़ेब के आक्रमण के समय बड़ी संख्या में उत्तर भारत के निवासी दक्खिन में आये। देवगिरि-के निकट औरंगाबाद में एक बार फिर दक्खिनी अपनी मूल धारा से परिचय पाती है, और कई नये तत्त्व ग्रहण करती है।

दौलताबाद के पश्चात् उत्तरवासी गुलबर्गा पहुँचे। वहाँ भी दक्खिनी का विकास होता रहा। उसने मराठी का प्रभाव सुरक्षित रखा, किन्तु द्रविड़कुल की भाषा कन्नड़ से उसने उल्लेखनीय प्रभाव स्वीकार नहीं किया। जब बीजापुर में मुस्लिम शासन स्थापित हुआ तो वहाँ बड़े बड़े पदों पर मराठी भाषी नियुक्त किये गये। उच्च श्रेणी की जनता में मुसलमानों के पश्चात् मराठी भाषियों की गणना की जाती थी। बीजापुर की राजभाषा बहुत समय तक मराठी बनी रही। इस सम्पर्क ने भी दक्खिनी में मराठी प्रभाव को स्थायी रखने में योग दिया। मराठी आर्यकुल की भाषा है, उसके शब्द खड़ी बोली में सरलता से घुलमिल जाते, हैं किन्तु न तो गुलबर्गा और बीजापुर में और न ही गोलकुण्डा में कन्नड़ तथा तेलुगु के शब्द साहित्यिक दक्खिनी में स्थान पा सके।

दस-पाँच शब्द ही साहित्यिक दक्खिनी में इन दोनों भाषाओं से लिये गये हैं। बोलचाल की दक्खिनी में बीजापुर के आसपास कन्नड़ के और गोलकुण्डा के आसपास तेलुगु के अनेक शब्द अवश्य प्रयुक्त होते हैं।

शब्दावली के सम्बन्ध में उपर्युक्त नीति का अवलम्बन करते हुए भी दक्खिनी, उच्चारण के विषय में क्षेत्रीय भाषाओं से दूर नहीं रह सकी। औरंगाबाद में दक्खिनी के बोलने का ढंग, स्वरों का उतार-चढ़ाव, महाप्राण तथा अल्पप्राण का उच्चारण, वाक्य में शब्दों की स्थिति को व्यक्त करनेवाली 'लय' मराठी से प्रभावित है। इसी प्रकार कर्णाटक में कन्नड़ और आन्ध्र में तेलुगु का प्रभाव दिखाई देता है। तेलुगु, मराठी और कन्नड़ का उच्चारण जिस ढंग से विशेष क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होता है, उसी ढंग से दक्खिनी का उच्चारण भी परिवर्तित होता है। हैदराबाद में दक्खिनी बोलने का जो ढंग है वह सौ मील दूर कर्नूल में नहीं है। इसी प्रकार बीजापुर और गुलबर्गा के उच्चारण में बहुत अन्तर है। उच्चारण सम्बन्धी इन परिवर्तनों का विश्लेषण दक्खिनी ही नहीं क्षेत्रीय भाषाओं के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

मराठी के पश्चात् दक्खिनी पर गुजराती का प्रभाव उल्लेखनीय है। मुग़लों ने १६०१ ई० में गुजरात पर अधिकार कर लिया। वहाँ के विद्वान् और कुलीन व्यक्ति बीजापुर चले आये। इन व्यक्तियों में अनेक सूफ़ी सन्त थे। १५वीं और १६वीं शती में अहमदाबाद सूफ़ियों का प्रसिद्ध केन्द्र था। वहाँ जो कुछ सोचा गया, उसका सारभाग बीजापुर को अनायास मिल गया। यहाँ की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ पहले बीजापुर और वहाँ से गोलकुण्डा को अनायास मिल गईं। गुजरात के इन प्रवासियों के कारण बीजापुर ही नहीं गोलकुण्डा की दक्खिनी में भी गुजराती के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे।

मेवाती, हरियाणी, ब्रज, अवधी आदि

खड़ी बोली जहाँ बोली जाती है उस क्षेत्र के आसपास मेवाती, हरियाणी, पंजाबी और ब्रज बोली जाती है। इन भाषाओं के प्रभाव दक्खिनी में आज भी विद्यमान हैं। खड़ी बोली पर पूरबी बोलियों का प्रभाव बहुत कम है, किन्तु दक्खिनी इस विषय में खड़ी बोली का अनुसरण नहीं करती। शब्दों के बहुवचन, पूर्वकालिक क्रिया, क्रिया के स्त्रीलिंगी रूपों और क्रिया विशेषणों पर राजस्थानी का प्रभाव लक्षित होता है। यह उल्लेखनीय बात है कि राजस्थानी नेपाल तथा हिमालय के अन्य अंचलों में अपनी मुख्य धारा से हट कर जो रूप धारण करती है, उसकी कुछ झलक दक्खिनी में भी मिलती है। यह साम्य इस बात को पुष्ट करता है कि जब कोई भाषा अपनी मुख्य धारा से पृथक् होती है और दो पृथक् दिशाओं में प्रयुक्त होती है तो उसकी कुछ विकृतियाँ दोनों में समान रहती हैं। उत्तर में नेपाल और उसके सर्वथा विपरीत दक्षिण में गोलकुण्डा की दक्खिनी में राजस्थानी के शब्द-रूपों में कई स्थलों पर आश्चर्यजनक समानता है। प्रभाव की दृष्टि से राजस्थानी के पश्चात् पंजाबी का नाम लिया जा सकता है। दक्खिनी में राजस्थानी और ब्रज की भाँति आकारान्त विशेषणों और क्रियापदों को ओकारान्त बनाने की प्रवृत्ति नहीं है। इस विषय में खड़ी बोली और पंजाबी में समानता है।

पच्छिमी हिन्दी—खड़ी बोली—से रूप-विन्यास ग्रहण करके भी दक्खिनी ने पूरब की बोलियों से सम्बन्ध बनाये रखा। खड़ी बोली ने इस प्रकार का कोई सम्बन्ध पूरबी बोलियों से कभी रखा अथवा नहीं यह जानने के लिए पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं। क्रियापदों के अतिरिक्त अन्य विषयों में दक्खिनी ने पूरबी बोलियों के प्रभाव को सुरक्षित रखा है। जहाँ तक अवधी का प्रश्न है, उसके प्रभाव का बड़ा कारण यह है कि १६वीं शती के पूर्वार्ध में अवधी उत्तर भारत की साहित्यिक और वैचारिक भाषा थी। इसीलिए सूफ़ी सन्तों ने उसे काव्य के माध्यम के रूप में स्वीकार किया। जायसी की पद्मावत के साथ अवधी का वह गुण समाप्त नहीं हुआ। अवध सूफ़ियों का केन्द्र था और अवधी में सूफ़ी सन्तों ने अनेक काव्य लिखे। दक्खिन में आने वाले अनेक कुलीन व्यक्ति तथा सूफ़ी सन्त अवधी के इस साहित्य से परिचित थे। दक्खिनी में पद्मावत और अवधी के अन्य काव्यों के अनुवाद इस प्रभाव को सूचित करते हैं। उन दिनों लोकभाषा के नाते अवधी का जो रूप था, उससे भी दक्खिन के कुछ लेखक परिचित थे। अवधी के लोक साहित्य की लोकप्रिय कहानी 'चन्दायन' अथवा 'चन्दा लोरक' की कहानी दक्खिनी में भी लिखी गई और जनता ने उसकी प्रशंसा की।

पूरबी बोलियों का प्रभाव दक्खिनी पर पड़ा, इसके कुछ अन्य कारण भी हैं। मुस्लिम काल में दिल्ली से हट कर जहाँ-जहाँ स्वतन्त्र मुस्लिम शासन स्थापित हुए, दिल्ली ने अवसर आने पर उनके विरुद्ध शस्त्र उठाया। जब कभी ऐसे स्थानों पर केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध प्रान्तीय शासक पराजित होता था, वहाँ के सामन्त, विद्वान् और कुलीन लोग दिल्ली की ओर अन्तरंग क्षेत्र में न जाकर बहिरंग क्षेत्र में जाना उचित मानते थे। जब गुजरात के मुस्लिम शासकों का पतन हुआ तो वहाँ के प्रतिष्ठित जन दिल्ली न जाकर बीजापुर और गोलकुण्डा पहुँचे। इसी प्रकार जौनपुर तथा पूर्व के मुस्लिम केन्द्रों के पतन के पश्चात् वहाँ के सामन्त तथा विद्वान् भाग्यान्वेषण के लिए पहले गुजरात और वहाँ से बीजापुर-गोलकुण्डा पहुँचे होंगे। पूरब में जौनपुर मुसलमानों का बहुत बड़ा केन्द्र था। विद्यापति जैसे महाकवि यहाँ के वातावरण से प्रभावित हुए थे। दूसरा कारण यह है कि मुस्लिम सेना एक स्थान पर नहीं रहती थी। पूरब में रहने के कारण वहाँ की भाषा का प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया होगा। तीसरा और मुख्य कारण यह है कि हिन्दी की निर्गुण-धारा के लगभग सभी सन्त कवि पूरब के थे और वहाँ की बोली बोलते थे। उनकी कविता में पूरबी बोलियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

ख़ाजा बन्देनवाज़ की रचनाओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करने के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि उनकी भाषा पर न तो पूरबी बोलियों का प्रभाव है और न गुजराती का। इसका एक कारण यह हो सकता है कि उन्होंने अपने जीवन के ९० वर्ष दिल्ली में बिताये थे। उन दिनों दिल्ली में जो भाषा बोली जाती थी, उसी में उन्होंने लिखा। शाह मीरांजी शम्सुलउश्शाक़ और शाह बुरहानुद्दीन जानम की रचनाओं पर मराठी और गुजराती के अतिरिक्त ब्रज का प्रभाव भी है। गोलकुण्डा के वजही राजस्थानी से प्रभावित हैं। यही स्थिति दूसरे कवियों की है। किन्तु इन बाहरी प्रभावों के रहते हुए भी एक बात स्पष्ट है कि शीघ्र ही दक्खिनी का साहित्यिक परिष्कृत रूप निर्धारित हो गया। थोड़े बहुत अन्तर के साथ बीजापुर और गोल-

कुण्डा में वही रूप प्रयुक्त होता था। कवियों और लेखकों ने परिनिष्ठित रूप का विशेष ध्यान रखा।

दक्खिनी का क्षेत्र

बोलचाल की दक्खिनी के अनेक रूप मिलते हैं। उसमें तेलुगु, मराठी और कन्नड़ से सम्बन्धित अनेक उपभाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल की दक्खिनी की उत्तरी सीमा के सम्बन्ध में डाक्टर ग्रिअर्सन ने लिखा है :—

"यद्यपि कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती, फिर भी सतपुड़ा की शृंखलाओं और उससे सम्बन्धित पहाड़ियों को परिनिष्ठित हिन्दुस्तानी और दक्खिनी की सीमा मान सकते हैं।"[१]

ग्रिअर्सन दक्खिनी की दक्षिणी और पश्चिमी सीमा समुद्र-तट तक मानते हैं। इसीलिए उन्होंने बम्बई और मद्रास के निवासियों द्वारा व्यवहृत दक्खिनी के उदाहरण दिये हैं।

बोलचाल की दक्खिनी का प्रयोग विन्ध्य से समुद्र-तट तक दो प्रकार के लोग करते हैं— (१) ऐसे परिवारों के लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और पीढ़ियों से दक्खिन में रहते हैं। (२) ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा तेलुगु, तमिल आदि दक्षिणी भाषाएँ हैं। इस ग्रन्थ का उद्देश्य बोलचाल की दक्खिनी का विश्लेषण करना नहीं है। परिनिष्ठित दक्खिनी के विश्लेषण को ध्यान में रख कर यह ग्रन्थ लिखा गया है। परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी का क्षेत्र बीजा-पुर, गुलबर्गा और हैदराबाद तक सीमित है। विशेष कारणों से निश्चित अवधि के लिए इस सीमा का विस्तार औरंगाबाद तक हुआ। इस क्षेत्र में जो लोग मातृभाषा के रूप में अथवा सामान्य भाषा के रूप में जिस दक्खिनी का प्रयोग करते हैं अथवा यहाँ लिखे गये साहित्य में जिस दक्खिनी का उप-योग किया गया है, उसके उदाहरणों का आधार लेकर यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। बोलचाल की दक्खिनी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस विस्तृत क्षेत्र के उदाहरणों पर विचार करना सम्भव नहीं था।

दक्खिनी का नामकरण

पुराने लेखकों ने दक्खिनी को 'हिन्दी' लिखा है—

मीरांजी शम्सुलउश्शाक़

हैं अरबी बोल केरे। और फ़ारसी भौतेरे
ये हिन्दी बोलूँ सब। उस अर्तों के सबब
ये भाका भल सो बोले। पन उसका भावत खोले
ये गुरुमुख पंद पाया। तो ऐसे बोल चलाया

---

१. जी० ए० ग्रिअर्सन — लिंग्वेस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया, खण्ड ९, पृ० २१२।

जे कोई अछे ख़ासे। उस बयान के पासे
वे अरबी बोल न जाने। ना फ़ारसी पछाने
ये उनकूं बचन हीत। सुन्नत बूझें रीत
ये मग्ज मीठा लागे। तो क्यूं मन उसथे भागे।[1]

वजही

जेते फ़हमदारां, जेते गुनकारां सो आज तलक कोई इस जहां में, हिन्दुस्तान में, हिन्दी ज़बान सूं, इस लताफ़त इस छन्दां सूं नज़्म हौर नसर मिलाकर यूं नई बोल्या......।[2]

बहरी

हिन्दी तो ज़बान च है हमारी
कहने न लगी हमन कूं भारी
हौर फ़ारसी इसते अत रसीला
हर हुर्फ़ में इश्क़ है न हीला
हर बोल में मारिफ़त की बानी
सीता की न राम की कहानी।[3]

'हिन्दवी' और 'देहलवी' नाम भी दक्खिनी के लिए प्रयुक्त होते थे।

अब्दल

सो यूं बचन सूं शाह उस्ताद कान
पूछ्या जगतगुर शेर कह किस ज़बान
ज़बाँ हिन्दवी मुझ सूं हौर **दहलवी**
ना जानूं अरब हौर अजम मसनवी।[4]

औरंगज़ेब के आक्रमण के समय हिन्दी और दक्खिनी को पृथक्-पृथक् बताने की आवश्यकता पड़ी। तभी इसका नाम दक्खिनी पड़ा। इस समय खड़ी बोली की इस विशिष्ट शैली के लिए 'दक्खिनी' नाम ही प्रयुक्त होता है। 'दखन की बोली' और 'दखनी' नामों का प्रयोग इब्ने-निशाती और वजही ने किया है—

दखन में जो दखनी मिठी बात का
अदा नइं किया कोई उस धात का।[5]

---

१. मीरांजी शम्सुल उश्शाक़ – खुशनामा।
२. वजही – सबरस।
३. बहरी – मनलगन।
४. अब्दल – इब्राहीमनामा।
५. वजही – कुतुब मुश्तरी।

बिसातीं जो हिकायत फ़ारसी है
मुहब्बत देखने की आरसी है
वहां मुश्किल इबारत किसकूँ सजता
इबारत सब किसे वो नइं समजता
तुजे है फ़ारसी में दस्तगह आज
उसे हरकस के तइं समझा को तू बोल
दखन की बात सूं रियां कूं खोल
के उसमें सरबसर मिल यार सूं यार
करे सो है पिरत का गर्म बाज़ार।[1]

इस ग्रन्थ में जिन प्रमुख लेखकों और कवियों की रचनाओं को आधार मान कर अध्ययन किया गया है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

(१) ख़ाजा बन्दे नवाज़ गेसू दराज़—(जन्म १३२२ ई० मृत्यु १४२३ ई०) वास्तविक नाम-सैयद मुहम्मद बिन सैयद अरूफ़। इनके पूर्वज खुरासान से दिल्ली आये। तैमूरलंग के आक्रमण के समय बन्देनवाज़ दिल्ली छोड़कर गुजरात चले गये, वहां से दिल्ली लौटे। ९० वर्ष की आयु में धर्म-प्रचार के लिए गुलबर्गा पहुँचे। यहीं देहान्त हुआ। ये अपना धर्मोपदेश हिन्दी (दक्खिनी) में दिया करते थे। शिष्य इस उपदेश को लिख लेते थे। इनकी लिखी हुई फ़ारसी और दक्खिनी की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'मेराजुल आशक़ीन' के कई संस्करण निकल चुके हैं। मेरे मित्र तथा साथी श्री मुबारिजुद्दीन 'रफ़त' प्राध्यापक गवर्नमेंट कालेज, गुलबर्गा को इनकी लिखी सात छोटी छोटी रचनाएं प्राप्त हुई हैं। "रफ़त" साहब ने बन्दे नवाज़ की एक अप्रकाशित रचना "शिकारनामा" के कुछ अंश मुझे भेजे हैं जिनका मैंने उपयोग किया है।

(२) शाह मीरांजी शम्सुल उश्शाक़—(मृत्यु १४९७ ई०) जन्म स्थान मक्का (अरब), धर्म प्रचार के लिए भारत आये। कुछ समय उत्तर भारत में रह कर बीजापुर पहुँचे। खुशनामा और शहादतुल हक़ीकत इनकी रचनाएं हैं।

(३) शाह बुरहानुद्दीन जानम—(जन्म १५४४ ई०—मृत्यु १५८३ ई०) शाह मीरांजी शम्सुल उश्शाक़ के पुत्र, बीजापुर में जन्म। पिता ने पढ़ाया और दीक्षा दी। "वसीयतुल हादी", "इर्शादनामा" आदि कई ग्रन्थों के रचयिता।

(४) मुहम्मद कुली कुतुब शाह—(१५८१ ई०—१६११ ई०) गोलकुण्डा के कुतुब-शाही वंश में जन्म, पिता इब्राहीम कुतुबशाह, जन्म तथा मृत्यु गोलकुण्डा में। एकमात्र उपलब्ध रचना "कुल्लियाते मुहम्मद कुली कुतुब शाह"।

(५) वजही—इब्राहीम कुतुब शाह—(१५५०–१५८१ ई०) के समय में लेखन-कार्य प्रारंभ किया। अब्दुल्ला कुतुब शाह (१६२७–१६७२ ई०) के समय देहान्त। अब्दुल्ला

---

१. इब्ने निशाती – फूलबन।

कुतुब शाह के राजकवि। मुहम्मद कुली कुतुबशाह के आस्थान में भी आदर। 'सबरस' महत्वपूर्ण रचना। यह ग्रन्थ १६३६ ई० में समाप्त। "मसनवी कुतुब मुश्तरी" पद्यबद्ध रचना।

(६) ग़वासी (मृत्यु १६५० ई०) मुहम्मद कुतुब (१६११ ई० – १६२६ ई०) के शासन काल में गोलकुण्डा पहुँचे। कवि होने के साथ-साथ राजनीतिज्ञ भी। गोलकुण्डा के राजदूत बनकर बीजापुर गये। "सैफ़ुल मुल्क व बदीउज्जमाल" तथा "तूतीनामा" महत्वपूर्ण रचनाएं।

(७) मुहम्मद अमीन अयाग़ी––सूफ़ी साधक, इनकी रचना "नजातनामा" से इस प्रबन्ध में सहायता ली गई है। यह पुस्तक १६४२ ई० में लिखी गई।

(८) नुसरती––वास्तविक नाम मुहम्मद नुसरत, काव्य नाम नुसरती, बीजापुर में पालन-पोषण। मुहम्मद आदिल (१६२६–१६५६) अली आदिल (द्वितीय) (१६५६–१६७२ ई०) और सिकन्दर (१६७२–१६८६ ई०) के शासन काल में आस्थान कवि। अली आदिलशाह (द्वितीय) का आश्रय मिला। तीन रचनाएं उपलब्ध––(१) गुलशनेइश्क (रचना काल १६५८ ई०), (२) अलीनामा (रचना १६६६ ई०), (३) तारीख़े सिकन्दरी (रचना १६७० ई०)। इनके अतिरिक्त नुसरती के कुछ कसीदे भी उपलब्ध हैं।

(९) अली आदिल शाह (द्वितीय)––(शासन काल १६५६ ई०–१६७३ ई०), एकमात्र रचना "कुल्लियाते शाही"। यह कुल्लियात "अली आदिल शाह का काव्य संग्रह" नाम से आगरा विश्व-विद्यालय ने प्रकाशित की है।

(१०) इब्ने निशाती––(१६१०–१६६० ई० के लगभग), अब्दुल्ला कुतुबशाह के समय में गोलकुण्डा में विद्यमान। अन्तिम कुतुबशाह अबुलहसन के समय मृत्यु। मुख्य रचना "फूलबन"।

(११) क़ाज़ी महमूद बहरी––गोगी (गुलबर्गा जिला) में जन्म, १६८५ में बीजापुर गये। औरंगज़ेब के आक्रमण के कारण बहरी हैदराबाद पहुँचे। यहां उनकी सारी रचनाएं चोरी चली गईं। हैदराबाद में "मनलगन" नामक पुस्तक लिखी। १७०० ई० में यह पुस्तक समाप्त हुई।

(१२) वजदी––निवास-स्थान कर्नूल (आन्ध्र), तीन कथात्मक काव्य लिखे––(१) तोहफ़े आशिकां (रचना १७०४ ई०), (२) पंछीनामा (रचना १७१९), (३) बाग़े जां फ़िज़ा (रचनाकाल १७३३ ई०)।

(१३) वली दक्खनी––पूरा नाम वली मुहम्मद, "वली" काव्य नाम। अहमदाबाद में दीक्षा ली। कुछ समय तक गुजरात में रहे। निवास-स्थान औरंगाबाद। औरंगज़ेब के शासन-काल में दिल्ली की यात्रा। औरंगज़ेब के काल में औरंगाबाद पर भाषा संबंधी जो प्रभाव पड़ा, वली की रचनाओं में उसके उदाहरण मिलते हैं। निधन तिथि के सम्बन्ध में मतभेद––कुछ लोग इनका निधन १७३१ ई० में मानते हैं और कुछ लोग १७४३ ई० में।

इस प्रबन्ध के लिए ख़ाजा बन्दे नवाज़ से लेकर औरंगज़ेब की मृत्यु तक लिखी गई ऐसी पुस्तकें चुनी गई हैं जो भाषा की दृष्टि से अपने युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये रचनाएं कर्णाटक, महाराष्ट्र और आन्ध्र में प्रयुक्त दक्खिनी के स्वरूप का परिचय देती हैं।

इन दिनों भी बहुत-से कवि और लेखक दक्खिनी में लिखते हैं। कवियों में खतीब और कहानी लेखकों में पद्मनाभन की रचनाओं से उदाहरण लिए गये हैं। खतीब और पद्मनाभन की रचनाएं लेखक द्वारा संपादित "दक्खिनी का पद्य और गद्य" नामक संकलन में प्रकाशित हो चुकी हैं।

इस समय की बोलचाल की दक्खिनी की क्या स्थिति है यह जानने के लिए वयोवृद्ध महिलाओं से अनेक कहानियां और गीत सुने गये और उन्हें ज्यों का त्यों लिखने का प्रयत्न किया गया। गीत और कहानियों का संकलन मुख्य रूप से हैदराबाद, गुलबर्गा, बीजापुर और कर्नूल में किया गया। टेप रिकार्डर पर विभिन्न वर्गों और आयु की स्त्रियों तथा पुरुषों की बातचीत अंकित की गई और इन "ध्वनि अंकनों" से यथास्थान सहायता ली गई है।

ध्वनि

उच्चारण

ध्वनि और लिपि

१. आरंभिक काल से अब तक दक्खिनी की ध्वनियों में जो परिवर्तन हुआ है, उसका विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करना संभव नहीं है। साहित्यिक भाषा के रूप में दक्खिनी का उपयोग १४वीं शती से प्रारम्भ होता है। पर्याप्त संख्या में दक्खिनी की ऐसी पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं, जिनमें १४वीं और १५वीं शती की साहित्यिक भाषा विश्लेषण के लिए उपलब्ध है। इस सामग्री का उपयोग दक्खिनी के रूप-विन्यास तथा उसके प्रकृति-प्रत्यय के परिचय के लिये किया जा सकता है। दक्खिनी की ध्वनियों के निरूपण में इस सामग्री से अधिक सहायता नहीं मिलती। दक्खिनी का साहित्य जिस लिपि में लिखा गया है, उसमें सभी भारतीय ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। आरम्भिक काल के हस्तलिखित ग्रन्थ अरबी लिपि में लिखे गये हैं, जिसमें प, ट, च, ग और ड़ जैसी बहुव्यवहृत ध्वनियों के लिए चिह्न नहीं हैं। सोलहवीं शती के अन्तिम दिनों में दक्खिनी के लिए अरबी लिपि के उस संवर्द्धित तथा परिवर्द्धित रूप का प्रयोग होने लगा, जिसे फ़ारसी भाषा ने स्वीकार कर लिया था। इस संशोधित तथा परिवर्द्धित लिपि में भी "ड़" नहीं था। भारतीय स्वरों की अभिव्यक्ति में यह लिपि उस समय ही नहीं आज भी त्रुटिपूर्ण है। नवीन भारतीय भाषाओं में प्रचलित स्वर प्रणाली को पूर्णतया लिपिबद्ध करना नागरी, बंगाली, तेलुगु आदि लिपियों के लिए भी सरल कार्य नहीं है। इन लिपियों में पढ़नेवाले स्वरों के सम्बन्ध में परम्परा और अभ्यास का अवलम्बन लेते हैं। नागरी, बंगला आदि लिपियों में भारत की प्राचीनतम लिपियों से केवल इतनी ही भिन्नता है कि अनेक शताब्दियों के अभ्यास और लेखन-उपकरणों के विकास के कारण लिपि-चिह्नों की आकृतियाँ पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गई हैं। म भा आ और न भा आ की परिवर्तनशील ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया, आद्य भारतीय आर्य भाषा के लिए जिस लिपि का आविष्कार हुआ, उसमें नवीन भारतीय आर्य भाषाओं के स्वरों को व्यक्त करने के लिए नये चिन्हों का समावेश नहीं किया गया।

हिन्दी-क्षेत्र की ध्वनियां और दक्खिनी

२. सामान्य बोलचाल में इन दिनों दक्खिनी का जो रूप प्रचलित है, उसके आधार पर

ध्वनियों का विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है। लिखित सामग्री के कारण दक्खिनी के ध्वनि-विकास के जानने में सहायता मिलती है। निस्सन्देह दक्खिनी की ध्वनियाँ आरम्भ में विविधता लिये हुए थीं। दक्खिनी बोलने वाले उत्तर भारत के अनेक क्षेत्रों से दक्षिण में पहुँचे। इन प्रवासियों का यात्राकाल भी एक नहीं रहा। कुछ परिवार १४वीं शती के आरम्भ में आये और कुछ २०वीं शती में। जिस क्षेत्र से ये परिवार प्रव्रजित होकर दक्षिण में आये, वहाँ की ध्वनियाँ सात सौ वर्ष से अपरिवर्तित नहीं रहीं। दक्षिण के इन नवागन्तुकों पर विशेष रूप से पंजाबी, ब्रज, हरियाणी और खड़ीबोली की ध्वनियों का प्रभाव था। पंजाबी, ब्रज और खड़ी बोली की ध्वनियों का अन्तर नगण्य नहीं है। दक्षिण के इन नवागन्तुकों में से कुछ तो सीधे अपने वासस्थल से आये और कुछ गुजरात तथा महाराष्ट्र में काल-यापन करके साहित्यिक दक्खिनी के क्षेत्र में पहुँचे थे। कुछ सूफी सन्त अवध के सूफी-केन्द्रों में रह चुके थे और कुछ शस्त्रजीवी राजस्थान के छोटे-छोटे राज्यों के विजय-अभियान में सम्मिलित हुए थे।

ईरान, अरब आदि के विदेशी लोग : उनकी ध्वनियां

३. चौदहवीं शती से १७वीं शती तक ईरान, ईराक, अरब तथा अन्य देशों से अनेक भाग्यान्वेषी सीधे जलमार्ग से दक्खिन पहुँचे थे। हैदराबाद राज्य में इस प्रकार के विदेशी जनों का आगमन २०वीं शती के आरम्भ तक होता रहा। दक्खिनी क्षेत्र में बसने वाले ये विदेशी-जन आरम्भ में आर्य भाषा की ध्वनियों का उच्चारण विशेष ढंग से करते होंगे। आज भी उस विदेशी प्रवासी की कल्पना की जा सकती है जो ईरान अथवा अरब से आकर दक्खिन में बसा है, तथा यहाँ की ट, ड, ड़, जैसी मूर्द्धन्य और भ, ध जैसी सर्वथा अपरिचित महाप्राण ध्वनियों का यत्नपूर्वक उच्चारण करते समय उत्तर भारत से प्रव्रजित होकर दक्खिन में बसने वालों का ध्यान आकर्षित करता है। उत्तर भारत से प्रवासित परिवार ईरान-अरब से आने वाले व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा रखते थे, उनकी भाषाओं के प्रति आस्था भी कम नहीं थी, किन्तु यह बात भी सम्भावना के क्षेत्र से बाहर नहीं है कि जब ईराक-ईरान से आनेवाले श्रद्धेय व्यक्तियों के मुख से उत्तर भारत के प्रवासित सज्जन अपनी भाषा-हिन्दी-का उच्चारण सुनते होंगे तो मनोरंजन की सामग्री अवश्य प्रस्तुत होती होगी।

दक्षिणी भाषाओं का प्रभाव

४. साहित्यिक दक्खिनी के क्षेत्र की अपनी सम्पन्न भाषाएँ थीं, जिनमें मराठी को छोड़ कर शेष का सम्बन्ध द्रविड़-कुल की भाषाओं से था। द्रविड़ कुल की भाषा बोलने वाले तथा मराठी भाषी जन रणक्षेत्र में पराजित होकर भी ऐतिहासिक घटनाओं के मूक दर्शक मात्र नहीं थे। इन लोगों ने अपने विजेताओं की भाषा को सांस्कृतिक महत्व प्रदान किया था। इस दृष्टि से दक्खिनी के उच्चारण में मराठी, तेलुगु और कन्नड भाषी व्यक्ति आरम्भिक काल में जिस स्वतंत्रता का उपभोग करते थे, उसका अनुमान लगाया जा सकता है। तेलुगु, मराठी और

कन्नड तथा इन तीनों की उपभाषाएँ उस क्षेत्र को कई भागों में विभक्त करती थीं, जहाँ साहित्यिक दक्खनी का विकास हुआ।

ध्वनियों में समन्वय

५. दक्खिनी के आरम्भिक उच्चारण का विश्लेषण नव्य आर्य-भाषाओं के ध्वनि-सम्बन्धी विवेचन के लिए महत्वपूर्ण है। यह विवेचन हमें उस समन्वय-प्रणाली से अवगत कराता है, जिसके कारण हिन्दी भाषी क्षेत्र की विविध बोलियों; अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा पश्तो आदि; मराठी, तेलुगु और कन्नड क्षेत्र की अनेक उप-भाषाओं और बोलियों की ध्वनि सम्बन्धी विविधताओं के बीच साहित्यिक दक्खिनी की ध्वनियाँ सुनिश्चित एकरूपता प्राप्त कर सकीं।

दक्खिनी का आधुनिक ध्वनि-समुदाय और हिन्दी

६. परिनिष्ठित दक्खिनी और खड़ीबोली के ध्वनि सम्बन्धी विकास का क्रम समान नहीं है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से यह चमत्कारपूर्ण घटना है कि पृथक् प्रदेशों में अत्यंत भिन्न परिस्थितियों में विकसित होकर दक्खिनी और खड़ीबोली की ध्वनियों में बहुत कुछ समानता बनी हुई है। खड़ीबोली की सभी विशेषताएँ दक्खिनी में विद्यमान हैं। उदाहरण के रूप में खड़ीबोली के स्वरों को प्रस्तुत किया जा सकता है। खड़ीबोली अथवा साहित्यिक हिन्दी अपनी जिन विशेषताओं के कारण नव्य भारतीय आर्यभाषाओं में उल्लेखनीय मानी जाती है, उनमें उसके स्वरों की उच्चारण-सरलता भी एक है।[१]

विदेशी ध्वनियां

७. यही कारण है कि ईराक, ईरान और आफ्रीका से दक्खिन में आनेवाले व्यक्ति शीघ्र ही दक्खिनी (हिन्दी) की ध्वनियों को अपना सके। द्रविड़ कुल की भाषा बोलने वालों के लिए भी दक्खिनी की ध्वनियाँ कठिन सिद्ध नहीं हुईं। हैदराबाद में कुछ परिवार ऐसे हैं जिनके माता-पिता ईरान अथवा मिश्र से आये थे, किन्तु एक पीढ़ी में ही इन परिवारों ने दक्खिनी भाषा ही नहीं सीखी, उसका उच्चारण भी मूल निवासियों की भाँति आत्मसात् कर लिया। विदेशी ध्वनियों को स्वीकार करने में भी दक्खिनी और साहित्यिक हिन्दी में कोई अन्तर नहीं है। अरबी के क़, ख़, ग़, और फ़ को दक्खिनी में भी स्थान मिला है। इन ध्वनियों के अतिरिक्त अरबी में

---

१. "हिन्दी (हिन्दुस्तानी) की एक और बहुत बड़ी विशेषता उनकी ध्वनियों का नपा-तुला एवं सुनिश्चित रूप है। उसके स्वर बिल्कुल स्पष्ट हैं तथा स्वर-ध्वनियों का परिवर्तन दुरूह नियमों से बद्ध नहीं है, जैसा कि उदाहरण काश्मीरी तथा पूर्वी बंगाली का, स्वर-परिवर्तन की दुरूहता के कारण विदेशियों के लिए ये भाषाएँ कठिन पड़ती हैं। चटर्जी—भा० आ० हि० पृ० १५१।

प्रचलित स, त और अ से सम्बन्धित ध्वनियों का उच्चारण तत्सम शब्दों में भी नहीं होता, यद्यपि जिस लिपि में दक्खिनी लिखी जाती रही है, उसमें अरबी की समस्त ध्वनियों को यथावत् लिखने का प्रयत्न सावधानीपूर्वक आरम्भ से अब तक किया गया है।

क्षेत्रीय भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियां

८. जो बात अरबी की आर्यभाषेतर ध्वनियों के सम्बन्ध में कही गई है, वही बात दक्षिण की द्रविड़ भाषाओं और मराठी पर लागू होती है। इन भाषाओं के निकट सम्पर्क में रहते हुए भी दक्खिनी ने च़, ज़, झ़, और ऱ, को स्वीकार नहीं किया।

दक्खिनी ध्वनियों के अनुसन्धान-केन्द्र

९. परिनिष्ठित दक्खिनी की ध्वनियों के विश्लेषण के लिए अनुसन्धानकर्ता हैदराबाद, करनूल, बीजापुर, गुलबर्गा, औरंगाबाद, मैसूर तथा इन बड़े नगरों के आसपास बसे हुए कस्बों-ग्रामों को अपने वैज्ञानिक अध्ययन का केन्द्र बना सकता है। उपर्युक्त स्थानों पर बसे हुए दक्खिनी बोलने वाले दो श्रेणियों में विभक्त हैं। पहली श्रेणी में वे हिन्दू-मुसलमान (हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों की अपेक्षा कम होते हुए भी नगण्य नहीं है) आते हैं जिनकी मातृभाषा दक्खिनी (=हिन्दी=उर्दू) है और दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनकी मातृभाषा मराठी अथवा द्रविड़ कुल की कोई भाषा है, किन्तु जो दक्खिनी बोलते और समझते हैं।

उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के विभिन्न आयु और वर्ग के व्यक्तियों के ध्वनिअंकन के पश्चात् दक्खिनी की ध्वनियों का विवेचन-जन्य निष्कर्ष समस्त नव्य-भारतीय आर्य भाषाओं के लिए सहायक सिद्ध होगा। अनुसन्धान के लिए दक्खिनी की ध्वनियों का विश्लेषण एक स्वतंत्र विषय है। यहाँ इन ध्वनियों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इस विवरण का आधार हैदराबाद, करनूल, बीदर, बीजापुर और इन चारों नगरों के आसपास बड़े बड़े कस्बों में रहनेवाले हिन्दी तथा हिन्दीतार भाषी परिवारों का उच्चारण है। हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मराठी और द्रविड़ भाषाओं की ध्वनियों से सम्बन्धित जो सामग्री प्रकाश में आ चुकी है, उसका उपयोग भी यथा-स्थान किया गया है।

१०. स्वर

अ, आ, ऑ, ओ, ओ़, उ, उ़, ऊ, ई, इ, इ़, एँ, ए़, ऐ, औं, ऐं।

११. व्यंजन

(क) स्पर्श—क़्, क्, ख्, ग्, घ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्
ट्॒, ठ्॒, ड्॒, ढ्॒
च्, छ्, ज्, झ्

त्, थ्, द्, ध्,
प्, फ्, ब्, भ्

(ख) अनुनासिक—ङ, न्, म्

(ग) पार्श्विक—ल्

(घ) लुंठित—र्

(ङ) उत्क्षिप्त—ड़्, ढ़्

(च) संघर्षी—ह्, ख़्, ग़्, श्, स्, ज़्, फ़्, व

(छ) अर्ध-स्वर—य्, हमज़ा

१२. अ

अर्द्ध विवृत, मध्य ह्रस्व स्वर, उच्चारण के समय जीभ का मध्यभाग सिकुड़ कर ऊपर उठता है। यह स्वर स्वतंत्र रूप में शब्द के आरम्भ में आता है। शब्द के मध्य तथा अन्त में व्यंजन के साथ प्रयुक्त होता है। उदा० **अभाल** (मेघ, आकाश), **अड़नांव** (उपनाम), **तगबगी** (बेचैनी)।

द्रविड़ कुल की भाषा बोलने वाला व्यक्ति अकार का उच्चारण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से करता है। अन्तिम अकार का उच्चारण दीर्घ आकार के समान किया जाता है। हिन्दी भाषी अन्तिम अकार का जैसा उच्चारण करता है, उसे सूचित करने के लिए तेलुगु आदि में वर्ण के साथ हलन्त सूचक चिह्न लगाया जाता है। तेलुगु में "सीत" लिख कर "सीता" पढ़ा जाता है, यदि "सीत" उच्चारण अपेक्षित है तो "सीत्" लिखा जाएगा, हिन्दी भाषी का उच्चारण होगा "तगबगी" (तग्बगी) जब कि तेलुगुभाषी इस शब्द का उच्चारण "तगबगी" से मिलता-जुलता करेगा।

१३. आ

अर्द्ध विवृत, पश्च स्वर, जीभ का पिछला भाग कुछ उठता है। "अकार" की तरह "आ" के उच्चारण में जीभ के मध्य भाग में सिकुड़न नहीं पड़ती। शब्द के आरम्भ में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होता है। शब्द के मध्य तथा अन्त में व्यंजन के साथ आता है। उदा० **आवा** (कुम्हार की भट्ठी), **गंगाल** (पानी का पात्र विशेष), **आँजू** (आंसू), **धांदल** (गड़बड़, अत्याचार)।

तेलुगु भाषी शब्दारम्भ के स्वतंत्र तथा शब्द के मध्य में व्यंजन-मिश्रित "आ" का उच्चारण हिन्दी-भाषी की तरह करता है किन्तु शब्दान्त के व्यंजनमिश्रित "आ" के उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक समय लगाता है। कई स्थलों पर अन्तिम आकार दीर्घ न रह कर त्रिमात्रिक हो जाता है।

१४. ऑ

अर्द्ध विवृत, पश्च ह्रस्व स्वर। जीभ का पश्चभाग ऊपर उठता है। दोनों होंठ सिकुड़

कर खुले रहते हैं। उदा०-कौंडा (दाना), थौंबड़ा (ऊँट आदि पशुओं का मुंह)—सौंब ले लेको (टे० रि०, = सब लेकर)।

प्रा भा आ में यह ध्वनि नहीं थी। पाली में संयुक्ताक्षर से पूर्व "ओ" "ऑ" में परिवर्तित होता था। संयुक्ताक्षर के ठीक ठीक उच्चारण के लिए पाली तथा प्राकृत में "ओ" के ह्रस्वीकरण से स्वरयंत्र शक्ति ग्रहण करता था। मागधी तथा अर्द्धमागधी में संयुक्ताक्षर से पूर्व "ओ" ह्रस्व होता था।[१] न भा आ समुदाय में कुछ भाषाओं ने "ऑ" को सुरक्षित रखा है, और कुछ में इसका रूपान्तर हो गया है। पश्चिमी हिन्दी में "ऑ" की ध्वनि नहीं है। प्राकृत में जहाँ जहाँ "ऑ" आता है, पश्चिमी हिन्दी में वहाँ वहाँ "उ" उच्चरित होता है।[२] पूर्वी हिन्दी और अवधी में "ऑ" का उच्चारण शेष है।[३] अवधी की ध्वनियों का विवेचन करते हुए डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने लिखा है—"ऑ" भी "ओ" की तरह उच्चरित होता है। "ओ" तथा "ऑ" में अन्तर इतना ही है कि "ऑ" अपेक्षाकृत अधिक विवृत तथा केन्द्र की ओर हटा होता है।[४]

द्रविड़ भाषाओं में "ऑ" का उच्चारण विद्यमान है। इन भाषाओं की लिपियों में "ऑ" के लिए स्वतंत्र चिह्न है। "ऑ" और "ओ" के कारण अर्थ भेद भी होता है।[५] इन दो बातों को आधार बना कर कुछ भाषाशास्त्री यह संभावना प्रकट करते हैं कि द्रविड़ भाषा के प्रभाव से म भा आ काल में आर्य भाषाओं ने इस ध्वनि को स्वीकार किया। काल्डवेल के विचार में "ऑ" की ध्वनि आ भा आ की तरह आ द्र (आदि द्रविड़) में भी नहीं थी। द्रविड़ भाषाओं के लिए प्रयुक्त प्राचीन लिपियों में "ऑ" के लिए कोई स्वतंत्र चिह्न नहीं था।[६]

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने इस ध्वनि के सम्बन्ध में लिखा है—"दक्षिणी उर्दू में एक विशेष ध्वनि है, जो साहित्यिक भाषा (उर्दू) में नहीं मिलती, यद्यपि इलाहाबाद के प्रोफ़ेसर सक्सेना (डाक्टर बाबूराम सक्सेना) उल्लेख करते हैं कि "यह ध्वनि अवधी में है।[७] इस ध्वनि को "ओ" लिखा जा सकता है, (किन्तु) यह न तो "ओ" की तरह है और न "उ" की तरह। यह "ओ" और "उ" के बीच की ध्वनि है। मुख्य रूप से उर्दू (दक्खिनी) में प्रयुक्त द्रविड़ शब्दों में मिलती है। उदाहरण—पौंट्टा (लड़का), डौंप्पा (टोपी), दौंब्बा (मोटा)[८] है।" डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) के इस मत का उल्लेख करते हुए दक्खिनी की इस ध्वनि को "ओ" तथा "उ" से पृथक् माना है। डाक्टर सक्सेना ने लिखा है—"हिन्दी बोलचाल के सभी स्वर अ आ, इ ई, उ ऊ, ऍ ए, ओ ऑ, ऐ औ दक्खिनी में भी मौजूद

---

१. पिशेल-कं० ग्रा० प्रा० § ६१ ए, पृ ६०
२. हार्नेली-क० ग्रा० गौ० § ६, पृ० ५
३. " " § ६, पृ० ५
४. सक्सेना—इ० अ० § ९८, पृ० ६१
५. काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ९
६. " " पृ० ९
७. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो०, पृ० २९
८. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § ७ (ii), पृ० ५३

हैं। डाक्टर क़ादिरी का कथन है कि उकार और ओकार के बीच के उच्चारण का एक स्वर दक्खिनी में और सुनाई पड़ता है जो उत्तर भारत की बोलचाल में सुन पड़ता है पर जो द्रविडी में मिलता है। स्टैण्डर्ड पट्ठा शब्द का दक्खिनी रूप पुट्ठा है, जिसका उकार न उ ही है और न ऑ ही।"[1] वास्तव में दक्खिनी के पोट्टा शब्द का हिन्दी के 'पट्ठा' शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तेलुगु का शब्द है और इसमें ह्रस्व ऑकार का प्रयोग हुआ है।

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने जितने उदाहरण दिये हैं उन सब में "ऑ" संयुक्ताक्षर से पहले आया है। ये उदाहरण प्राकृत के नियम की पुष्टि करते हैं।

वास्तव में दक्खिनी में "ऑ" की स्थिति "ओ" से भिन्न नहीं है। दोनों में केवल उच्चारण-काल का अन्तर रहता है। दक्खिनी के "ऑ" और अवधी के "ऑ" में पूरा साम्य है।

१५. ओ

अर्द्ध संवृत, पश्च दीर्घ स्वर। उच्चारण के समय दोनों होंठ सिकुड़ते हैं, किन्तु पूरी तरह बन्द नहीं होते। उदा०-**ओड़ना** (ओढ़ना), **बोला सो करो** (जो कहा है वह करो), बोंबी (नाभि), पल्लो (पल्ला, आंचल)।

तेलुगु भाषी क्षेत्र के व्यक्ति दक्खिनी के स्वतंत्र "ओ" का उच्चारण करते समय आरम्भ में "व्" का उपयोग करते हैं। दक्खिनी में भी कई स्थलों पर शब्द के प्रारम्भ में 'ओ' का उच्चारण 'वो' किया जाता है। उदा० वोड़ना (ओढ़ना)। तेलुगु में कई स्थलों पर "ओ" से पूर्व "व्" लिखा भी जाता है।

१६. औ

अर्द्ध संवृत, मध्य दीर्घ स्वर। दोनों होंठ सिकुड़ते हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने इसे संयुक्त दीर्घ स्वर मानकर, इसका उच्चारण 'अ ओ' (=औ) निरूपित किया है।[2] डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने "औ" को स्वतंत्र मूल स्वर स्वीकार करते हुए लिखा है—"औ" अर्द्ध विवृत मध्य स्वर की भाँति प्रारम्भ होकर अर्द्ध विवृत की तरह समाप्त होता है, किन्तु उस समय होंठ सिकुड़ जाते हैं।"[3]

डाक्टर क़दरी के उपर्युक्त लक्षण से "औ" स्वतंत्र स्वर न रहकर संयुक्त स्वर की श्रेणी में चला जाता है। डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) के कथन का सारांश यह है कि "औ" के उच्चारण में पहले ओष्ठ योग नहीं देते, किन्तु समाप्ति के समय उनसे सहायता ली जाती है। यह लक्षण

---

१. सक्सेना—द० हि०, पृ० ४३, ४४
२. डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ०, पृ० ११०
३. क़ादरी (ज़ोर) हि० फ़ो० § १०, पृ० ५४

संस्कृत "औ" के उच्चारण पर लागू होता है। संस्कृत में "औ" "अ ओ" के संयोग से बना हुआ संयुक्त स्वर है, जिसका उच्चारण स्थान कण्ठतालव्य है।

म भा आ काल में ही आ भा काल का संयुक्त स्वर "औ" बहुत परिवर्तित हो गया था, किन्तु न भा आ में वह स्वतंत्र स्वर के रूप में उच्चारित होने लगा।

नव्य द्रविड़ भाषाओं में "औ" के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न विद्यमान है, किन्तु प्राचीन लेखों में इसका अभाव है। भाषा वैज्ञानिक यह विचार रखते हैं कि आ द्र में यह ध्वनि नहीं थी। संस्कृत के प्रभाव से संयुक्त स्वर के रूप में यह ध्वनि म द्र में और वहाँ से न द्र में पहुँची। न द्र में "औ" की स्थिति परिवर्तित नहीं हुई। संस्कृत की तरह न द्र में इस ध्वनि का प्रयत्न कण्ठोष्ठ्य है। दोनों भाषाओं के "औ" में अन्तर इतना ही है कि न द्र में कण्ठ्य प्रयत्न क्रमशः क्षीण हो रहा है और ओष्ठ का योग बढ़ रहा है। तमिल में "औ" का उच्चारण "अवु" की तरह होता है। उदा० संस्कृत-**सौख्यम्**=तमिल-**सवुक्कियम्**।

मराठी में प्राचीन लेखक "औ" का उपयोग संयुक्त स्वर के रूप में करते थे। धीरे-धीरे यह प्रयोग कम होता गया। इस समय मराठी में "औ" का उच्चारण "अ ऊ" की तरह होता है[1]।

कन्नड़ तथा तेलुगु में "औ" संयुक्त स्वर की तरह उच्चरित होता है। दोनों भाषाओं में कुछ स्थलों पर इसका उच्चारण संस्कृत की तरह "अ ओ" और कुछ शब्दों में तामिल की तरह "अवु" होता है।

दक्खिनी में "औ" स्वतंत्र और मूल स्वर है। इसके उच्चारण में आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रयत्न-भेद नहीं होता। निचला होठ उच्चारण के समय किंचित सहायता देता है। शब्द के मध्य में "औ" का उच्चारण संयुक्तस्वर की तरह होता है। उदा० और, चौगान, **औ**हो (उद्गारवाची)।

१७. उ

संवृत, पश्च, ह्रस्व। दोनों होठ सिकुड़ कर गोल बनते हैं। जीभ का पिछला भाग ऊपर उठता है। उदा० **उ**दर (उधर), **उ**पराटी (ऊपर की तरफ आंटी मार कर बैठना), **मुं**डी (मुंड), **चु**लबु**ली** (चंचलता)।

१८. उ̥

ब्रज और अवधी की तरह दक्खिनी में "उ" की फुसफुसाहट वाली ध्वनि विद्यमान है। सामान्य "उ" तथा फुसफुसाहटवाले उ̥ का उच्चारण स्थान समान है। फुसफुसाहट वाले उ̥ की ध्वनि अस्पष्ट रहती है। उदा० करता उ̥ँ (करता हूँ)।, **पड़त्युं̥** (पड़ता हूँ), **लेउंगी**।

---

१. दामले—शा० म० व्या०, पृ० १५

१९. ऊ

संवृत, पश्च, दीर्घस्वर। "उ" की अपेक्षा "ऊ" के उच्चारण में होठों की गुलाई अधिक। जीभ का पिछला भाग ऊपर उठता है। उदा० **ऊखली, ऊंट, कूनला,** (कुंडल), **अंजू. घूंघरू।**

२०. ई

संवृत, अग्र, दीर्घस्वर। उच्चारण के समय होठ खुले रहते हैं। जीभ का मध्याग्रभाग कठोर तालु की ओर उठता है। उदा० **ईताल** (अब), **ईंचना** (खींचना), **गलीच** (गंदा), **दुराई** (राजकीय आदेश)।

२१. इ

संवृत, अग्र, ह्रस्व स्वर। निचला होठ नीचे की ओर झुकता है। **इत्ती** (इतनी), **मिठा** (मीठा), **बिंगा** (टेढ़ा), **टिमटिमी** (छोटा नगारा)।

२२. इ॒

कुछ शब्दों के अन्त में फुसफुसाहट वाली **इ** का उच्चारण होता है। उदा० खडे रि (खड़ी रही), बाई तू लाल कैसे हुइ॒ (टे. रि.), **नइं** (टे. रि.=है ही नहीं), **कइ॒ कू** (टे. रि.=काहे को)।

२३. ऍ

अर्द्ध संवृत, अग्र, ह्रस्व स्वर। उदा० कॅत्ती (कितनी), यक्का (इक्का), बॅज्जार (टे. रि=बेजार)। डाक्टर क़ादरी ने इस ध्वनि का उल्लेख नहीं किया है। आ भा आ में ह्रस्व "ए" की ध्वनि नहीं थी। म भा आ में "ऍ" का उच्चारण किया जाने लगा। पाली तथा प्राकृत में संयुक्ताक्षर से पूर्व "ए" का उच्चारण एकमात्रिक किया जाता है। उदा० णॅद्दा (निद्रा), सॅज्जा (शय्या), तॅत्तिस (त्रयस्त्रिंशत्)। उच्चारण की सुविधा के लिए मागधी और अर्द्धमागधी में भी संयुक्ताक्षर से पहले "ए" का एकमात्रिक उच्चारण किया जाता था।[1] उदा० पुच्छॅइ (प्रेक्षते)। न भा आ में ह्रस्व "ऍ" इ में परिवर्तित हुआ।[2] पूर्वी हिन्दी में "ऍ" आज भी उच्चरित होता है, किन्तु हिन्दी तथा पंजाबी में ह्रस्व ए ने इकार का रूप धारण कर लिया है।

मलयालम, कन्नड और तेलुगु में 'ऍ' के लिए पृथक् लिपि-चिह्न है। ह्रस्व "ए" तथा दीर्घ "ए" के कारण द्रविड़ भाषाओं में अर्थभेद भी होता है। इसीलिए यह संभावना प्रकट की जाती है कि आर्यभाषाओं ने इस ध्वनि को द्रविड़ भाषा के सम्पर्क से ग्रहण किया होगा। काल्डवेल

---

१. पिशेल--कं० ग्रा० प्रा० §८४, पृ० ७७
२. बीम्स--कं० ग्रा० आ० §३५, पृ० १४३

के विचार में संस्कृत की तरह आदि द्रविड़ में भी यह ध्वनि नहीं थी। पुरानी लिपि में इस ध्वनि के लिए कोई चिह्न नहीं था। संस्कृत के प्रभाव से द्रविड़ भाषाओं ने ए (अ+इ) को स्वीकार किया। यह संयुक्त स्वर ही उच्चारण की सुविधा के लिए ह्रस्व हो गया।[1]

२४. ए

अर्ध संवृत, अग्र, दीर्घस्वर। उदा० **एत्त** (इतने), **येक** (एक), सु**नेरी** (सुनहरी), **केवड़ी** (केवड़ा), जां**गे** (जाएंगे), सिदा**रे** (सिधारे=गये)।

द्रविड़ भाषाओं में "ए" का उच्चारण "य्" की सहायता से किया जाता है। तेलुगु में "ए" के पूर्व "य्" लिखते भी हैं। दक्खिनी में भी एकार के साथ 'य' श्रुति सुनाई देती है। उदा० येक (एक)। बंगला में भी "य्" की ध्वनि एकार के उच्चारण में सहायता प्रदान करती है[2]।

२५. ऐ

अग्र दीर्घ स्वर। जीभ के दोनों पार्श्व तालु का किंचित स्पर्श करते हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने "ऐ" को संयुक्त स्वर (अए) माना है[3]। डाक्टर क़दरी (ज़ोर) इसे स्वतंत्र स्वर मानते हैं। दक्खिनी में "ऐ" मूल स्वर के रूप में उच्चरित होता है। उदा० **पै**जन (पैंजनी), **गै**ब (अदृश्य), इत्ता बड़ा किसे **रै**ता (टे० रि०, इतना बड़ा किसके पास रहता है)।

संयुक्त स्वर

२६. औ

डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने "औ" (संयुक्त ध्वनि अ+ओ) के सम्बन्ध में लिखा है कि संस्कृत की तरह हिन्दी की कुछ बोलियों में "औ" का उच्चारण "अ उ" किया जाता है[3]। साथ ही हिन्दी में इस ध्वनि का एक अन्य रूप है—औ=अवु। "औ" के सम्बन्ध में यह बताया जा चुका है कि द्रविड़ भाषाओं में भी औ का उच्चारण "अवु" होता है। दक्खिनी में औ (उर्दू लिपि में अलिफ़ वाव) तीन ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है—औ̂, अओ, औ=अ उ, औ=अवु। कुछ शब्दों में औ का उच्चारण करते समय निचला होठ ऊपरी दंतपंक्ति का स्पर्श करता है। ऐसे स्थलों पर "औ" का उच्चारण कण्ठ्य दन्तोष्ठ्य हो जाता है। उदा० अ ओ—**औ**धान (एकाग्रता), अउ—दौड़, अवु-कौंली (कोमल)।

२७. ऐ

हिन्दी में संयुक्त स्वर ऐ का उच्चारण दो प्रकार से किया जाता है-ऐ=अइ, और ऐ

---

१. **काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ४**
२. **बीम्स—कं० ग्रा० आ० § २१ पृ० ७०**
३. **धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ० § ३३। पृ० ११०**

=अए। संस्कृत के ऐ (अ+ए) जैसी कोई ध्वनि द्रविड़ भाषाओं में नहीं है। आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में 'ऐ' का उच्चारण हिन्दी की तरह 'अइ' नहीं होता। द्रविड़ भाषाओं में "ऐ" लिपि चिह्न "एइ" ध्वनि का परिचायक है। आदि द्रविड़ में ही अकार एकार में परिवर्तित होने लगा था। यह एकार ही ऐ (एइ) के रूप में उच्चरित हुआ। दक्खिनी में ऐंकार 'अइ' की संयुक्त ध्वनि का परिचायक है। 'ऐ' के अकार का उच्चारण सामान्य 'अ' की अपेक्षा कुछ टिक कर होता है और आघात-सा लगता है। "ऐ" के इकार का उच्चारण अपेक्षाकृत शीघ्रता से होता है और फुसफुसाहट की ध्वनि आती है। उदा० बोलतैं (बोलतइं), ऐयो (अइयो-आश्चर्यवाची उद्गार)।

औ^ तथा ऐं के अतिरिक्त दक्खिनी में अन्य कई संयुक्त स्वर प्रयुक्त होते हैं, किन्तु उनकी ध्वनियों में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता।

सानुनासिक

२८. दक्खिनी का प्रत्येक मूल स्वर सानुनासिक भी है। जैसे **अँधारा** (अंधकार), **धाँदल** (अन्याय), **डिंबवारी** (ढोंगी), इँचना (**खींचना**), **मुँडी** (मुंड), **घूँघट**, **फेंटा** (साफा), **पैंजन**, **डोंगान** (गहराई), भौंनगिर।

संयुक्त स्वर का प्रथम अंश सानुनासिक न होकर द्वितीय अंश सानुनासिक होता है। उदा० जातैं (जातइं)।

व्यंजन—

स्पर्श

२९. क़

—अल्पप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय। तालु और जीभ के अन्तिम भाग से इस व्यंजन का उच्चारण होता है। संस्कृत में विसर्ग के पश्चात् आनेवाले 'क' (×क) की अपेक्षा 'क़' का उच्चारण कुछ नीचे से होता है। दक्खिनी की साहित्यिक शब्दावली में समाविष्ट अफ़ा के तत्सम शब्दों में ही इस ध्वनि का उपयोग होता है। पठित लोग भी इसका उच्चारण महाप्राण संघर्षी "ख़" की तरह करते हैं।

उदाहरण—क़लन्दर, अक़्ल, हक़।

३०. क

—अल्पप्राण, अघोष, जीभ का पश्चभाग तालु का स्पर्श करता है। संस्कृत में 'क्' का उच्चारण स्थान कण्ठ था। हिन्दी तथा उसकी बोलियों में यह ध्वनि कण्ठतालव्य है। दक्खिनी में इस ध्वनि के उदाहरण इस प्रकार हैं:—**काँद** (दीवार), **कनक** (सोना), **काकुल** (केश)।

३१. ख

—महाप्राण, अघोष, उच्चारण स्थान 'क्' के समान।

उदा० **खूँपा** (जूडा)। **रख** सुख में दुख में भी दम (मन)।

३२. ग

—अल्पप्राण, सघोष। क् ख् के समान उच्चारण।

उदा० **गवड़ा** (गवा), **गवी** (गुफा), कँ**ग**रा, **गुदगली** (गुदगुदी), **तगबगी** (बेचैनी)।

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) के विचार से तत्सम शब्दों में आरंभिक 'ग्' का पूर्ण उच्चारण होता है। शब्द के मध्य तथा अन्त में इस व्यंजन का उच्चारण स्पष्ट नहीं होता।[1] विभिन्न शब्दों पर विचार करने के पश्चात् ज्ञात हुआ है कि स्थान-भेद के कारण 'ग्' के उच्चारण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता।

उदा० संस्कृत—उपकार मुंज पर दहूँ **जग** (इ ना)

फ़ारसी—(आदि में) इलाही **ज़बां** गंज तू खोल

(अन्तिम) तुझ उस्ताद**गी** जग पै साबित करी (अ. ना.)

बोलचाल की भाषा—(आदि में) हंसते पान, बोलती सुपारी **गा**ती सो चुड़िया होना।

(मध्य में) पाशा बाताँचिताँ करता स**ँगा**त जंगल कू निकल्या।

(हैदराबाद टे रि)

(अन्त में) बे**गी** काट को गंपा लेके भाग जाऊँगा। (हैदराबाद टे. रि.)

३३. घ

—महाप्राण, सघोष। उच्चारण स्थान क्, ख्, ग्, के समान। उदा० घट—(दृढ, स्थिर), घाँस, **घूँ**घरू (..घूंघरू होर पैंजनों में–कु कु), अं**घा**र (अंघार थी सो बुज गई क. सा. मा.)। (अंघार=अंगार)।

३४. ट्

—अल्पप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य। जीभ का अग्र भाग मुड़कर मध्य तालु का स्पर्श करता है। दक्खिनी की यह ध्वनि प्रायः शब्द के मध्य और अन्त में आती है।

उदा० माट **तुट** गया (मटका फूट गया), टिटरी (टि**टु**री बहरी का ज़ोर ल्या सकती हैं—सब)। उचा**ट** (बेचैनी)।

३५. ठ्

—अघोष, महाप्राण। उच्चारण स्थान 'ट्' के समान। उदा० **ठ**म्सा (ठप्पा), गठा (=गट्टा-गठे पड़ रहे सख्त फौलाद हो —कु. मु.)

३६. ड्

—अल्पप्राण, सघोष। उच्चारण ट्, ठ् के समान, किन्तु ट् की अपेक्षा जीभ तालु के अधिक ऊपरी भाग को स्पर्श करती है।

उदा० **डोंगा**न (गहराई), हिं**डो**ला (झूला), मँ**डा** (मंडप)।

---

१. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § १५ iii पृ० ८१

३७. ढ्

—महाप्राण, सघोष, उच्चारण द् ठ् और ड् के समान।

उदा० ढुलारा = खखोडल (वृक्ष का), (गया छिपकर ढुलारे के तल आसमान), गढा।

कुछ लोगों का विचार है भारत-प्रवेश से पहले आर्यजनों के टवर्ग का उच्चारण कठोर था। भारत में आने के पश्चात् उनके उच्चारण में कोमलता आई और बहुत से शब्दों में टवर्ग तवर्ग में परिवर्तित हो गया। सिंधी में अन्य न भा आ की अपेक्षा टवर्ग का उच्चारण अधिक कठोर है। अतः कुछ विद्वानों के विचार में भारतीय आर्य भाषाओं का मूर्द्धन्य उच्चारण सिन्धी में सुरक्षित है। आर्य लोग जैसे जैसे दूर प्रदेशों में फैलते गये, उनका टवर्गीय उच्चारण कोमल होता गया, परिणामस्वरूप मूर्द्धन्य व्यंजन कुछ भाषाओं में दन्त्य बन गये[1]।

मूर्द्धन्य टवर्ग के सम्बन्ध में शेषगिरि शास्त्री का विचार है:—

"आरम्भ में संस्कृत भाषा में ट, ठ, ड, ढ, ण, श, ष और ळ अक्षर नहीं थे। प्राचीन आर्य भाषाएं मूर्द्धन्य उच्चारण से सर्वथा अपरिचित थीं। आदिकालीन शुद्ध आर्यों के अनेक समुदायों में बँटने के पश्चात् ये ध्वनियां कुछ आर्य भाषाओं में समाविष्ट हुईं।[2]"

३८. वर्त्स्यतालव्य

—दक्खिनी में टवर्ग का वर्त्स्यतालव्य उच्चारण भी किया जाता है। मूर्द्धन्य अक्षरों के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऊपर उठकर पलटता है, फिर अग्रतालु का स्पर्श करता है किन्तु दक्खिनी में टवर्ग का जो दूसरे प्रकार का उच्चारण है, उसमें जीभ का अग्रभाग तालु की ओर अग्रसर होकर नहीं मुड़ता। इस प्रकार का उच्चारण प्रायः शब्द के आरम्भ में सुनाई देता है। कुछ शब्दों में मध्य तथा अन्त में भी टवर्ग की यह ध्वनि प्रयुक्त होती है। जीभ का अग्रभाग वर्त्स्य और तालु की सन्धि का स्पर्श करता है, अतः इन ध्वनियों को वर्त्स्यतालव्य कहा जा सकता है। वर्त्स्यतालव्य ट तथा ड का उच्चारण अंग्रेजी के 'ट' तथा 'ड' से साम्य रखता है। वर्त्स्यतालव्य अक्षरों के उच्चारण के समय जीभ का अग्रभाग कभी ऊपरी दन्तपंक्ति के निकट तालु-सीमा का स्पर्श करता है और कभी अग्रतालु का। एक व्यक्ति एक वाक्य में ही टवर्ग के उच्चारण में इस अनिश्चित उच्चारण का परिचय देता है। दक्खिनी का मूर्द्धन्य टवर्ग भी हिन्दी की अन्य बोलियों की अपेक्षा कोमल है। चवर्ग के उच्चारण-स्थल और वर्त्स्यतालव्य टवर्ग के उच्चारण-स्थल में थोड़ा-सा अन्तर है। मूर्द्धन्य और वर्त्स्यतालव्य टवर्ग की पृथकता सूचित करने के लिए वर्त्स्यतालव्य अक्षरों को शून्य से चिह्नित किया गया है।

३९. ट॰

—अघोष, अल्पप्राण, उच्चारणस्थान वर्त्स्यतालव्य।

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० § ५९, पृ० २३३।

२ एम्० शेषगिरि शास्त्री—नोट्स आन आर्यन ऐण्ड द्रविडियन फिलोलाजी, पृ० २, ३।

इस वर्ग के अन्य व्यंजनों की अपेक्षा 'ट' के उच्चारण में जिह्वाग्रभाग दन्तपंक्ति की ओर अधिक अग्रसर होता है।

उदा० टि॰टरी (=टिटहरी), टी॰क (टीका=आभूषण)।

४०. ठ॰

—अघोष, महाप्राण, ट॰ के समान वर्त्स्यतालव्य।

ठ॰सी (ठ॰स्सी-गले का आभूषण) (ठ॰सी कुंदन की दिसती के जूं झेली है तार्यों को-कु. कु.)।

ठ के संबंध में डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) का कथन है कि इसके उच्चारण में 'ट' की अपेक्षा जीभ ऊपरी दंत पंक्ति की जड़ को कम स्पर्श करती है।[1] वास्तव में मूर्द्धन्य ठ तथा वर्त्स्यतालव्य ठ॰ में ट अथवा ठ की अपेक्षा जिह्वाग्रभाग तालु की ओर अधिक हटा हुआ रहता है।

४१. ड॰, अल्पप्राण, सघोष। जिह्वाग्रभाग ट॰ की अपेक्षा पीछे हटा रहता है। उदा० डों॰गर (पर्वत), ड॰ोल, धँड॰ोरा (=ढिंढोरा)।

४२. ढ॰ महाप्राण, सघोष। ट॰, ठ॰ और ड॰ की तरह वर्त्स्यतालव्य।

ड॰ की अपेक्षा जिह्वाग्रभाग कठोर तालु का अधिक स्पर्श करता है। उदा० ढि॰गार (ढेर), ढिं॰ढोरा।

तालव्य

४३. संस्कृत में चवर्ग का उच्चारण तालव्य था। डाक्टर सुनीतिकुमार के विचार में च, छ, ज, झ के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग दंतिपंक्ति के ऊपर तालु को स्पर्श करता था।[2]

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) के विचार में "चवर्ग का उच्चारण जीभ के अगले भाग से नहीं होता। जीभ तालु का केवल स्पर्श ही नहीं करती, तालु के निचले भाग को रगड़ती भी है। आरंभ में ध्वनि कुछ रुकी-सी सुनाई देती है और अन्त में स्पष्ट होती है।"[3] डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने भी डाक्टर क़ादरी की बात स्वीकार की है।[4]

तेलुगु में इ, ई, ए और ऐ के अतिरिक्त अन्य स्वरों के पश्चात् आने वाले च तथा ज का उच्चारण च॰ (=त्स) और ज॰ (=द्ज़) होता है। मराठी में भी इ, ई, ए और ऐ के पश्चात् आने-वाले च, ज तथा झ स्पर्श बने रहते हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य स्वरों के पश्चात् ये स्पर्शसंघर्षी

---

१. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § ६, पृ० ६९।
२. चटर्जी—ओ० डे० बं० § १३०, पृ० २४२।
३. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § १८, पृ० ८२, ८३।
४. धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ०।

अर्थात् क्रमशः च़ (त्स) ज़ (द् ज़) और झ़ (=द् झ़) उच्चरित होते हैं। चवर्ग की यह स्पर्श-संघर्षी ध्वनि एक ओर तो तिब्बती में है और दूसरी ओर मराठी तथा तेलुगु में।[१] तेलुगु की च़, ज़ और मराठी की च़, ज़ तथा झ़ ध्वनियों का उच्चारण स्थान तालव्य न होकर दन्ततालव्य है। संस्कृत में चवर्ग का दन्ततालव्य उच्चारण नहीं था। मागधी तथा शौरसेनी के ध्वनिसमूह में भी किसी वर्ग का स्थान दन्ततालव्य नहीं था। सर्वप्रथम मार्कण्डेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' में इस ध्वनि का उल्लेख किया है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों के विचार में मध्य एसिया के हूणों के कारण दन्ततालव्य ध्वनियों का समावेश मराठी तथा तेलुगु में हुआ। यदि ये ध्वनियां मध्य एसिया के निवासियों के प्रभाव से भारतीय भाषाओं में आई हैं तो अर्द्धमागधी तथा शौरसेनी में इन ध्वनियों का अस्तित्व होना चाहिए। यह प्रतीत होता है कि न भा आ की मराठी ने च़ ज़ की ध्वनियां द्रविड प्रभाव के कारण अपनाईं।[२]

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने चवर्ग के बाह्य उच्चारण के संबंध में लिखा है कि जीभ का अग्रभाग इस ध्वनि में सहायता नहीं देता। डाक्टर क़ादरी का यह विचार मराठी के च़ (त्स), ज़ (द् ज़) और झ़ (द् झ़) के संबंध में उचित प्रतीत होता है। जहां तक साहित्यिक हिन्दी (= उर्दू) का संबंध है, चवर्ग के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग निष्क्रिय रहता है। अग्रभाग का थोड़ा-सा अंश छोड़ कर जीभ ऊपरी मसूड़े को छूती है। मराठी और तेलुगु के च, ज के उच्चारण में भी जीभ वर्त्स्य का स्पर्श मात्र करती है। च़, ज़ और झ़ में जीभ झटके के साथ तालु को रगड़ती है, अतः केवल च़, ज़ और झ़ स्पर्शसंघर्षी होंगे। साहित्यिक दक्खिनी के चवर्ग के अक्षर, क से लेकर म तक के व्यंजनों के समान स्पर्श व्यंजन हैं। तेलुगु तथा मराठी क्षेत्र की ग्रामीण जनता बातचीत के समय दक्खिनी के चवर्ग का कुछ शब्दों में स्पर्शसंघर्षी उच्चारण करती है। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश के ताडपल्लीगुड्म के एक तुलुगु भाषी सज्जन का उच्चारण इस प्रकार है—"अमारा तीन ठू (=ठौ, बाहरी प्रभाव, यह व्यक्ति कुछ समय तक सिंगापुर में रह आया है) चुकडी (= त्सुकडी) एक ठू चुकड़ा (=त्सुकडा) है।" (टे. रि.)। इस व्यक्ति ने 'चालीस' का उच्चारण तो चालीस ही किया किन्तु 'चौदह' के स्थान पर च़ौदह। मराठी के च़ और ज़ के उच्चारण के लिए क्रमशः त्स और द्ज़ का संकेत दिया गया है। यदि मराठी तथा तेलुगु के च़ का ठीक ठीक उच्चारण लिखा जाये तो वह कुछ कुछ इस प्रकार होगा 'त्सच़'। तेलुगु और मराठी के ज़ का साम्य अ फ़ा के ज़े, ज़ाल, ज़्वाद अथवा ज़ोय से नहीं है।

४४. च्—अल्पप्राण, अघोष, दन्ततालव्य।

उदा० चिमटी (चींटी), चंदनी (चांदनी), अचपल (चंचल), चुची (स्तन)।

४५. छ्—महाप्राण, अघोष, दन्ततालव्य। 'च' की अपेक्षा छ के उच्चारण में जीभ तालु के ऊपरी भाग का स्पर्श करती है।

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० § २२१, पृ० ७२।
२. कृ० पो० कुलकर्णी—मराठी भाषा - उद्गम व विकास, पृ० ३२२।

उदा० छेक (छेद), उछाली (उछाल), मूरछन (मूर्च्छा), पंछी (पक्षी)।

४६. ज्—अल्पप्राण, सघोष, दन्ततालव्य।

उदा० जुन्द (योनि), आंजू (आंसू)।

४७. झ्—महाप्राण, सघोष, दन्ततालव्य। ज की अपेक्षा झ के उच्चारण में जीभ तालु के कुछ ऊपरी भाग का स्पर्श करती है।

उदा० झल (ईर्ष्या), झेला (एक आभूषण), पझरना, मंझा (तख़्त)।

दन्त्य

४८. त्—अल्पप्राण, अघोष। ऊपरी दन्तपंक्ति को जीभ का अग्रभाग छूता है।

उदा० तुकड़ा (टुकड़ा), तास (घंटा), पातरनी (नर्तकी), रावत (अश्वारोही, वीर)

४९. थ्—महाप्राण, अघोष। उच्चारण प्रयत्न 'त्' के समान।

उदा० थाम (स्तम्भ), मथन (विचार, चर्चा)।

५०. द्—अल्पप्राण, सघोष। उच्चारण स्थान त् और थ् के समान।

उदा० दन्द (लड़ाई), दीस (दिवस), धांदल (अन्याय), फांदा (फंदा)।

५१. ध्—महाप्राण, सघोष। उच्चारण स्थान त्, थ् और द के समान।

उदा० धात (प्रकार), बधारा (वृद्धि), बुध (बुद्धि)।

ओष्ठ्य

५२. प्—अल्पप्राण, अघोष। उच्चारण के समय दोनों होठ बन्द होते हैं।

उदा० पैका (पैसा), पोपटी (आंख की पलक), सिंपी (सींप)।

५३. फ्—महाप्राण, अघोष। उच्चारण 'प्' के समान।

उदा० फतर (पत्थर), फोकट (निरर्थक), फुंकडी (आंखमिचौनी से मिलता-जुलता खेल), सिसफूल (सीसफूल—एक आभूषण)।

५४. ब्—अल्पप्राण, सघोष। स्थान प्, फ् के समान।

उदा० बाव (वायु), बिरदंग (मृदंग), बोंबी (नाभि), तंबोल (पान)।

५५. भ—महाप्राण, सघोष। स्थान प्, फ् और ब् के समान।

उदा० भंगार (सोना), अभाल (आकाश, बादल)।

अनुनासिक

५६. संस्कृत में ञ्, म्, ङ, ण्, न् अनुनासिक माने जाते हैं। गुजराती में ङ और ञ् नहीं हैं।[1] हिन्दी में कुछ स्थलों को छोड़कर ङ, ञ् और ण् के स्थान पर न् का उच्चारण होता है। द्रविड भाषाओं में ञ्, ङ, ण् और न् के स्थान पर 'म्' का उच्चारण किया जाता है।

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० § २५, पृ० ७८।

भ मा आ में ही 'ञ्' लुप्त हो गया था। प्राकृत में न्य और ज्ञ को 'ञ्ञ' आदेश होता था किन्तु कुछ काल पश्चात् इस ध्वनि का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया।[1]

फ़ारसी लिपि में ङ, ञ् और ण् के लिए चिह्न नहीं हैं। न् और म् को ही इस लिपि में चिह्नित किया जा सकता है। इस लिपि में लिखे हुए दक्खिनी के पुराने साहित्य में न्, म् को छोड़ कर शेष अनुनासिकों के संबंध में कोई परिचय प्राप्त नहीं किया जा सकता। विशेष रूप से ण् के संबंध में निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि ब्रज की तरह दक्खिनी में 'ण्' का अभाव रहा है अथवा उसका उच्चारण किया जाता था। इस समय पवर्ग से संयुक्त होने वाले अनुनासिक को छोड़कर शेष अनुनासिकों के स्थान पर 'न्' लिखा जाता है, वैसे दक्खिनी की प्रवृत्ति अनुनासिकों के स्थान पर पूर्व स्वर को अनुस्वरित करने की ओर है। महाराष्ट्र तथा कर्णाटक क्षेत्र के लोग दक्खिनी बोलते समय 'ण्' का उच्चारण करते हैं। 'ञ्' की ध्वनि दक्खिनी में नहीं है।

५७. ङ—अल्पप्राण, सघोष, अनुनासिक। कवर्ग से पूर्व और स्वर के पश्चात् हलन्त ङ् उच्चरित होता है।

उदा० रङ्ग (भास-अभास रङ्ग ना रूप—ढ ना।), अडभङ्गापन (उद्दंडता), फङ्कड़ी।

५८. न्—अल्पप्राण, सघोष, अनुनासिक। ऊपरी दन्त पंक्ति से कुछ हट कर तालु को जीभ का अग्रभाग स्पर्श करता है। यह अनुनासिक स्वररहित तथा स्वरसहित दोनों प्रकार से उच्चरित होता है।

उदा० स्वरसहित—निहारी (कलेवा)—(सुबह उठ निहारी करे नौ हती, कु० मु०)। पूनम (पूर्णिमा), डोंगान (गहराई)। हलन्त—चवर्ग से पहले कंचनी (=कन्चनी), टवर्ग से पहले —कोंडा (=कोन्डा)। तवर्ग से पहले–बंदड़ा (=बन्दड़ा), नंदोई (=नन्दोई)

५९. म्—अल्पप्राण, सघोष, औष्ठ्य, अनुनासिक। 'म्' स्वरसहित और स्वररहित दोनों स्थितियों में आता है। स्वररहित 'म' केवल पवर्ग से पहले उच्चरित होता है।

उदा० स्वरसहित—मस्का (नवनीत), मुंजल (ताड़ी का फल), थाम (स्तंभ), गमत (मनोरंजन)।

स्वररहित—अंभू (अम्भू—पानी), तंबूर (=तम्बूर)।

अनुनासिकों का महाप्राणत्व

६०. डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने न् तथा म् के महाप्राण रूप का उल्लेख किया है। उनके विचार में —न्ह—महाप्राण, सघोष, वर्त्स्य, अनुनासिक व्यंजन और म्ह महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने भी न्ह को संयुक्त व्यंजन मान कर स्वतंत्र व्यंजन माना है किन्तु 'म्ह' को वे संयुक्त व्यंजन स्वीकार करते हैं। डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) का कहना है कि महाप्राण 'न्ह' का उच्चारण बहुत कम शब्दों में होता है। यह शब्द के मध्य में आता है। मराठी में भी कुछ वैयाकरणों ने न्ह और म्ह को स्वतंत्र व्यंजन स्वीकार

---

१. जूल ब्लाक—ला फो० म०, § १३१, पृ० १७०।

किया है। इन दो महाप्राण ध्वनियों के अतिरिक्त मराठी में ण् का महाप्राण (ण्ह्) रूप भी प्रचलित है। महाप्राण अनुनासिक के उदाहरण के लिए मराठी के निम्नलिखित तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं—

म्ह	देशज—	म्हणाला (बोला)
	तत्सम—	ब्राम्हण (=ब्राह्मण)
न्ह	देशज (तद्भव)—	उन्हाळा (ग्रीष्म ऋतु)
		न्हाण (=स्नान)
	तत्सम—	चिन्ह (=चिह्न)

मराठी के उपर्युक्त शब्दों में म् तथा न् महाप्राण हैं अथवा इनके साथ 'ह्' का संयोग हुआ है, इस संबंध में डाक्टर अशोक रा० केळकर (हिन्दी विद्या पीठ, आगरा) की सम्मति महत्वपूर्ण है। डाक्टर अशोक रा० केळकर ने मराठी ध्वनियों का विशेष रूप से अध्ययन किया है। डाक्टर केळकर की सम्मति में 'म्ह' तथा 'न्ह' अन्य महाप्राण अक्षरों की श्रेणी में नहीं आते। मराठी के जिन तत्सम शब्दों को न् और म् के महाप्राणत्व के लिए उद्धृत किया जाता है, उनमें 'ह्' का संयोग स्पष्ट दिखाई देता है। 'ब्राम्हण' और 'चिन्ह' में 'म् ह' और 'ह् न' का केवल वर्ण विपर्यय हुआ है। इस विपर्यय के कारण दोनों स्थानों पर 'ह' स्वरहीन उच्चरित होता है। तत्सम शब्दों में मूलतः म् तथा न् महाप्राण नहीं थे। मराठी के देशज अथवा तद्भव शब्दों में भी यही बात दिखाई देती है। 'उन्हाळा' तथा 'न्हाण' शब्दों की व्युत्पत्ति से यह बात सिद्ध हो जाती है। उष्ण>उह्ण>उह्ण>उन्ह>उण्ह+आल (य)=उन्हाळा=उण्हाळा। स्नान>हनान>न्हान=न्हाण।

मराठी के न्हाई=नापित शब्द के संबंध में 'ह्' की व्युत्पत्ति उपरिनिर्दिष्ट कारण से सिद्ध नहीं की जा सकती। 'न्हाई' में क्षतिपूर्ति अथवा श्रुति के रूप में 'ह्' आगमाक्षर माना जाएगा।

महाप्राण अनुनासिक के संबंध में डाक्टर केळकर का मत हिन्दी पर भी लागू होता है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने महाप्राण 'न्' के तीन उदाहरण दिये हैं—उन्होंने, कन्हैया, जिन्होंने।[१] उन्होंने तथा जिन्होंने का निर्वचन 'सर्वनाम' शीर्षक अध्याय में देखा जा सकता है। हिन्दी के 'कन्हैया' शब्द के महाप्राण 'न्' और मराठी के 'उन्हाळा' के महाप्राण 'न्' में पूर्ण साम्य है। कृष्ण>कहृण>कान्ह=कन्हैया। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने महाप्राण 'म्' के लिए तीन शब्द उद्धृत किये हैं—तुम्हारा, कुम्हार, ब्रम्हा। 'तुम्हारा' सर्वनाम के हकार का विश्लेषण 'सर्वनाम' शीर्षक में है। कुम्हार तथा ब्रम्हा दोनों शब्द यह सिद्ध करते हैं कि 'म्ह' महाप्राण व्यंजन न होकर 'म् और ह्' के योग से बना हुआ संयुक्त वर्ण है। कुम्भकार>कुम्भार>कुम्हार। मराठी के ब्राम्हण (हिन्दी में भी यह शब्द इसी तरह उच्चरित होता है) की तरह 'ब्रम्हा' में 'ह् म्' का वर्ण-विपर्यय हुआ है।

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हिं० भा० इ० § ६१, पृ० १२०।

श्री अमलेशचन्द्र सेन बंगला की महाप्राण तथा अल्पप्राण दोनों प्रकार की स्पर्श ध्वनियों के पूरे-पूरे यंत्रांकन उतारने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'महाप्राण तथा अल्पप्राण स्पष्ट ध्वनियों के उच्चारणों की प्रकटन व्यवस्था में वास्तव में मूलगत भेद है।[1]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'भ' 'ध' आदि ब्+ह, द्+ह आदि के संयुक्त रूप नहीं हैं। ध्वनि-विज्ञान के अनुसार उनका स्वतंत्र अस्तित्व है। 'न्ह' और 'म्ह' में शीघ्रता के कारण 'ह्' की ध्वनि अस्पष्ट रहती है, किन्तु जब धीरे-धीरे उच्चारण किया जाता है तो उसकी ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। दक्खिनी में न्+ह तथा म्+ह के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

न्ह	=	न्हनी	(छोटी)
	=	न्होकाला	(वर्षाकाल)
	=	पिन्हाना	(पहनाना)
	=	न्हासना	(भागना)
म्ह	=	म्हाड़ी	(मैड़ी, अटारी)

पार्श्विक

६१. ल्—अल्पप्राण, सघोष, पार्श्विक। 'न' की तरह जीभ का अग्र भाग ऊपरी मसूड़े को और जीभ के दोनों पार्श्व तालु को स्पर्श करते हैं।

उदा० लोड (आवश्यकता, इच्छा), काकलूत (प्रेम), होलर (प्रिय)।

लुण्ठित

६२. र्—अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य, लुंठित। जीभ का अग्रभाग ऊपरी मसूड़े के निकट तालु के निचले भाग का एक से अधिक बार अल्प स्पर्श करता है।

उदा० रांट (मनमुटाव, टेढापन), पारदी (व्याध), धंढोरा (ढिंढोरा)।

द्रविड भाषाओं में लुण्ठित 'र' के अतिरिक्त एक और 'र' है जो वर्त्स्य न होकर लुण्ठित मूर्द्धन्य है। हिन्दी की कुछ बोलियों में भी लुण्ठित 'र' के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का 'र' बोला जाता है। इस 'र' को कठोर 'र' की संज्ञा दी जा सकती है। दक्खिनी में इस प्रकार का कठोर 'र' नहीं है। दक्खिनी में जो 'र' उच्चरित होता है वह कई बोलियों के 'र' की तुलना में कोमल है। मराठी और कन्नडभाषी क्षेत्र के ग्रामीण जन बोलचाल की दक्खिनी में मूर्द्धन्य 'र्' का उपयोग भी करते हैं।

६३. महाप्राण पार्श्विक तथा लुंठित—कुछ भाषा वैज्ञानिक अल्पप्राण ल् और र् के साथ महाप्राण ल् और र् का अस्तित्व मानते हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने 'र्ह' को महाप्राण, सघोष, लुंठित व्यंजन माना है।[2]

---

१. चटर्जी—भा० आ० हि०, पृ० ११३, पाद टि० १।

२. धीरेन्द्र वर्मा—हि० भा० इ०, § ६७, पृ० १२२।

डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) ने उर्दू में इस व्यंजन का अभाव स्वीकार करते हुए भी इसे स्वतंत्र व्यंजन माना है।[1] डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी' में महाप्राण 'ल्' का अस्तित्व स्वीकार किया है।[2] हार्नली का विचार है कि संस्कृत में 'र्ह' का अस्तित्व नहीं था। वे हिन्दी में इसे स्वतंत्र व्यंजन के रूप में स्वीकार करते हैं।[3] 'ल्ह' को डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) महाप्राण पार्श्विक ध्वनि मानते हैं।[4] डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने 'ल्ह्' के संबंध में डाक्टर क़ादरी (ज़ोर) का समर्थन किया है।

मराठी के कुछ वैयाकरणों ने र् और ल् के महाप्राण रूप को स्वीकार किया है। महाप्राण अनुनासिकों की तरह इस संबंध में भी डाक्टर अशोक रा० केळकर का विचार उल्लेखनीय है। डाक्टर अशोक रा० केळकर 'र्ह' और 'ल्ह' को स्वतंत्र ध्वनि स्वीकार न करके संयुक्त व्यंजन मानते हैं।

मराठी में 'र्ह' और ल्ह के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

	तद्भव	तत्सम
र्ह	मर्हाटा (मराठा)	र्हास (सं० ह्रास)
ल्ह	चुल्हा	अल्हाद (सं० आह्लाद)

र्हास और आल्हाद में केवल वर्ण-विपर्यय के कारण र ह और ह् ल का क्रमशः ह् र और ल् ह के रूप में परिवर्तन हुआ है। उच्चारण की शीघ्रता के कारण 'ह' स्पष्ट सुनाई नहीं देता। धीरे-धीरे उच्चरित होने पर व्यंजनों का संयोजन ध्यान में आ जाता है। दक्खिनी में 'र्ह' और 'ल्ह' स्वतंत्र व्यंजन नहीं हैं।

उदा० र्ह—र्हना (नहीं तो मूंच ले मूं चुप र्हना है—फूल)

ल्ह—ल्हउ (रक्त)

उत्क्षिप्त

६४. ड़—अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त। आ भा आ में 'ड्' शुद्ध मूर्द्धन्य व्यंजन था। इसका उत्क्षिप्तीकरण मध्ययुग में हुआ। पाली में उत्क्षिप्त 'ड़' का उच्चारण होता था। द्रविड भाषाओं में 'ड़' विद्यमान है।[5] डाक्टर क़ादरी ने इस ध्वनि का परिचय इस प्रकार दिया है—जीभ की नोक सिमटती है और दांत के किनारे पर संघर्ष करती है।[6] वास्तव में दक्खिनी के ड़् के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऊपरी मसूड़े को छूता है। इसका विवेचन पहले किया जा

---

१. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § ३०, पृ० ९२।
२. सक्सेना—इ० अ० § ७५, पृ० ४९।
३. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § १५, पृ० १२।
४. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § २८, पृ० ९०।
५. चटर्जी—ओ० डे० बं० § ८० सी, पृ० १७०।
६. क़ादरी (ज़ोर)—हि० फो० § ३१४, पृ० ९२।

चुका है। मूर्द्धन्य ड् तथा ड् से उत्क्षिप्त ड़ का स्थान भिन्न है। इसके उच्चारण में जीभ का अगला भाग पलट कर तालु के पश्चपूर्व को झटके के साथ छूता है। यह ध्वनि शब्द के आरंभ में नहीं आती।

उदा० गाती सो चुड़िया बोली (टे० रि० करनूल)। हजारों घोड़े आदमी पकड़ को हैं—(टे० रि० करनूल)।

६५. ढ़—महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त। ड़ के समान उच्चारण। आ भा आ में ढ विशुद्ध मूर्द्धन्य था। इसका उत्क्षिप्तीकरण म भा आ में हुआ। हिन्दी से संबंधित बोलियों में यह ध्वनि उच्चरित होती है। अवधी में उत्क्षिप्त 'ढ़' विद्यमान है। दक्खिनी में शब्दारंभ में मूर्द्धन्य 'ढ' आता है। उत्क्षिप्त 'ढ़' सदैव मध्य अथवा अन्त में आता है।

उदा० पढ़ना, तेढ़ा (टेढ़ा), गढ़ (तेरे हुक्म तल नौ गढ़ आसमान के—कु० मु०)।

६६. ह् सघोष, स्वरयन्त्रमुखी, कण्ठ्य, संघर्षी। स्वरयन्त्र के मुख पर वायु घर्षण करती है।

उदा० होका (लालसा), हाट (दुकान), लहवा, मुंह।

६७. ह्—य् से पूर्व हलन्त 'ह्' कण्ठ्य न रहकर औरस्य हो जाता है। वायु झटके के साथ कण्ठ से बाहर निकलती है।

उदा० कह्या (कहा)।

६८. ख़—महाप्राण, अघोष, जिह्वामूलीय, संघर्षी। जिह्वामूल कोमल तालु के पश्च भाग को किंचित् स्पर्श करता है और बाहर निकलनेवाली वायु घर्षण करती है। यह ध्वनि अफ़ा के तत्सम शब्दों में आती है। दक्खिनी में इसे अल्पप्राण संघर्षी जिह्वामूलीय ध्वनि की तरह बोलते हैं।

६९. ग़—अल्पप्राण, सघोष, जिह्वामूलीय। साहित्यिक दक्खिनी के अफ़ा तत्सम शब्दों में इस ध्वनि का उच्चारण होता है।

उदा० ग़म, रोग़न (तूं हर खूब दीपक कूं रोग़न दिया—गुल), बाग़ (यू बाग़े आफ़रीनश पकड़्या जमाल—गुल)।

७०. श्—अघोष, संघर्षी तालव्य। जीभ का मध्यभाग तालु का स्पर्श नहीं करता। जीभ के दोनों पार्श्व तालु के कठोर भाग को छूते हैं और वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती है।

उदा० शरमिन्दी (शरमिन्दगी—क इ पा) -पाशा (पादशाह)।

तेलुगु भाषी व्यक्ति जब दक्खिनी बोलता है तो 'श्' का तालव्य उच्चारण नहीं करता। वर्त्स्य स् और तालव्य श् का अन्तर बहुत कम रहता है, जो कई बार कर्णग्राह्य नहीं होता।

७१. स्—अल्पप्राण, अघोष, संघर्षी वर्त्स्य। जीभ का अग्रभाग ऊपरी मसूड़े के निकट तालु को इस प्रकार स्पर्श करता है कि मध्यभाग में तालु और जीभ का अन्तर बना रहता है और वायु घर्षण करती हुई निकलती है।

उदा० सुपली (छोटा सूप), घोंसल (घोंसला), हांस (हंसली)।

७२. ज़्—अल्पप्राण, सघोष, संघर्षी वर्त्स्य। 'स्' की तरह जीभ का मध्य भाग तालु से

पृथक् बना रहता है, अग्रभाग वर्त्स्य तक जाता है और वायु घर्षण करती निकलती है। 'ज़' केवल अफ़ा के तत्सम शब्दों में ही उच्चरित होता है।

उदा० ज़ात (अन्तर दीखे यक्की ज़ात—इ ना), नाज़िर (छिपे काम उपराल नाज़िर है-वह—न ना), ख़ज़ाना (मे आ), दरवाज़ा (मे आ)।

७३. फ़्—अघोष, महाप्राण, संघर्षी दन्त्योष्ठ्य। निचले होंट ऊपरी दाँतों को छूते हैं और वायु घर्षण करती निकलती है। दक्खिनी में प्रयुक्त अ फ़ा के तत्सम शब्दों में ही यह ध्वनि प्रयुक्त होती है।

उदा० फ़िराक़ (मे आ०—वियोग), नफ़्स (मे० आ०—वासना), जफ़ा (जफ़ा के तीर सूं थे फ़ारिगुल बाल—फूल)।

७४. व्—सघोष, दन्त्योष्ठ्य संघर्षी। निचला होंट ऊपरी दाँतों को किंचित् स्पर्श करता है और वायु रगड़ खाती बाहर निकलती है।

उदा० वैताग (दुःखजन्य वैराग्य), वसवास (धोखा, दुविधा), लावक (स्नेह, आकर्षण), ब्याव (विवाह)।

अर्द्धस्वर

७५. य्—तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर। जीभ का पश्च भाग कठोर तालु के निचले भाग को छूता है, अगला भाग वर्त्स्य तक आता है और निष्क्रिय बना रहता है।

उदा० —यू (यह), जायंगा (जाएगा), पायक (=सेवक-नायक नहीं कोई सब हैं पायक—मन)।

हमज़ा।

७६. स्थान अलिजिह्वीय। हमज़ा का उच्चारण कुछ काल तक स्थायी रूप से नहीं किया जाता, जितने काल तक इसका उच्चारण होता है, कोई अन्य वर्ण इसकी सहायता नहीं करता। इसके उच्चारण के समय मुख के किसी अंग से सहायता नहीं ली जाती। स्वर नलिका सहसा बन्द होकर खुलती है।[1] पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती स्वर के साथ निकलनेवाले वायु प्रवाह को रोकने के लिए इस ध्वनि का उपयोग होता है। मूलतः यह अरबी ध्वनि है। फ़ारसी में प्रयुक्त अरबी शब्दों में इस ध्वनि की उपेक्षा की जाती है।[2]

अरबी शब्दों में जब हमज़ा आरम्भ में आती है तो इसका उच्चारण 'अ' किया जाता है। शब्द के मध्य में आने पर अपने पूर्ववर्ती स्वर का रूप धारण करता है। शब्द के अन्त में यह झटके के साथ उच्चरित 'अ' की ध्वनि देता है। मध्य में यह य् (अर्द्धस्वर) और व् (अर्द्धस्वर) के पश्चात्

---

१. गेर्डनर—दी फोनेटिक्स आफ़ अरेबिक, पृ० ३०।

२. फिल्लट—हाइअर पर्शिअन ग्रामर, पृ० २६।

आता है।[1] उर्दू में हमज़ा का उपयोग षष्ठी तत्पुरुष को सूचित करने के लिए भी किया जाता है। ए अथवा ओ की ध्वनि को अन्य ध्वनियों से पृथक् करने के लिए भी इसका उपयोग होता है। दक्खिनी में प्रयुक्त होने वाले अरबी शब्दों (विशेषकर धर्मशास्त्रों से सम्बन्धित) में पठित लोग हमज़ा का ठीक-ठीक उच्चारण करते हैं। हिन्दी ए और ओ का स्पष्ट उच्चारण करने के लिए अथवा षष्ठी तत्पुरुष के चिह्न स्वरूप इसका प्रयोग किया जाता है।

उदा० षष्ठी तत्पुरुष—सनाए मुहम्मद। 'य्' का उच्चारण स्वर से पृथक् करने के लिए —क़ायल। हिन्दी 'ए' को पूर्ववर्ती स्वर से भिन्न रखने के लिए—आइए जनाब।

---

१. आबेदुल्ला—ए ग्रामर ऑफ़ द अरेबिक लैंग्वेज, पृ० ३।

ध्वनि-विकास

७७. आ भा आ काल में भौगोलिक तथा उच्चारण की दृष्टि से मूल ध्वनियों में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। परिवर्तन की यह प्रक्रिया म० भा० आ० में तीव्र गति से हुई। यह युग आर्य भाषाओं के लिए महान् परिवर्तनों का युग था। परिवर्तन का यह क्रम नव्य आर्य भारतीय भाषाओं में रुका नहीं, यद्यपि गति में पर्याप्त शिथिलता आ गई। आधुनिक काल में क्रान्तिकारी परिवर्तन यह हुआ है कि सभी आर्य भाषाओं में पुनः आ भा आ के शब्दों का प्रचलन हुआ, जिससे उच्चारण में भी परिवर्तन हुआ। म भा आ का जो रिक्थ हमारी भाषाओं को मिला है, उसका उपयोग अपनी प्रकृति के अनुसार किया जा रहा है।

स्वर

७८. म भा आ में प्राचीन मूल स्वरों में अनेक परिवर्तन हुए। संयुक्त दीर्घस्वरों का प्रयोग एक प्रकार से समाप्त हो गया और उनके स्थान पर मूल स्वतन्त्र स्वरों का उपयोग होने लगा। व्यंजनों के स्थान पर भी स्वरों का उपयोग होने लगा, जिससे संस्कृतकालीन सन्धि-नियमों में बहुत अन्तर आया। पदान्त के स्वर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। आदि स्वर कम, किन्तु मध्यस्वर अधिक परिवर्तित हुए। पूर्ववर्ती स्वर परवर्ती स्वर का रूप धारण करते हैं और परवर्ती स्वर पूर्ववर्ती स्वर में विलीन होते हैं। दक्खिनी की शब्दावली में जो स्वर प्रयुक्त हुए हैं, उनका मुख्य स्रोत आ भा आ का मूल और म भा आ का परिवर्तित स्वर समुदाय है। दक्खिनी ही नहीं खड़ी बोली तथा हिन्दी की अन्य सभी उपभाषाओं ने अरबी-फ़ारसी के स्वरों को भी अपने ढंग से आत्मसात किया है। दक्खिनी स्वर-समुदाय के विकास के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं:—

(क) अधिकांश अन्तिम मूल दीर्घ स्वरों का ह्रस्वीकरण और फिर उस ह्रस्व स्वर की अकार में परिणति। अन्तिम अकार का लोप। हिन्दी की तरह दक्खिनी के शब्द भी नागरी लिपि में स्वरान्त लिखे जाते हैं, किन्तु सभी अकारान्त संज्ञाएँ तथा धातुएँ हलन्त उच्चरित होती हैं।

(ख) शब्द के आदि तथा मध्य में स्थित दीर्घ स्वरों की ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति।

(ग) मध्यकालीन आर्य भाषाओं में संयुक्त स्वर 'ऐ' तथा 'औ' में जो परिवर्तन हुए दक्खिनी ने उनको अस्वीकार किया।

दक्खिनी के स्वरों का विकास-क्रम निम्न प्रकार है:—

७९. अ—दक्खिनी को 'अकार' मुख्य रूप से आ भा आ, म भा आ और अरबी तथा फ़ारसी से प्राप्त हुआ है। शब्द के आदि में 'अ' स्वतन्त्र रूप से आता है और मध्य तथा अन्त में व्यंजन के साथ प्रयुक्त होता है।

(१) आ भा आ से प्राप्त अकार :—
(आदि) देव कला थे चाँद अतीत (इ ना)।
(मध्य) अचला उपर तल पाँव के एक थिर नहीं रखते कधीं (अली)।
(अन्त) के आधार है उन निराधार कूं (अली)।
(२) अरबी से प्राप्त अकार :—
(आदि) नबी अल्ला, खिज़र हूँ मैं कहे तब (हुसैनी)।
(मध्य) जल्द चर्चा के अब क़तल उस किये बाज (इ इ)।
(३) फ़ारसी से प्राप्त अकार :—
(आदि) अव्वल अली अल मुर्त्तज़ा (अली)।
(मध्य) मनम गंवा कर जनम रहे खम (अली)।
(४) आ भा आ 'आ' > 'अ'

यदि पूर्व अथवा परवर्ण पर स्वराघात हो तो प्राकृत में दीर्घ स्वर ह्रस्व होता है। इसी प्रवृत्ति के कारण 'आ' 'अ' में परिवर्तित हुआ।[1] महाराष्ट्री प्राकृत[2] तथा शौरसेनी[3] दोनों में यह परिवर्तन देखा जा सकता है। दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

(आदि, उपसर्गीय) जूं के यक ही अरस ठाँव (इ ना०), (अरस < आरस < आदर्श)।
तो उसकूं सोहता है सबतन पै अभरन (क़ु क़ु), (अभरन < आभरण)।
(आदि व्यंजन युक्त) पाँचवीं घड़ी पाँचों रगां (क़ु क़ु) (रग < राग)।
बरस एक बादज़ कौ जत्रा जहाँ (च म) (जत्रा < जात्रा < यात्रा)।
(अन्त, व्यंजन युक्त) नासिक बास रस जिह्वा लेवे (सु स,) (नासिक < नासिका)।
(५) आ भा आ 'अन्' > 'अ'
(अन्त) के यक निस उस हुजूरी कूं कया राज (फूल), (राज < राजा < राजन्)।
(६) 'इ' > 'अ'

म भा आ में शौरसेनी[4] तथा महाराष्ट्री[5] दोनों में कुछ स्थलों पर इकार का परिवर्तन 'अ' में हुआ। दक्खिनी में इ > अ के उदाहरण :—

(मध्य) जूं के हलद चूने के ठार (इ ना), (हलद < हलद्दा < हरिद्रा)।
कहीं भवरे कहीं तीतर लिखे थे (फूल), (तीतर < तित्तिरि)।
मुहम्मद दखनपत के घर तू अली (गुल), (दखन < दक्खिन < दक्षिण)।
(उपसर्ग में) साकी पिला मद ऐश का अप हुस्न के परमान (कु कु), (परमान < परिमाण)।

---

१. पिशेल—क० ग्रा० प्रा० § ७९, ८०, ८१, पृ० ७४-७५।
२. वररुचि—प्रा० प्र० १. १०।
३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.६७
४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.८८
५. वररुचि—प्रा० प्र० १.१२

(उपसर्ग के पश्चात्) या सुन चढ़े कुछ सर पर सनपात (मन), (सनपात<सन्निपात)।

(अन्त) ऐसा तो नहीं दिसता रुच (इ ना) (रुच<रुचि)।

जहाँ थे उसका है उत्पत (इ ना), (उत्पत<उत्पत्ति)।

कोई रिद सिद सूं मिल यारी (इ ना) (रिद<ऋद्धि, सिद<सिद्धि)।

(७) आ भा आ 'ई'>'अ'

म भा आ में कुछ शब्दों में 'ई 'अ' में परिवर्तित हुई।[1] महाराष्ट्री प्राकृत में यह परिवर्तन नहीं हुआ। दक्खिनी में ई>अ के उदाहरण:—

(अन्त) भोजन का थाल (गुल) (थाल<स्थाली)।

(अन्त प्रत्यय) एक पुरस एक नार (खु ना), (नार<नारी)।

ई (=इन्)>अ—गड़गड़ाता मस्त है हस्त। (हस्त<हस्ती=हस्तिन्)।

(८) आ भा आ 'उ'>'अ'

म भा आ में कई स्थलों पर उकार ने अकार का रूप धारण किया।[2] दक्खिनी में यह परिवर्तन शब्द के मध्य में मूर्द्धन्य वर्ण से पूर्वापर दिखाई देता है। शब्द के अन्त में सामान्यतया 'उ' 'अ' में परिवर्तित होता है:—

(मध्य) ग्यान समन्दर तूं मुंज पास (इ ना), (समन्दर, मैथिली समुंदर[3]<समुद्र)।

बाला बूढ़ा अधेड़ तरना (मन), (तरना<तरुण)।

उडगन न के आफ़ताब अड़ जाएं (मन), (उडगन<उडुगण)।

बिल्यां की गोद में उंदर छिपावे (फूल), (उंदर<उंदुरु)।

वो धनक बी क्या धनकजी . . (खतीब) (धनक<धनख<धनुष)।

(अन्त) अन्तर का चक लेना ध्यान (इ ना) (चक<चक्षु)।

यू माल यू मुल्क यू बस्त वासन (मन) (बस्त<वस्तु)।

जे कोई दिन कूं देखे भान (इना) (भान<भानु)।

(९) अरबी अ़ (अैन)>अ

अरबी में अ (अैन) का उच्चारण प्रतिजिह्वा से नीचे कण्ठनाल में वायु के घर्षण से होता है। अतः 'अ' अरबी में संघर्षी ध्वनि है।[4] फ़ारसी में अरबी का अ स्वीकार किया गया, किन्तु उच्चारण में अन्तर आ गया। फ़ारसी में अ़ का उच्चारण कण्ठनालीय नहीं है। इस वर्ण का उपयोग फ़ारसी में स्वतन्त्र रूप से बहुत कम शब्दों में होता है। शब्द के मध्य में इसका उच्चारण 'अ'

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.९९

२. वररुचि—प्रा० प्र० १.२२

हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१०७, १०८, १०९

३. ग्रिअर्सन—मैथिली लैंग्वेज आफ़ नार्थ बिहार, पृ० २४७

४. गेर्डनर—फोनेटिक्स आफ़ अरेबिक, पृ० २८।

से भिन्न नहीं। शब्दान्त में इसका कण्ठनालीय उच्चारण नहीं किया जाता।[1] दक्खिनी में तत्सम शब्दों में प्रयुक्त अ़ का उच्चारण 'अ' किया जाता है।

(आदि) मशहूर है जगत में मुश्किलकुशा अली है (अली) (अली<अ़ली)।
करामत कतै सो अक़्ल तमाम (सब) (अक़्ल<अ़क़्ल)।

(मध्य) जे कोई तेरी मुहब्बत मान्यां सो मेरी इताअत (मे आ) (इताअत<इताअ़त)।

(अन्त) तबअ का दीपक लगा (अली) (तबअ<तबअ़)।

(१०) अ० फ़ा० आ>अ

(आदि) सारे मुल्क में अदमियाँ दौड़ाये (क इ पा) (अदमियाँ<आदमी)।

(प्रथम व्यंजन युक्त) मरद बजार से अंडा बी दाल ला रे थे। (क स प) (बजार<बाज़ार)।

बदल कूनले में... (कु कु) (बदल<बादल)।

(मध्य) जँवै की करामत मशहूर हो गई। (क नौ हा) (करामत<करामात)।

(११) अफ़ा इ>अ

(मध्य) आख़र पाशा सांडनी सवारों कू छोड़ा (क इ पा) (आखर<आख़िर)।
खुदा मेरा मालक है... (क स पा) (मालक<मालिक)।

(१२) अ फ़ा 'ई'>अ

(मध्य) छै महने गुज़र गये (क प श) (महना<महीना)।

(१३) आ भा आ ऋ>अ

महाराष्ट्री तथा अन्य प्राकृतों में प्रथम व्यंजनयुक्त ऋकार अकार में परिवर्तित होता है।[2] दक्खिनी का उदाहरण:—

सकल कोट चौगिर्द भंगार के (कु० मु०) (भंगार<भृंगार)।

८०. आ—आ भा आ में 'आ' उच्चारण की दृष्टि से स्वतन्त्र स्वर नहीं था। यह स्वर ह्रस्व अकार का द्विमात्रिक उच्चारण मात्र था। म भा आ में आकार को मूल तथा स्वतन्त्र स्वर के रूप में स्वीकार किया गया। दक्खिनी में आ भा आ के आकार की स्थिति इस प्रकार है:—

(आदि) के आधार है उन निराधार कूं (अ ना)।

(मध्य) सरग मर्त्त पाताल हर यक धरा (इब्रा)

(अन्त) कोई फाड़ मुद्रा भावे कन (इ ना)

(२) अ फ़ा 'आ'=आ

---

१. फिल्लट—हाइअर पर्शिअन ग्रामर, पृ० १६।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२६।

२. वररुचि—प्रा० प्र० १.२।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.४४, ४५।

(आदि) यू बाग़े आफ़रीनश पकड्या जमाल (गुल)
(मध्य) किया यक कूं परवाना यक शमा का (गुल)
(अन्त) के साया नईं पड़्या (फूल)

(३) म भा आ में ह्रस्व स्वर के दीर्घ स्वर में परिणत होने के बहुत उदाहरण मिलते हैं। सभी प्राकृतों में कुछ शब्दों में आदि तथा आदि व्यंजन से युक्त अकार आकार में परिवर्तित हुआ।[1] दक्खिनी में सामान्यतया क्षतिपूर्ति स्वरूप आदि अकार को 'आ' बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है :—

(आदि) आग (मे आ) (आग <अगणी<अग्गि<अग्नि)।

(४) आ भा आ 'अ' + 'क' (प्रत्यय) > 'आ'—

सुक सन्तोस का था मेला मुंज (इ ना) (मेला<मेलअ=मेलओ<मेलक।)
अंधारे की ले कोइ दारू पिलाय (इब्रा) (अंधारा<अन्धकार (+क))।

(५) आ भा आ 'ऋ'>'आ'—

महाराष्ट्री को छोड़ कर अन्य प्राकृतों में 'ऋ' 'आ' में परिवर्तित हुई।[2] दक्खिनी में इस प्रकार के परिवर्तन का उदाहरण :—

गोप्यां है इनन कूं ओ है जो कान (मन) (कान<कण्ह<कृष्ण)।
माटी में माटी (मे आ) (माटी<मृत्तिका)।

(६) अरबी 'अ़' (ऐन) > 'आ'—

(आदि) हूँ तो आरिफ़ आ़क़िल मईं (इना) (आकिल<आ़किल)।
(आदि, व्यंजनयुक्त) नहीं मालूम जो चारे में दन्दी (फूल) (मालूम<मआलूम)।
(मध्य) बीब्यां कूं भी वही कर जाने जैसे अपने ताले (खुना) (ताले<तआ़ले)।
(अन्त) अपने सिफ्तां कूं मुतालआ करना सो (मे आ) (मुतालआ<मुतालआ़)।
किया यक कूं परवाना यक शमा का (शमा<शमअ़)।

(७) फ़ा अह>आ—

फ़ारसी के जिन शब्दों के अन्त में 'अह' आता है उन सबका उच्चारण हिन्दी (=उर्दू) में आकारान्त किया जाता है। उदाहरण—अँदेशा<अँदेशह्, कोता<कोतह्, नाश्ता<नाश्तह् गुलदस्ता<गुलदस्तह्, तमाशा<तमाशह्, वास्ता<वास्तह्, आहिस्ता<आहिस्तह्, गुजिश्ता< गुजिश्तह।

औरंगज़ेब के शासन काल में एक राज्याधिकारी ने सम्राट् से अनुरोध किया था—जिन शब्दों के अन्त में 'अह' आता है, किन्तु जिनका उच्चारण भारत में आकारान्त किया

---

१. वररुचि—प्रा० प्र० १.२।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.४४, ४५।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२७।

जाता है उन सब शब्दों के अन्त में अलिफ़ का चिह्न लिखकर व्यक्त करने की अनुमति दी जाय। औरंगज़ेब ने अपने कर्मचारियों को अन्तिम 'अह्' के स्थान पर 'आ' लिखने का आदेश दिया था।[1] दक्खिनी में भी ऐसे सभी शब्द आकारान्त उच्चारित किये जाते हैं।

उदाहरण :—

पन एक अँदेशा भारी है (इना) (अँदेशा<अँदेशह्)।

अथा बन्दा सो उसका आज़ाद (फूल) (बन्दा<बन्दह्)।

गई रात न आवती सुबा (मन) (सुबा<सुबह्)।

अपनी जगा आप चुप रहती (क इ पा) (जगा<जगह्)।

(८) अ फ़ा 'अ'>आ—

(प्रथम व्यंजन युक्त) उसे पांचा पारदे हैं। (मे आ) (पारदा<पर्दा)।

इस जागा का हाल पैग़म्बर. . (मे आ) (जागा<जगह)।

तुमारी परवारिश की नमाज़ करता है (मे आ) (परवारिश<परवरिश)।

(९) अ फ़ा इ>आ—

अपनी पूरी राशत अगर गुल पाशाज़ादी के हवाले कर को. . . (क स पा) (राशत< रियासत)।

७८. (१) इ—आ भा आ से प्राप्त :—

(आदि) इन्द्रियाँ भी नायक मन (इ ना)

(मध्य) अचिन्त चिन्ताभास (इ ना)

(अन्त) मसि काग़ज़ थे दिल धोएँ (सु स)।

(२) अ फ़ा इ=इ

(आदि) खया वो इस्म अहमद का. . . (अली) (इस्म=नाम)।

इन्सान उससूं जीव लाता है (सब)।

(मध्य) मैं सब पर शाहिद सही (इना)।

अरबी अ (ऐन)>इ,।

(आदि) उसी के इश्क़ ते सोंसार. . . (अली) (इश्क़<इश्क़)।

जिस तदबीर में सच नईं वाँ इज्ज़त कूं कुछ समज नइँ (सब) (इज्ज़त<इज्ज़त)।

(३) आ भा आ 'अ'>इ—

प्राकृतों में कई शब्दों में आ भा आ का अकार इकार में रूपान्तरित होता है।[2] दखिनी में अकार के इकार में रूपान्तरित होने के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(आदि) कइं तो वी यक इमली का झाड़ था (टे रि, हैदराबाद) (इमली<अम्ल)।

---

१. मुहम्मद शीरानी—पंजाब में उर्दू, भूमिका, पृ० हे, तोय।

२. वररुचि—प्रा० प्र० १.३।

हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.४६, ४७, ४८, ४९।

(आदि व्यंजन युक्त) न खोल किवाड़ (मन) (किवाड़<कपाट)।

पेट में का बच्चा बोला चिचा चिचा चच्ची (लो गी) (चिचा<चचा)।

(४) आ भा आ 'ई'>इ

म भा आ में अनेक शब्दों में ईकार का ह्रस्वीकरण हुआ।[1] दक्खिनी में य् और व् के पूर्व ई ह्रस्व होती है :—

परवाना ज्यूं दिया का (अली) (दिया<दीपक)।

समासित शब्द के पूर्वपद में आदि व्यंजन के साथ—

चकरबान सिसफूल निस के अलक (सिसफूल<शीशफूल)।

ना मुंज लोड़े पाट पितंबर (ख़ुना) (पितंबर<पीताम्बर)।

(५) आ भा आ ऋ<इ

म० भा० आ० में ऋकार इकार में परिवर्तित हुआ।[2] दक्खिनी में ऋकार के इकार में रूपान्तरित होने के उदाहरण—(आदि व्यंजन के साथ) गर सांप व गर बिछू है जां का (मन) (बिछू<वृश्चिक)।

इस नार कू करनहार सिंगार (मन) (सिंगार<श्रृंगार)।

ख़ुदा होर मुस्तफ़ा की दिष्ट सूं. . . (क़ु क़ु) (दिष्ट<दृष्टि)।

तेरे सिर जो सिंगां फुटिंगे। (क सि बे) (सिंग<श्रृंग)।

ऍं<इ-पश्चिमी हिन्दी में ह्रस्व 'ए' 'इ' में परिवर्तित होता है।

(६) म भा आ—'ए'>इ, पश्चिमी हिन्दी की तरह म भा आ का ह्रस्व एकार इ में परिवर्तित होता है। द० का उदाहरण इक्का<ऍक्का)।

सिर पो इत्ते बड़े सिंगां फुटे गाई के नाद (कसिबे) (इत्ते<ऍत्ते)।

(७) आ भा आ 'ए'>इ—

म भा आ में कई स्थलों पर 'ए' का रूपान्तर 'इ' में हुआ[3]। दक्खिनी में इस रूपान्तरण का उदाहरण :—

कोई दिसन्तर लेय फिरें (इना) (दिसन्तर<देशान्तर)।

(८) अ फ़ा 'अ'>इ

उदाहरण—क्या तुम कू गोशे का ख़ियाल नहीं (क स पा) '(ख़ियाल<ख़याल)।

(९) अ फ़ा आ>इ

पकड़कर बेचता था वो जिनावर (फूल) ('जिनावर<जनावर<जानवर)।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१०१।
वररुचि—प्रा० प्र० १.१७, १८।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२८—३०।
वररुचि—प्रा० प्र० १.२८।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१४८।

(१०) अ फ़ा ई>इ

सिने पर जग के... (क़ु० क़ु) (सिना<सीना)।

अ फ़ा अ (ऐन)+ई>इ

कलइ बर्तन कराव (बो) (कलइ<कलई)।

८२. ई—आ भा आ में 'ई', इकार का द्विमात्रिक रूप था। दक्खिनी में स्वतन्त्र रूप से शब्द के आदि में इस स्वर का प्रयोग नहीं होता। शब्द के मध्य तथा अन्त में प्रयोग होता है :—

(मध्य) यू गंभीरी उनीच को सुहावे (सब)

(अन्त) ई=इन्—ये ग्यानी होय सो जाने (इना)।

कोई संन्यासी दिगम्बरधारी (इना)

(२) अ फ़ा 'ई'='ई'—

(मध्य) वह इश्क़ का सिपर मुहीत एक (इना)

मैं ज़ुल्मात तूं ख़ुरशीद (इना)

(अन्त) ख़ाकी केरा बुर्का कर (इना)

(अन्त, प्रत्यय) बन खांब क़लन्दरी दिया है (मन)

इल्म अछे दानाई का (इना)

(३) आ भा आ 'इ'<'ई'

म भा आ में अनेक स्थलों पर इकार ईकार में परिवर्तित हुआ।[1] दक्खिनी में इ>ई के उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(आदि व्यंजन युक्त) जली का काडा कर को पीलाना (मे आ) (पीलाना<पिलाना)।

पांचा ख़वास कूं यक जागा मीलाना (मे आ) (मीलाना<मिलाना)।

(अन्त) बारा बुरुज पर है बारा इमाम दिष्टी (कु० क़ु०) (दिष्टी<दृष्टि)।

(४) आ भा आ 'ऋ'<ई

(मध्य) था घीव जो छिप कर चहार परदे (मन), (घीव<घृत)।

(५) आ भा आ 'ए'<म मा आ 'एँ'>द० ई

आ भा आ के एकार का म भा आ में संयुक्त व्यंजन से पूर्व ह्रस्वीकरण हुआ। दक्खिनी में खड़ी बोली की तरह ह्रस्व 'ए'>'ई' में परिवर्तित होता है :—

...वहदालाशरीकहू की नींद लेता (मे आ) (नींद<णेद्दा)।

(६) आ भा आ ऐ>ई

आ भा आ का 'ऐ' प्राकृत के कई शब्दों में ईकार का रूप धारण करता है[2]।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.९२, ९३
वररुचि—प्रा० प्र० १.१७।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१५५।
वररुचि—प्रा० प्र० १.३९।

दक्खिनी में इस परिवर्तन का उदाहरण—

कहीं ना पावे धीर (सु स) (धीर<धैर्य)।

(७) य>ई (अन्त)

सिर पो इत्ते बड़े सिंगां फुटै गाई के नाद (क सि बे) (गाई<गाय<गावः)।

(८) इ+व>य>ई—

(मध्य) गये दीस वहुत, रहे सो थोड़े (मन) (दीस<दिवस)।

किया दीस मिल बाप निस भाई जित (इब्रा)।

रखे झाँप तूं रात कूं दीस में (गुल)।

अ फ़ा 'इ'>ई—(आदि व्यंजन युक्त) परहेज़ उसका पीर सीवाय (मे आ) (सीवाय< सिवा)।

८३. उ—आ भा आ से प्राप्त मूल 'उ' के उदाहरण इस प्रकार हैं—

(आदि) उपकार मुंज पर दहूँ जग (इना)

(आदि व्यंजन युक्त) फड़ फड़ पुस्तक भूले बाट (इना)

(२) अ फ़ा 'उ'=उ

(आदि) ···उसे उरूज बोलते हैं। (मे आ)।

उलवी कूं मीसाक बोलते हैं। (मे आ)।

(आदि व्यंजन के साथ) क़ुदरत तो है उसके हाथ (इना)

हुनर होर फ़रासत में कामिल अथा (च भ)।

(मध्य) पेम बधावा पढ़ा जग कूं किया अंजुमन (अली)

(३) आ भा आ "अ">उ—

महाराष्ट्री प्राकृत को छोड़ कर अन्य प्राकृतों में कुछ स्थानों पर "अ" "उ" में परिवर्तित हुआ।[१] दक्खिनी में अकार के उकार में परिवर्तित होने का एक उदाहरण मिला है, इस उदाहरण में परवर्ती उकार ने आरंभिक अकार को प्रभावित किया है।

है नहीं कर करे उनमान (इना) (उनमान<अनुमान)

(४) आ भा आ "ऊ">उ, यह परिवर्तन प्राकृतों में हुआ।[२] दक्खिनी में यह परिवर्तन प्रायः संयुक्त व्यंजन से पहले आदि व्यंजन युक्त ऊकार में होता है।

वहां नज़र तो मुरछा खाय (इना) (मुरछा<मूर्च्छा)

सारा पुनम का चांद सो (अली) (पुनम<पूर्णिमा)

...बादल धुआं है (फूल) (धुंआ<धूम्र)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.५२, ५३।

२. वररुचि—प्रा० प्र० १.२४।

हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२१, १२२।

सब सुन अकार बसता होय (इना) (सुन<शून्य)

बोलचाल की दक्खिनी में आदि व्यंजन युक्त ऊकार को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति है—

दुसरे रोज़ अपनी बेटी की शादी... (क जा फ) (दुसरे<दूसरे)

अगर सूरज डुबे पिच्छे.. (क जा फ) (डुबना<डूबना)

(५) आ भा आ ऋ>उ—

प्राकृत में आदि ऋकार तथा प्रथम व्यंजन से संपृक्त ऋकार उकार का रूप धारण करता है।[1] दक्खिनी में यह परिवर्तन निम्नलिखित शब्दों में देखा जा सकता है—

(प्रथम व्यंजन के साथ) मुबारक नांवं सूं तेरे मुया कुं फिर जिलाया है (अली)

(मुया<मृतक)

(६) द्रविड 'ओं'>"उ"—

म भा आ तथा द्रविड का ह्रस्व ओंकार दक्खिनी में प्रायः 'उ' का रूप धारण करता है—

सिर पो डुप्पा नइं बातां करतैं (बोलचाल), (डुप्पा<ते. डोंप्पा)

(७) "ओ">"उ"

(प्रथम व्यंजन के साथ) बाल ते बारीकतर राह अछे जो कुमल (अली)

(कुमल<कोमल)

आखिर में अपने कुतवाल कू बुला को.. (क इ पा) (कुतवाल<कोतवाल)

(८) म भा आ म>वं>उं

प्राकृत में आदि और मध्य के "म" का परिवर्तन "व" में हुआ।

न भा आ के आरंभ में सानुनासिक "वं" "उं" में परिवर्तित होता है। दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण—

(अन्त)...गुलशने इश्क़ नाउं (गुल) (नाउं<नाम)

कुछ शब्दों में "व" निरनुनासिक "उ"—

गांउ के बाजू से निकल को घाट कू जाती हूं मैं (ख़तीब)

(गांउ<गांव<ग्राम)

(९) आ भा आ "व">"उ" दक्खिनी में हलन्त व्यंजन और स्वर से पूर्व आने वाला "व" अपने स्वर के साथ "उकार" में परिवर्तित होता है—

सबा उठ सुबह का सुन्ना करे हल (फूल) (सुन्ना<स्वर्ण)

समज्या है सुना अपस कूं तांबा (मन) (सुना<स्वर्ण)

धुन पांव का तुझ न दूसरा पाया (मन) (धुन<ध्वनि)

(१०) अरबी अ़ (ऐन)>उ

(आदि) उनके बावा कम उम्र में च मर गये (बोलचाल), (उम्र<उम्र)।

---

१. वररुचि—प्रा० प्र० १.२९।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१३१-१३४।

(११) अफा ऊ>उ—

(मध्य) जादुगर छोटी सूरत बना ले को. . . (क जा फ़), (जादुगर<जादूगर)

. . नजुमियां बोले थे। (क जा फ), (नजुमी<नजूमी)

हुजुर मेरी येकलुती येक भैन थी (क सा भा) (हुजुर<हुजूर)

८४. ऊ—आ भा आ में "ऊ" उकार का द्विमात्रिक रूप था। इस काल से प्राप्त ऊकार के उदाहरण निम्न प्रकार हैं। दक्खिनी में मूल ऊकार शब्द के आरंभ में नहीं आता।

(आदिव्यंजन के साथ) मूक अभासे अपना बार (इ ना)

कंगन होर चूडे हातां की करी चूर (फूल)

(२) अ फ़ा ऊ=ऊ

(आरंभिक व्यंजन के साथ) मेरे मन का तूती तो बेकाम है (गुल)

(मध्य) . . . अथा फिर तू माशूक़ (गुल)

(अन्त) करे जारूब हूरां अपने गेसू (फूल)

(३) आ भा आ "उ">ऊ

म भा आ में कुछ शब्दों में "उ" "ऊ" में रूपान्तरित होता है।[१] दक्खिनी में इस प्रकार का परिवर्तन शब्दों में पाया जाता है। कुछ स्थानों पर यह परिवर्तन पादपूर्ति के लिए हुआ है।

(आदि व्यंजन के साथ) खवास के पूडी बांदना (मे आ) (पूडी<पुड़ी<पुट)

(मध्य) भइ कौन ल्यावैं धूंड चतूर (इना) (चतूर<चतुर)

(४) अ फ़ा उ>ऊ

यहां है गूंगे केरी घात (इना) (गूंगा<गुंग)

अरबी अ़ (ऐन)+व>ऊ

इत्ते तुकड़े से क्या ऊद जलता है। (बोलचाल) (ऊद<ऊ़द)

८५. ऋ—आ भा आ में ऋकार का उच्चारण विशेष प्रकार से होता था। प्रातिशाख्यों में इस स्वर के उच्चारण के लिए जो निर्देश दिये गये हैं, उनके अनुसार यह उच्चारण अ+र+अ के समान होता है। आदि और अन्त के अकारों के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतना ही काल "र" के उच्चारण में लगना चाहिये। पाणिनि काल में ऋकार का यह उच्चारण समाप्त हो गया और वह शुद्ध मूर्द्धन्य स्वर के रूप में स्वीकार किया गया। आरंभिक अकार की ध्वनि लुप्त हो गई। "र" के अन्त में भी "अ" की ध्वनि शेष नहीं रही। कुछ अपवादों को छोड़ कर म-भा आ में ह्रस्व तथा दीर्घ ऋकार का विशेष उच्चारण समाप्त हो गया और इनके स्थान पर अनेक स्वतंत्र स्वर तथा स्वर मिश्रित रकार का उच्चारण प्रचलित हुआ। वररुचि ने ऋकार के अ, रि, इ, उ तथा व्+ऋ=रु में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है।[२] हेमचन्द्र ने ऋ के परिवर्तित रूपों में अ, आ, इ, उ, ऊ, ओ, ए, रि, ढि और अरि का उल्लेख किया है।[३] एक ही प्राकृत में ऋ के विभिन्न

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.११३-११४। २. वररुचि—प्रा० प्र० १.२७-३२।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२६-१४५।

रूप मिलते हैं।[1] न भा आ में तत्सम शब्दों में ऋ के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न का प्रयोग किया जाता है किन्तु उसके उच्चारण में बहुत अन्तर है। हिन्दीभाषी क्षेत्र में ऋ का उच्चारण "रि" किया जाता है जब कि मराठी में "ऋ" का उच्चारण "रु" होता है। द्रविड़ भाषाओं में भी यही उच्चारण प्रचलित है। इस प्रकार हिन्दी में ऋ का उच्चारण मूर्द्धन्य-तालव्य और मराठी तथा द्रविड भाषाओं में मूर्द्धन्य-ओष्ठ्य है। तत्सम शब्दों में ऋकार का स्वरत्व केवल इस बात में सुरक्षित है कि ऋकारयुक्त व्यंजन से पूर्व का स्वर कविता में द्विमात्रिक नहीं माना जाता।

दक्खिनी में ऋ के जो परिवर्तित रूप प्रचलित हैं उनसे ज्ञात होता है कि दक्खिनी ने कई प्राकृतों से ऋयुक्त शब्द ग्रहण किये। दक्खिनी को फारसी लिपि में लिखे जाने के कारण ऋ के पृथक् पृथक् उच्चारण सुरक्षित रह गये हैं। एक ही लेखक ने ऋ के स्थान पर कहीं "रि" और कहीं "रु" का उपयोग किया है। इन परिवर्तिनों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि लेखक ने प्रचलित उच्चारणों पर ध्यान रखा है। यह भी हो सकता है कि लेखक को इस बात का ध्यान ही न रहा हो कि वह "रि" और "रु" मूल ऋ के लिए प्रयुक्त कर रहा है।

दक्खिनी में "ऋ" ने परिवर्तित होकर जो रूप धारण किये हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

ऋ>अ — कोई सगट मिला देखेंगे (इना) (सगट<सक्त)
सकल कोट चौगिर्द भंगार के (भंगार<भृंगार)

ऋ>आ — माटी में माटी (मे आ) (माटी<मृत्तिका)
छुटी आज इस भिष्ट नापाक ते (कु मु)
(भिष्ट<भृष्ट<भ्रष्ट)

ऋ>इ — गर सांप व गर बिच्छू है जागा (मन)
(बिच्छू<वृश्चिक)

ऋ>ई — था घीव जो छिप चहार परदे (म न) (घीव<घृत)

ऋ>उ — मुबारक नांवं सूं तेरे मुया कूं फिर जिलाया है (अली)
(मुया<मृतक)

ऋ>अरी — अजब नइं गर होय तो जहर अमरीत (फूल)
(अमरीत<अमृत)

ऋ>इर — ...मुंज हिरदे का (इना) (हिरदा<हृदय)
किरपा कर चक देक मया (इना) (किरपा<कृपा)
बदल बिरदंग बजाया है (अली) (बिरदंग<मृदंग)
...मिरग जंगल ते ल्याया है (अली) (मिरग<मृग)

ऋ>रि — यू पिंड कूं प्रिथ्मी पछाने (मन) (प्रिथ्मी<पृथ्वी)

ऋ>री — हिरन, रीछ होर अजगरां नाग कूं (कु मु) (रीछ<ऋक्ष)

ऋ>रु — (आदि) नवी रुत मिलाया बसन्त (कु कु) (रुत<ऋतु)

---

१. पिशेल—क० प्रा० प्रा० § ४८, पृ० ५२।

(मध्य) जाग्रुत सपन में दो हाल (इना) (जाग्रुत<जागृत)

व -·ऋ>रू -- जूं वह बीजें रूक समाय (इना) (रूक<रुक्खो<वृक्ष)

८६. एॅ—आ भा आ में "ए" दीर्घ और प्लुत होता था। इसका ह्रस्व उच्चारण आ-भा आ के अन्तिम समय तक प्रचलित नहीं था। प्राकृत में संयुक्ताक्षर से पूर्व आ भा आ के "ए" का उच्चारण ह्रस्व किया जाने लगा। उदाहरण—एॅक्कं—एकम्, एॅद्दहँ<एतावत्। अपभ्रंश में संयुक्ताक्षर से पहले ही नहीं अन्य स्थलों पर भी "ए" का उच्चारण ह्रस्व होता था। उदाहरण—जंतिएँ<यान्त्या, तुरंतिएॅ<त्वरयन्त्या।[1]

निउड्डेॅवि<निमज्जय, अवरुंडेॅवि<आश्लिष्य।[2]

संयुक्ताक्षर से पूर्व—जोॅव्वण<यौवन।[3]

दक्खिनी में ह्रस्व "ए" के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) इ>एॅ—(संयुक्ताक्षर से पूर्व।)

केॅत्ता किये तो बी येत्ता च मिलेगा (बोलचाल)

(केॅत्ता<कितना, येॅत्ता<इतना)

(२) इ>एॅ—(प्रथम व्यंजन के साथ और महाप्राण से पूर्व)।

जंवै कू देखे—सो नेहाल हो को... (कचोश)

(३) ए>एॅ—(संयुक्ताक्षर से पूर्व)

येॅक्का चला को पेट पालतें... (बोलचाल) (एॅक्का<एक)

(४) ऐ>एॅ—

(अन्त) आरइएॅ कना (बोलचाल), (आरही है कहना)

८७. ए—आ भा आ से प्राप्त मूल "ए"—

(आदि) सुन एक तो घर अंधारा (इना)

(आदि व्यंजन युक्त) दहूं जग मांड्या अपना खेल

(२) अ फ़ा "ए"="ए"

(आदि) मंगता हुश्यार होने ले नांवं एलिया का (अली)

(आदिव्यंजन के साथ) करे जारूब हूरा अपने गेसू (फूल)

(३) आ भा आ "अ" < "ए"

आ भा आ का "ए" प्राकृत के कुछ शब्दों में अकार में परिवर्तित हुआ।[4] दक्खिनी का उदाहरण—

---

१. णम्मयाइ मयरहरहोजंतिएँ णाइ पसाहणु लइउ तुरंतिएॅ-चउमुहु सयंभु।

२. सहस किरणु सहसत्ति निउड्डेॅवि आउ णाइ अवरुंडेवि चउमुहु सयंभु।

३. जल रिद्धिए णं जोॅव्वण इत्ति—हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१४६, १४७।

४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१४६, १४७।

सेज (इना) (सेज>शय्या)।

(४) आ भा आ "ऊ'<ए

प्राकृतों में ऊकार कुछ शब्दों में विकल्प से "ए" का रूप धारण करता है।[१] दक्खिनी में इस परिवर्तन का उदाहरण—

करें रुनझुन कंचन नेपुर (अली) (नेपुर<नूपुर)

(५) अ फ़ा "ई">"ए"

पाशाज़ादी बेमार थी। (क चो श), (बेमार<बीमार)

(६) अ फ़ा "अ+ह">"ए"

जुल्वे के रोज़ सुबे कू—(क भा ब) (सुबे<सुबह)

हम आपकी वजे से जिन्दा हैं। (क स पा) (वजे<वजह)

८८. ऐ—आ भा आ का संयुक्त स्वर "ऐ" प्राकृतों में ही रूपान्तरित हो चुका था। जब न भा आ में संस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यवहार होने लगा तो पुनः "ऐ" का प्रयोग हुआ, किन्तु इस "ऐ" की ध्वनि आ भा आ से भिन्न है। फ़ारसी लिपि में "ऐ" के लिए स्वतंत्र लिपि चिह्न नहीं है।

(१) म भा आ "अ"+"य"="इ">"ऐ"—

तेरे लब सूं थे शीरी बैन मेरे (फूल) (बैन<बयन<वचन)

(२) न भा आ "अ"+"ह"<"ऐ"—

(प्रथम व्यंजन युक्त) पैला तन वाजिबुल उजूद... (मे आ) (पैला<पहला)

रोस हद यू कैना कबीर (इना) (कैना<कहना)

थोड़ा ज्युं साफ़ नयन में पैने है नार कजल (अली) (पैने<पहने)

किसे रैता (टे रि) (रैता<रहता)

ठैरते चलते यक ऐसे जंगल बियावान पौंचे (क इ प) (ठैरते<ठहरते)

(मध्य) कदीं तुझ पै बूटा सुनैरी घरे (गुल) (सुनैरी<सुनहरी)

(३) न भा आ "अ+ही">"ऐ"

(अन्त) मुज सहजै अनन्द अनन्द (इना) (सहजे<सहज ही)

(४) अ फ़ा "ऐ"="ऐ"—

(आदि) तुज मुबारक जिस्म दुनिया ते किया जब ऐहतेराज (अली)

(आदि व्यंजन के साथ) फ़ैज़ सूं तेरे सदा महज़ूज़ ख़ासो आम है (अली)

(५) अरबी "अ़" (ऐन))+"ए">"ऐ"

नाक पो ऐनक कैको लगाये? (टे० रि)

(ऐनक<ऐनक)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२३।

(६) अ फ़ा "आ">"ऐ"

दैलान में पिनाय हार (लो० गी.) (दलान <दालान)

पैंजब लाने की अरमान चंवर डुलते डुलते (लो० गी.)

(पैंजब<पाजेब)

(७) अ फ़ा "अ"+"ह्">"ऐ"

मुज उस गुल का सैरा हमायल पिनाया (कु क़ु)

ये बच्ची कू ले को तैख़ाने में चले जा (क मा अ)

(तैख़ाना<तह्ख़ाना)

मेरी शैज़ादी बनो... (लो० गी.) (शैज़ादी<शहज़ादी)

(८) अ फ़ा "आ"+"य">"ऐ"

बोल को ग़ैब हो जाती (क इ पा) (ग़ैब<ग़ायब)

सास से वैदा कर ले को आगे बड़ते च... (क स पा)

(वैदा<वायदा)

८९. ओ̆—आ भा आ—में "ओ" केवल दीर्घ और प्लुत था। इस दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण म भा आ में हुआ। प्राकृतों में संयुक्त व्यंजन से पूर्व "ओ" ह्रस्व रहता था। उदाहरण—ओ̆क्खलं<उलूखलम्। अपभ्रंश काल में भी संयुक्त व्यंजन से पूर्व आ भा आ का ऊ तथा औ ह्रस्व "ओ" में रूपान्तरित होते थे—

ऊ>ओ̆—मो̆ल्ल<मूल्य

औ>ओ̆—जो̆व्वण<यौवन

सो̆क्ख<सौख्य

म भा आ के अतिरिक्त दक्खिनी में द्रविड भाषाओं का ह्रस्व "ओ̆कार" भी आया। उदाहरण—

(क्रिया) क्या तो हो̆को जाइंगा (बो)

(द्रविड शब्द) दो̆ब्बकअली छुप को बैठें! (दोब्बा=मोटा)

९०. ओ—आ भा आ से प्राप्त मूल "ओ" के उदाहरण—

(प्रथम व्यंजन के साथ) तूं ना राखे मुंज पर कोप (इना)

धरी जड़त का आन भोजन का थाल (गुल)

(२) अ फ़ा "ओ"="ओ"

(मध्य) के दाओनी का फुंदना बाहां पै साजे (कु क़ु)

(अन्त) ज़री किसवत सरापा कर सुरज नौशो हो आया है (अली)

(३) म भा आ में निम्नलिखित स्वरों ने ओकार का रूप धारण किया अ,[1] आ,[2]

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.६१, ६२, ६३, ६४।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.८२, ८३।

इ,[१] उ[२], ऊ,[३] ऋ,[४] औ।[५] दक्खिनी में ओकार की उपलब्धि निम्नलिखित परिवर्तनों से हुई—

(४) अ>ओ

बोहत देर तक दोनों जने. . . (क स पा) (बोहत<बहुत)

(५) उ>ओ

अंगोठी और दुशाला बी उसकू दिखइ (क स पा)

(अंगोठी<अंगुष्ठिका)

(६) औ>ओ

दादा कहे पोतरा यू मेरा (मन) (पोतरा<पौत्र)

(७) अ+य=व>ओ

मुंजकू लागी परचो यूं (इना) (परचो<परिचय)

(८) अ+व>ओ

सो तिस कंदूरी लोन ते (कु.क़ु) (लोन<लवण)

(९) अ+हु>ओ

उसको पातरनियों से भोत मोबत थी (क प श) (भोत<बहुत)

(९) उ+ह>ओ

उसको पातरनियों से भोत मोबत थी, (क प श)

(मोबत<मुहब्बत)

९१. औ—संस्कृत में "औ" स्वतंत्र मूल स्वर न होकर संयुक्त स्वर है। संस्कृत का यह संयुक्त स्वर म भा आ में ओ, उ, अ उ, आ तथा आइ में रूपान्तरित हुआ। जब नव्य भारतीय भाषाएँ विकसित हुई तो उन्हें संस्कृत का शुद्ध "औ" प्राप्त नहीं हुआ।[६] दक्खिनी में औकार के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

१. अ+व>औ

(आदि) फहम में तूं दिया औतार (इना), (औतार<अवतार)

तुझ शह में शर्ज की औधान है (गुल) औधान<अवधान)

(आदि व्यंजन के साथ) पौन बिन नइं है मेरा कोई महरम (फू) (पौन<पवन)

(२) आ+व>औ

घर के पिच्छे बौडी थी। (क अ भा) (बौडी<बावडी)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.९७, ९८।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.११६, ११७।
३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१२४, १२५।
४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१३९।
५. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१५९।
६. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१५९-६४।

(३) अ+प=व>औ

दिन रात उन और न सो (खु ना) (और<अपर)

(४) आ+म>औं

मेरे जिगर के सौंले सलौने (लो गी) (सौंला<श्यामल)

(५) ऊ>औ

पाशा की छोटी भौ आएं (क इ पा), (भौ<बहू<वधू)

(६) अ+हुं>औं—

राजा बी वज़ीर घर को पौंचे। (पौंचे<पहुँचे)

(७) अ फ़ा "औ"="औ"

(आदि) अक़्ल कूं औसाफ़ का... (अली)

औलिया की फ़ौज में तूं उचाया है अलम (अली)

(आदि व्यंजन के साथ) औलिया की फ़ौज में तूं उचाया है अलम (अली)

(८) अ फ़ा "अ (ऐन)+व '>' औ"

औरतां चार कांदां में रहनवाली (बोल) (औरत<औ़रत)

व्यंजन-अल्पप्राण-स्पृष्ट

९२. म भा आ में व्यंजनों का रूपान्तर अनेक प्रकार से हुआ। जहां तक अल्पप्राण स्पृष्ट व्यंजनों का प्रश्न है प्रायः सघोषवर्ण अघोष में और अघोष वर्ण सघोष में परिवर्तित हुए। प्राकृतों में अघोष से सघोष की ओर प्रवृत्ति अधिक रही। दक्खिनी में इस प्रकार का परिवर्तन समान रूप से हुआ। अल्पप्राण व्यंजनों की उपलब्धि महाप्राण व्यंजनों से भी हुई। दक्खिनी में शब्दारंभ के महाप्राण व्यंजनों को छोड़कर मध्य तथा अन्त का महाप्राण अक्षर सामान्यतया अल्पप्राण में परिवर्तित होता है। वर्गीय महाप्राण व्यंजन जब अल्पप्राण बनता है तो प्रायः वह पूर्वापर स्वर अथवा व्यंजन पर अपना प्रभाव नहीं छोड़ जाता। दक्खिनी में अल्पप्राण की प्रवृत्ति म भा आ के अतिरिक्त दो अन्य कारणों से आई। आदि द्रविड़ भाषा में मूलतः संस्कृत जैसी महाप्राण ध्वनियों का अभाव था, इसीलिए तमिल लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए पृथक् चिह्न नहीं हैं। तमिल को छोड़कर शेष द्रविड़ भाषाओं की लिपियों में महाप्राण ध्वनि को व्यक्त करने की सुविधा उपलब्ध है, फिर भी पठित समुदाय को छोड़ कर सामान्य जन महाप्राण ध्वनियों का यथोचित उच्चारण नहीं करते। दक्खिनी द्रविड़ भाषाओं में विकसित हुई है। दूसरा कारण यह है कि अरबी तथा फ़ारसी बोलने वालों के लिए भी संस्कृत की मूल महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण कठिन था। इन आगन्तुकों के कारण दक्खिनी में महाप्राण के स्थान पर वर्गीय अल्पप्राण व्यंजन की प्रवृत्ति को बल मिला।

दक्खिनी के व्यंजनों में जो परिवर्तन हुए हैं उन पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शब्द का प्रथम व्यंजन प्रायः अपरिवर्तित रहता है। म भा आ काल में भी शब्दारंभ

के न्, य, श् और ष् को छोड़ कर अन्य व्यंजनों का परिवर्तन नहीं हुआ।[1] म भा आ में शब्दान्त के सानुनासिक व्यंजन को छोड़ कर शेष व्यंजन लुप्त हो गये। शब्द के मध्य का व्यंजन भी प्रभावित हुआ। कुछ प्राकृतों में स्वरों का उपयोग अधिक होने लगा। वर्ण व्यत्यय, असवर्णापत्ति, अक्षरा-पत्ति, महाप्राण से अल्पप्राण बनाने की प्रक्रिया, अघोष वर्ण के सघोष बनाने की प्रवृत्ति आदि के कारण व्यंजनों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। नव्य भारतीय आर्य भाषाओं ने कुछ परिवर्तनों को स्वीकार किया है और कुछ को छोड़ दिया है। दक्खिनी में व्यवहृत अल्पप्राण स्पृष्ट व्यंजनों के विकास का क्रम इस प्रकार है:—

९३. क—(१) आ भा आ से मूल रूप में प्राप्त—

(आदि) मुहम्मद-सा नहीं पैदा किया करतार तिरजग में (अली)

(करतार<कर्त्तार:)

(मध्य) उपकार मुंज पर दहूं जग (इ ना)

(अन्त) जूं कीटक घोंसल कीता (सु स)

इन्द्रियां भी नायक मन (इ ना)

(२) अ फ़ा 'क' (काफ़)=क

(आदि) किया रूप कातिब सो क़ुदरत होकर (इब्रा)

(मध्य) अक्ल का मकतब हुआ फ़हम के पढ़ने बदल (अली)

(अन्त) तुज हात के परताब ते ना ताब ल्या मुशरिक जिते (अली)

(मुशरिक=बहुदेव पूजक)

(३) आ भा आ ख>क

प्राकृत के कुछ शब्दों में 'ख' क में रूपान्तरित हुआ।[2] दक्खिनी में महाप्राण अक्षरों को अल्पप्राण उच्चरित करने की जो प्रवृत्ति है, उसके कारण इस परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं-

(मध्य) सातवीं घड़ी सातों सक्यां (कु कु) (सक्यां<सखियां)

(अन्त) इस तन में सुक (इना) (सुक<सुख)

मुक पे अछे यू किरन (अली) (मुक<मुख)

मेरे कू धोका दे को (क जा फ) (धोका<धोखा)

(४) आ भा आ 'श'>क

(अन्त) सब में दिसते मेरे बेक (इ ना) (बेक<भेक<भेख<भेष<ब्रेस<वेश)

(५) आ भा आ 'ष' <क

म भा आ में 'ष' प्रायः स अथवा 'ह' और छ में अन्तरित होता था।[3] अपभ्रंश में मूल 'ष',

---

१. पिशेल—क० ग्रा० प्रा० § १८४, पृ० १३९।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१११।
३. वररुचि—प्रा० प्र० २.४३।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२६०, २६२, २६५।

'ह' तथा 'छ' में रूपान्तरित हुआ। नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में पूर्वी हिन्दी की प्रवृत्ति 'ष' को 'ख' में रूपान्तरित करने की है, जब कि पश्चिमी हिन्दी में 'ष' 'श' की तरह उच्चरित होता है।[१] दक्खिनी में मूल 'ष' को 'ख' में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति है। अल्पप्राण की प्रवृत्ति के कारण दक्खिनी में यह 'ख' 'क' में परिवर्तित होता है—

(मध्य) मुजे भूकन पिन्हाओ मत (अली)

(भूकन<भूखन<भूषण)

(अन्त) अम्रत के बजाय बिक हुआ है (मन)

(बिक<बिख<विष)

वो धनक बी क्या धनक जी में धनक का भाग हूं (ख़तीब)

(धनक<धनख<धनुष)

(६) आ भा आ 'क्ष'>क

हिन्दी में क्ष (क्+ष) का उच्चारण कई तरह से किया जाता है—क्ख, क्स, क्छ। फ़ारसी लिपि में 'क्ष' के लिए पृथक संकेत नहीं है, अतः इसके प्रचलित उच्चारण को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। दक्खिनी में यह संयुक्त व्यंजन सामान्यतया 'क' में रूपान्तरित होता है:—

(मध्य) दकन ते कर्बला कूं (फूल) (दकन<दक्खन<दक्षिण)

(अन्त) आंक सूं गैर ना देखना सो (मे आ)

(आंक<अक्षि)

मैं उसका भी हूं साक (इ ना) (साक<साक्षी)

जूं वह बीजें रूक समाय (इ ना) (रूक<वृक्ष)

बन्धन थे मुंज कीना मोक (इ ना)

(मोक<मोक्ष)

दिखाया तूं अपना करम लाक लाक (गुल)

(लाक<लक्ष)

(७) अ फ़ा 'क़'=क़

दक्खिनी के लिखित साहित्य में अ फ़ा के (क़ाफ़) को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा गया है किन्तु दक्खिनी बोलने वाले इसका ठीक ठीक उच्चारण नहीं करते। लिखित साहित्य में कुछ उदाहरण ऐसे मिले हैं जिनमें 'क़' को 'क' लिखा गया है। उदाहरण—

भइ मुअम्मा भोत फ़कीर (इ ना)

(फ़कीर<फ़क़ीर)

करूं कंदीलदार वां मैं मन कूं अपने (फूल)

(कंदीलदार<क़ंदीलदार)

---

१. हार्नली—क० ग्रा० गो० § २०, पृ० २५।

बोलचाल में अ फ़ा का 'क़' 'क' भी उच्चरित होता है।

९४. अ फ़ा 'क़'=क़

(आदि) क़ुरान सात हर्फ़ां सूं बूज्या (मे आ)

(मध्य) दुकान में बेचते बक्क़ाल (मन)

(अन्त) शफ़क़ रूप होकर (इब्रा)

९५. ग—(१) म भा आ से प्राप्त मूल 'ग'

(आदि) किया दीस का पोंगरा गगन धर (इब्रा)

(मध्य) शुजाअत के गगन का (फूल)

(अन्त) बिसर राजमारग पड़े दूर, आह! (अ ना)

(२) फ़ा 'ग'='ग'

(आदि) ना खोल सक इस गिरह कूं (अली)

(मध्य) बेगाने कू उन्ने नइं देता। (मे आ)

(अन्त) सहाबी उपर आ गया ज़ोरे जंग (अली)

(३) आ भा आ क>ग

आ भा आ का 'क' प्राकृत में प्रायः लुप्त होता है।[1] कुछ शब्दों में 'क' 'ग' में रूपान्तरित हुआ।[2] अपभ्रंश काल में भी 'क' की यही स्थिति रही। दक्खिनी में 'क' के 'ग' में अन्तरित होने के उदाहरण इस प्रकार है—

(मध्य–) (अनुनासिक के पश्चात्) कँगना झलकार मुँज सुनाव तुम (कु क़ु)

(कंगना<कंकण)

(स्वर के पश्चात हलन्त क्) भज भाव की होर भगत की ख़ूबी (मन)

(भगत<भक्त)

(अन्त) कवे कूं सो हंस होर हंस कू सो काग (क़ु मु)

(काग<काक)

(४) घ>ग

(आदि) दपट कर सो इदराक गोड़ा दौड़ाव (इब्रा)

(गोड़ा<घोड़ा<घोटक)

(मध्य) पिव कीता मुज सूं जो गोटाल (अली)

(गोटाल<घोटाला—मरा०)

(अन्त) गोयां में दबे बाग (गुल)

(बाग<व्याघ्र)

खुशी का मेग अछे जम वां बरसता (फूल)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१७७।

२. हेमचन्द्र—प्रा० प्र० १.१८२।

(मेग<मेघ)

फिर गुलाब सुंगा को शहज़ादी कू—(क सा भा)

(सुंगा<सुंघा)

(५) आ भा आ 'ज्'>'ग'

ग्यानी होय सो जाने (इ ना) (ग्यानी<ज्ञानी)—

(ज्+ञ=ज्ञ)

(६) अरबी 'ग़'>'ग'

बोलचाल की दक्खिनी में 'ग़' का उच्चारण प्रायः ग किया जाता है।

(आदि) अब्बी एक लड़का गैब हो गया। (टे० रि०)

(गैब<ग़ायब)

(अन्त) मुर्गा बांग दिया तो सुबै होती कतै (टे० रि०)

(मुर्गा<मुर्ग़)

९६. च (१) आ भा आ से प्राप्त मूल 'च'

(आदि) बँदी नीलम के रंग की **ची**र नीली (फूल)

(मध्य) अ**च**ला उपर तल पाँव के एक थिर नहीं रखते कधीं। (अली)

(अन्त) पा**च** व मानिक बिछा (अली) (पाच=वैडूर्य)

(२) फ़ा० च=च

(आदि) दिसावें पाच के तख्ते चारों **च**मनों यू निछल (अली)

फ़ारसी में कुछ शब्दों में 'स' और 'श' के स्थान पर 'च' और 'च' के स्थान पर 'स' तथा 'श' का उच्चारण होता है। दक्खिनी में फ़ारसी की निम्नलिखित ध्वनियाँ 'च' में परिवर्तित हुईं:—

(३) फ़ा० 'ज़'>च

द० जचकीख़ाना<फ़ा० जज़कीख़ाना (प्रसूतिगृह)

(४) फ़ा० 'श'>च—फ़ारसी में भी 'श', 'च' तथा 'ज' में परिवर्तित होता है[1]।

सो क**च**कोल साबित तवक्कल किया (गुल) (कचकोल<कशकोल)

(५) आ भा आ त>च

संस्कृत में चवर्ग तथा शकार से पहले तवर्ग चवर्ग में परिवर्तित होता है। प्राकृत में 'त' च' में रूपान्तरित हुआ[2]।

(५) आ भा आ त>च

संस्कृत में चवर्ग और श से पहले तवर्ग को चवर्ग आदेश होता है। प्राकृत में 'त' के अनेक

---

१. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १५।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२०४।

रूपान्तरों में से 'च' भी एक है।[1] अपभ्रंश में आ भा आ का 'त', ट तथा ड में परिवर्तित होता रहा। दक्खिनी में 'त' के स्थान पर 'च' का प्रयोग म भा आ से आया। उदाहरण—

(अकार के पश्चात् हलन्त 'त')—कामिल मुरीद सचा (मे आ) (सचा<सत्य)।

(अनुस्वार के पश्चात् हलन्त 'त')—जे तू मन में राखे सांच (इ ना) (सांच<सत्य)।

(६) छ>च

तारे अच कर नहीं दिसते (मे आ) (√अच<√अछ)।

तो ये भेदी कौन है पूच (इ ना) (√पूच<√ पूछ)।

ना तीर तबर न भाल बरचा (मन) (बरचा<बरछा)।

मैं तुजे उससे अच्चा नाच सिकाऊँगा (क ला प) (अच्चा< अच्छा)।

९७. ज—(१) आ भा आ से प्राप्त—

(आदि) मेरे तन में यू जीव सब ठार है　　(न ना)

(मध्य) कहीं अंजीर व अनार शीरीं निछल (कु मु)

(अन्त) जो कोइ तोल में गज ते भारी दिसे (गुल)

(२) अ० फ़ा० से प्राप्त ज (जीम)=ज

(आदि) करे जारूब हूरां अपने गेसू (फूल) (जारूब=झाड़ू)।

(मध्य) तो ये तिसरा जान वुजूद (इ ना) (वुजूद=अस्तित्व)।

(अन्त) इलाही ज़बां गंज तूं खोल मुज (इब्रा)

(३) च>ज

(अन्त) हवा परदा मँजे का कर सितार्यां का तगट तिस पर (अली) (मंजा<मंचा< मंचक)।

(४) झ>ज—महाप्राण से अल्पप्राण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप।

(मध्य) मुमकिनुलउजूद बूजा तो तरीक़त तमाम हुआ (मे आ) (बूजा<बूझा)।

(५) आ भा आ 'ध'>ज—दक्खिनी की अल्पप्राण प्रवृत्ति के कारण 'ध' द में परिवर्तित हुआ और 'द' 'ज' में रूपान्तरित होता है।

सभू ते सांज लग... (अली) (सांज<संझा<संध्या)।

(६) आ भा आ द्य>ज

जे आज सो काल था न कुछ और (मन) (आज<अद्य)।

(७) आ भा आ 'य'>ज'

म भा आ में 'य' ज में परिवर्तित हुआ।[2] महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में 'य' के स्थान पर 'ज' का उच्चारण होता था। मागधी में 'य' अपरिवर्तित रहा। महाराष्ट्री तथा शौरसेनी के विपरीत मागधी में 'ज' के स्थान पर 'य' उच्चरित होता रहा। भाषा वैज्ञानिक के लिए यह अनुसन्धान का विषय है कि आज शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा मागधी

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२०४।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१४८।

से सम्बन्ध रखनेवाली पूर्वी हिन्दी में 'य' के स्थान पर 'ज' बोलने की प्रवृत्ति अधिक क्यों हैं।[1] मराठी, गुजराती और सिन्धी में 'य' को 'ज' में परिवर्तित करने की प्रवृत्ति नहीं है।[2] इस विषय में दक्खिनी, पश्चिमी हिन्दी से साम्य रखती है। सामान्यतया दक्खिनी में 'य' के स्थान पर 'य' और 'ज' के स्थान पर 'ज' उच्चरित होता है। जो शब्द पूर्वी हिन्दी से प्राप्त हुए हैं, उनमें 'य' के स्थान पर 'ज' उच्चरित होता है।

(आदि) नूर और कुदरत करने जोग (इ ना) (जोग<योग्य)।
.. कूड़ को जंतर भाव (खु ना) (जंतर<यन्त्र)।
जो जाम में, जो भान का है (मन) (जाम<याम)।
तरुन सुन्दर के जोवन पर... (अली) (जोबन<यौवन)।
(मध्य) तूं तो अन्तरजामी दिल (इ ना) (अन्तरजामी<अन्तर्यामी)।
यूं सब देता कर संजोग (इ ना) (संजोग<संयोग)
(अन्त) न काज अंधारे पासा (इना) (काज<कार्य)
जूं सेज निदर... (सेज<शय्या)।

(८) स>ज—यह परिवर्तन केवल बोलचाल की दक्खिनी में मिलता है।
आ को बन्दरनी का भेज लेली (क इ पा) (भेज<भेस<वेश)।

(९) अ फ़ा—ज़ (ज़ाल, ज़े, ज़े, ज़्वाद, ज़ोय)>ज—बोलचाल की भाषा में सामान्य जनता द्वारा प्रयुक्त—

(आदि) रात कू जोरों का पानी पड़ा (टे० रि० हैद०) (जोर<ज़ोर)
(मध्य) खजाना गाड़ को चोरां चले गये (टै० रि० हैद०) (खजाना<ख़ज़ाना)
चल गे सैली बजार कू जांगे (टे० रि० बीजा०) (बजार<बाज़ार)
(अन्त) दरोजा खोल को भार निकला (टे० रि० कर्नूल) (दरोजा<दरवाज़ा)

(१०) फ़ा० 'द'>'ज'

फ़ारसी में 'द' 'ज़' में परिवर्तित होता है और 'ज़' का उच्चारण कई शब्दों में 'ज' किया जाता है।[3] दक्खिनी में फ़ा० 'द' के स्थान पर 'ज़' 'ज' बनता है—

इनो फ़ारसी के बड़े उस्ताज हैं, क्या समझे (बो) (उस्ताज<उस्ताज़<उस्ताद)

मूर्द्धन्य व्यंजन

९८. कुछ भाषा वैज्ञानिकों के विचार में आद्य आर्य भाषा में दन्त्य वर्ण नहीं थे। जब आद्य आर्य भाषा से विकसित होने वाली बोलियों तथा साहित्यिक भाषाओं ने दन्त्य ध्वनियों को स्वीकार

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § १७, पृ० १६।
२. बीम्स—कं० ग्रा० आ० § २३, पृ० ७३।
३. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १५।

कर लिया तब भी मूर्द्धन्य वर्ण पूर्ववत् बने रहे।[१] म भा आ की अर्द्ध मागधी में मूर्द्धनीकरण की प्रवृत्ति अधिक थी[२]। जैन मागधी में भी मूर्द्धनीकरण की प्रवृत्ति थी। तमिल को छोड़ कर शेष द्रविड़ भाषाओं में 'ट' विद्यमान है। तमिल में संस्कृत के कुछ शब्दों को छोड़ कर 'ट' से कोई शब्द प्रारम्भ नहीं होता और मध्य में भी 'ट' 'ड' उच्चरित होता है। अरबी में टवर्ग की कोई ध्वनि विद्यमान नहीं है। जहाँ तक फ़ारसी का सम्बन्ध है, 'ड' को छोड़ कर उसमें भी कोई मूर्द्धन्य व्यंजन नहीं है। दक्खिनी पर अ फ़ा तथा द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव इस विषय में पर्याप्त पड़ा है। यही कारण है कि हिन्दी की अन्य बोलियों में जहाँ टवर्ग आता है वहाँ दक्खिनी में कुछ शब्दों में दन्त्य ध्वनियां आती हैं। जहां तक शब्द के आदि में आने वाले ट वर्गी अक्षर का सम्बन्ध है दक्खिनी में सामान्यतया दन्त्य ध्वनि आती है। इस सम्बन्ध में दक्खिनी और मराठी में समानता है। जिन तत्सम शब्दों के आरम्भ में दन्त्य ध्वनि आती है, हिन्दी में उसके मूर्द्धनीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है, किन्तु मराठी में और दक्खिनी में यह परिवर्तन नहीं होता, दन्त्य और मूर्द्धन्य उच्चारण के आधार पर मराठी के दो भेद किये जाते हैं। दक्षिणी क्षेत्र के मराठी भाषी आ भा आ के आदि दन्त्य को सुरक्षित रखे हुए हैं जब कि समुद्र तट के लोग सिन्धी भाषा बोलने वालों की तरह उसका मूर्द्धन्य उच्चारण करते हैं।[३]

उदाहरण—द० मरा० दंडा<सं० दंड+(क)

द० मरा० तुटना<सं० त्रुटन

९९. ट—(१) आ भा आ से प्राप्त—

(आदि) पौलाद के टांक्यां सूं तन अपना घड़्या है (सब) (टांकां<टंक)

(मध्य) टिटरी बहरी का जोर ल्या सकती है? (सब) (टिटरी<टिटिहरी<टिट्टिभ)

(अन्त) सब घट घट नादूं देक (इ ना)

नजर कूं पकड़्या उचाट (सब) (उचाट<उच्चाट)

(२) आ भा आ 'त'>ट

प्राकृत में 'त' 'ट' में परिवर्तित हुआ।[४] म भा आ से दक्खिनी को जो शब्द प्राप्त हुए हैं, उनमें त>ट पाया जाता है—

(आदि) सोने का है टीका सोने की है मांग (अली) (टीका<तिलक)

(मध्य) तिसर उबटपन पड़्या सीर (इ ना) (उबटपन<उद्वर्त्म+पन)

करे भी वह तीरत पटन (खु ना) (पटन<पत्तन)

(अन्त) करे मार करवट सो डूंगर सी फ़ौज (गुल) (करवट<करवर्त्त)

(३) आ भा आ 'थ'>ट

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० § ५९, पृ० २३३।

२. पिशेल—कं० ग्रा० प्रा० § २१९, पृ० १६१।

३. जूल बूलाक ला फो ल म, § ११९, पृ० १५८, १५९।

४. हेमचन्द्र - प्रा० व्या० १.२०५

(अन्त) बुरा हूँ तबी हूँ तेरी गांट का (गुल) (गांट<गंठि<ग्रंथि)

(४) आ भा आ 'ठ'>ट

(अन्त) जूं के निकले कास्ट अगन (इ ना) (कास्ट<काष्ठ)

तब हट को सट मिलूंगी (अली) (हट<हठ)

कपड़ों का जोड़ा उसकी पीट पो है (क जा फ) (पीट<पृष्ठ)

हातों ठोला रांट (इ ना) (रांट<रांठ=गंवार—मरा)

१००. ड (१) आ भा आ में 'ड' से प्रारम्भ होने वाले शब्द बहुत कम थे। इस ध्वनि का उपयोग शब्द के मध्य तथा अन्त में होता था—

(आदि) पकड़ डोरी कहकश (इब्रा) (डोरी<पुं० डोरा<डोरक)

(मध्य) तेरी मेगडंबर की अंबर सूं बात (गुल) (मेगडंबर<मेघाडंबर)

(अन्त) इस पिंड कूं नई है पायदारी (मन)

(२) आ भा आ 'ट'>ड

म भा आ में अघोष 'ट' अपने ही वर्ग के सघोष अल्पप्राण–ड–में परिवर्तित हुआ।[1] दक्खिनी में यह परिवर्तन शब्द के अन्त में होता है—

सहस बरस का माकड देखो (सु स) (माकड<मर्कट)

या यक्कादा जाने टोना कूड को जंतर भाव (कूड<कूट)

(३) आ भा आ 'थ'>ड

आ भा आ का 'थ' प्राकृत के कुछ शब्दों में 'ढ' बना[2], और दक्खिनी की प्रवृत्ति के कारण 'ढ' 'ड' में परिवर्तित हुआ।

जली का काडा करको पीलाना (मे आ) (काडा<क्वाथ)

(४) ढ>ड

बचन थे मुलुक होर गडां आवते (क़ु मु) (गड<गढ)

(५) आ भा आ 'त'>'ड'

संस्कृत का 'त' प्राकृतों में 'ड' में परिवर्तित हुआ।[3] दक्खिनी में इस प्रकार का परिवर्तन निम्न उदाहरण में दिखाई देता है—

डोंगर अथे जो खड़े बड़े (अली) (डोंगर<तंग+अर)

(६) आ भा आ 'द'<ड

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१९५।
वररुचि—प्रा० प्र० २.२०।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२१५, २१६।
वररुचि—प्रा० प्र० २.२८।

३. वररुचि—प्रा० प्र० २.८।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२०६, २०७।

संस्कृत का 'द' प्राकृतों में 'ड' बना।[1] दक्खिनी में इस परिवर्तन का उदाहरण:—
बिरहा डसन के दर्द थे (अली) (डसन<दंशन)
(७) आ भा आ 'द्ध'>ड
बुडे पाते थे फिर ताजा जवानी (फूल) (बुडे<वृद्ध+(क)।
१०१. त—(१) आ भा आ से प्राप्त—
(आदि) हर एक बचन तारा हुआ (कु कु)
(मध्य) इसथे उसमें हुआ अतीत (इ ना)
(अन्त) ना पाच न पुखराज ना पोत (मन) (पोत<पोता<प्रोता)
(२) अ फ़ा 'त' (ते)=त
(आदि) ले जिस षार पर तदबीर का जल (फूल)
(मध्य) तमादारी में नइं है दस्तगीरी (फूल)
(अन्त) मुहब्बत में वले साबित क़दम हूँ (फूल)
(३) अरबी 'त' (तोय) >त

अरबी में 'त' (ते) और त़ (तोय) दोनों अघोष वर्ण हैं, किन्तु दोनों के उच्चारण में भिन्नता है। 'त' (ते) को उच्चारण करते समय जीभ का अग्रभाग ऊपरी दांतों का स्पर्श करता है, किन्तु त़ (तोय) के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपरी दांतों के मूल का स्पर्श करती है और उसका पिछला भाग उठ कर कोमल तालु को छूता है। जीभ का पार्श्व भाग भी उच्चारण में सहायता देता है। 'त' (ते) जहां शुद्ध दन्त्य वर्ण है, वहां त़ (तोय) दन्त्य, पार्श्विक तथा संघर्षी व्यंजन है[2]। वाह्य प्रयत्न में इसकी समता 'ल' से की जा सकती है।

फ़ारसी में त़ (तोय) का उच्चारण त (ते) होता है।[3] जहां तक दक्खिनी के लिखित साहित्य का सम्बन्ध है लेखकों और लिपिकों ने त और त़ के लिए पृथक् पृथक् लिपि-चिन्हों का प्रयोग किया है, किन्तु उच्चारण में इस प्रकार का कोई अन्तर पुराने समय में ही शेष नहीं रह गया था। त़ (तोय) के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

(आदि) तमादारी बुरी है ऐ अज़ीज़ां (फूल) (तमादारी<त़मादारी)
जो थे गुंचे के तिफ्ला नैन खोले (फूल) (तिफ्ल<त़िफ्ल)
(मध्य) कते थे उसके तइं सुलतान आदिल (फूल) (सुलतान<सुलत़ान)
(अन्त) फ़लातूं फ़हम में शागिर्द उसका (फूल) (फ़लातूं<फलात़ूं)
(४) त=त

---

१. वररुचि—प्रा० प्र० २.३५।
हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२१७, २१८।
२. गेर्डनर—दी फ़ोनेटिक्स आफ़ अरेबिक, पृ० २०।
३. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १६।

हिन्दी के कई शब्दों में आ भा आ का 'त' 'ट' में परिवर्तित होता है। शब्द के आरम्भ में इस प्रकार का परिवर्तन विशेष रूप से देखा जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं:—

मरा०	द०	हि०	सं०
तुटणें	तुटना	टूटना	त्रुटन
तुकड़ा	तुकड़ा	टुकड़ा	त्रुट (ड़ा)

दक्खिनी में इस प्रकार का उच्चारण पुराने समय से है:—

नूर पनें में ये है तूट (इ ना) (तूट<त्रुट हि० टूट)

. . .कइ लाक तुकड़े हो पड़े (अली)

(द० तुकड़ा, हि० टुकड़ा, मरा० तुकड़ा, क० तुकड़ि, सं० त्रोटक)।

अपवादस्वरूप कुछ शब्दों में अन्तिम 'ट' भी 'त' में अन्तरित होता है। दक्खिनी में आ भा आ का मूल 'ट' शब्द के मध्य में सर्वत्र 'ट' बना रहता है।

उदा० पीसा है खरल बन और बत्ता (मन)

(द० वत्ता<हि० बट्टा), बट्टा=पत्थर की लोढी)

(५) आ भा आ 'थ'>'त'

(अन्त) निद्रा केरा फैला पन्त (इ ना) (पन्त<पन्थ)

करें अभी वह तीरत-पटन (ख ना) (तीरत<तीर्थ)

अल्ला के बचन नबी किये अरत (मन) (अरत<अर्थ)

शहजादी उसकू अपनी पूरी कता सुनाई (क स पा) (कता<कथा)

१०२. द (१) आ भा आ से प्राप्त—

(आदि) के देता है दाता धनी यक कूं दस (गुल)

(मध्य) इन्द्रियां भी नायक मन (इ ना)

उदक जल थल भरे हौजां. . . (अली)

(अन्त) भले बुरे का कैसा वाद (इ ना)

(२) द=द

हिन्दी, सिन्धी और बंगला में आ भा आ से प्राप्त शब्द के आरम्भिक 'द' का उच्चारण कुछ स्थानों पर 'ड' किया जाता है। गुजराती और मराठी में आदि दकार दन्त्य बना रहता है। यहां कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

मरा०	द०	हि०
दाट	दाट	डाट
दाढ़	डाढ़	डाढ़
दाढ़ी	दाढ़ी	डाढ़ी

(३) ड>द—

दक्खिनी में आ भा आ का आरम्भिक 'द' सुरक्षित रहता है और कुछ शब्दों में आर-

म्भिक 'ड' भी 'द' में परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन बोलचाल में अधिक देखा जाता है।

(आदि) जूं के सुन्ना मूस में दाल (इ ना) (दाल<डाल)
बिल्ली कू दे दाले (क जा फ) (दालना<डालना)
इससे तेरी शादी कर दालूंगा (क प श) (दालूंगा<डालूंगा)
(४) आ भा आ 'ध'>द
(मध्य) वहां दिसे मुंज अंदकारा (इ ना) (अंदकारा<अन्धकार (क))
...नुकता पैदा अदीक हुआ (इ ना) (अदीक<अधिक)
...अदिक दाब सूं (गुल) (अदिक<अधिक)
अर्दंग हो पिया की (अली) (अर्दंग<अर्धांग)
इदर शहज़ादी बी रो रो को बेहाल हो गई (क सा भा) (इदर<इधर)
(अन्त) ओटा न अपस के दिल कूं जूं दूद (मन) (दूद<दुग्ध)
गिलावा कांद पै सारा... (अली) (कांद<स्कंध) (कांद<दीवार, पं०)
(६) फ़ा० 'ज़'>द

फ़ारसी में ज (ज़ाल) द में परिवर्तित होता है।[१] दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

कागद देखत ना होये काम (इ ना) (कागद<कागज़)
गोलकुण्डा खिले के पिच्छें भोत सी गुम्बदां दिकतीऐं। (टे० रि० हैद०) (गुम्बद<गुम्बज़)

१०३. प—(१) आ भा आ से प्राप्त 'प' के उदाहरण—
(आदि) इस पिंड कूं नईं है पायदारी (मन)
(मध्य) तूं हर ख़ूब दीपक कूं रोग़न दिया (गुल)
(अन्त) ये दो अहैं उसके रूप (इ ना)
(२) फ़ा० 'प'=प
(आदि) किया यक कूं परवाना यक शमा का (गुल)
(मध्य) वह इश्क़ सिपर मुहीत एक (इ ना) (सिपर=ढाल)
(अन्त) इनब बेलां कुलालां कर सुरह्यां दप बंधाया है। (अली) (दप=ढप)

म भा आ में कोई ऐसा व्यंजन नहीं है, जो 'प' में परिवर्तित हुआ। तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्भव और देशज शब्दों में व्यवहृत इस ध्वनि के उदाहरण इस प्रकार हैं:—
(आदि) किया दीसका पोंगरा गगन घर (इब्रा) (पोंगरा<पौगंड)
यू झाड़, पहाड़, पीक, पानी (मन) (पीक=उपज—मरा०, सं० पच)
(मध्य) दिसे शरबत के यू कूज़े जिते नारियल के कपर (अली) (कपर<खर्पर)
(अन्त) छुपा खूंपे में फुल-तारे अंधकारां में (कु० .कु) (खूपा=जूडा)

---

१. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १५।

(३) फ़ा० 'फ़'>प[1]

फ़ारसी में कुछ शब्दों में 'फ़' विकल्प से प का रूप धारण करता है।

उदाहरण—

पील>फ़ील, सपीद>सफ़ीद।

बोलचाल की दक्खिनी के कई शब्दों में 'फ़' 'प' में रूपान्तरित होता है।

तेरे कू येक सुपीद फत्तर मिलिंगा (क जा फ) (सुपीद<सफ़ेद)

उसकूं बेटियों से नपरत थी। (क भा व) (नपरत<नफ़रत)

१०४. ब (१) ब=व, व=ब

बंगाली तथा उड़िया में 'व' और 'ब' में अन्तर नहीं है। इन भाषाओं में व के स्थान पर 'ब' उच्चरित होता है, किन्तु पश्चिमी हिन्दी में बोलते और लिखते समय 'व' और 'ब' के अन्तर पर ध्यान रखा जाता है।[2] पूर्वी हिन्दी के विपरीत पंजाबी की स्थिति है, जिसमें सामान्यतया ब के स्थान पर 'व' उच्चरित होता है। मराठी तथा गुजराती में व तथा ब का अन्तर पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा अधिक बना हुआ है[3]।

दक्खिनी में जो शब्द पूर्वी हिन्दी से आये हैं उनमें 'व' का स्थान 'ब' ग्रहण करता है किन्तु जो शब्द पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी और गुजराती-मराठी के प्रभाव से आये हैं उनमें 'व' के स्थान पर 'व' का उपयोग किया जाता है। दक्खिनी में 'व' के 'ब' में अन्तरित होने के उदाहरण:—

१. आ भा आ ब=ब

(आदि) बलद फिर तिस घाने ज्यूं (इना)

(मध्य) कोइ सन्यासी दिगम्बर धारी (इना)

(२) अ फ़ा 'ब'=ब

(आदि-अन्त) पहले बाब में तोबा (श म कु)

(मध्य) रह्या में मुज़बज़ब उस साथ जोड़ (गुल)

(३) आ भा आ 'प'>'ब'

(अन्त) तुज हात के परताब ते... (अली) (परताब<प्रताप)

(४) आ भा आ 'भ'>'ब'

(अन्त) जब गरब थे आया भार (इना) (गरब<गर्भ)

इन्दर सबा की दरबार की बड़ी परी (क ला प) (सबा<सभा)

(५) आ भा आ 'म'>ब—हेमचन्द्र ने 'म्र' के 'म्ब' में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है[4]।

---

१. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १७।

२. बीम्स—कं० ग्रा० आ० §२३, पृ० ७४।

३. जूल ब्लाक—ला० फा० लें० म० §१५०, पृ० १९०।

४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.५६।

(आदि) मयूरां नाचते ठारें बदल बिरदंग बजाया है (अली) (बिरदंग<मृदंग)

(मध्य) कधीं मुगरा कधीं चम्पा चंबेली (फूल) (चमेली<चंबेली)

(अन्त) समज्या है सुना अपस कूं तांबा (तांबा<ताम्रक)

(६) आ भा आ 'व'>ब—यह परिवर्तन न भा आ के आरम्भिक काल में हिन्दी की कुछ बोलियों में दिखाई देता है। दक्खिनी में इसके उदाहरण—

(आदि) ज्यूं पानी बाव समाय (इ ना) (बाव<वात)

जेता इस तन करे बिकार (इ ना) (बिकार<विकार)

माटी में बारा, माटी में खाली, इन पांचा अनासिरां का...(मे आ) (बारा < वारि)

अमरित बिस पिलाय (इब्रा) (बिस<विष)

गायों में दवे बाग (गुल) (बाग<व्याघ्र)

(७) आ भा आ व्ह>भ[1]>ब—

लिख्या तूं जीव के ताल मने बात (फूल) (जीब<जिव्हा)

महाप्राण-स्पृष्ट व्यंजन

१०५. भारत के प्राचीन भाषाविदों ने (१) झ, भ, घ, ढ, ध और (२) ख, फ, छ, ठ, थ को महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियों के रूप में अंकित किया है। पहली श्रेणी के महाप्राण व्यंजन, सघोष और दूसरी श्रेणी के व्यंजन अघोष हैं। पाणिनि ने सघोष महाप्राण ध्वनियों का उल्लेख पहले और अघोष महाप्राण ध्वनियों का उल्लेख उनके पश्चात् किया है। महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण ध्वनियों से पृथक् रखने के लिए आर्यों की सबसे प्राचीन लिपि में पृथक् चिन्ह विद्यमान थे। ये चिन्ह हमारी आधुनिक लिपियों में भी सुरक्षित हैं। जब हिन्दी (=उर्दू) फ़ारसी लिपि में लिखी जाने लगी तो भारतीय महाप्राण ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए निकटस्थ अल्पप्राण अक्षर के साथ 'ह' जोड़ा गया। रोमन लिपि में भी भारतीय भाषाओं के लिए ऐसी ही व्यवस्था है। रोमन अथवा फ़ारसी लिपि में जिस तरह भारतीय महाप्राण ध्वनियों को व्यक्त करने की व्यवस्था है, उसके कारण यह भ्रम हो सकता है कि भारतीय महाप्राण ध्वनियां स्वतन्त्र व्यंजन न होकर 'ह' के सहयोग से बनी हैं। इन महाप्राण ध्वनियों के सम्बन्ध में डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने श्री अमलेशचन्द्र सेन का मत इस प्रकार उद्धृत किया है—"महाप्राण तथा अल्पप्राण स्पृष्ट ध्वनियों के उच्चारणों की प्रकटन व्यवस्था में वास्तव में मूलगत भेद है। महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियां स्वतन्त्र ध्वनि-इकाइयां हैं और इन्हें हम युग्म न मान कर एक-एक अलग ध्वनि मान सकते हैं।"[2] डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का मत है—"वास्तव में इन ध्वनियों में भिन्नता है, इसे कभी अस्वीकार नहीं किया गया, परन्तु इस भिन्नता का मूलाधार महाप्राण स्पर्शों के उच्चारण के समय प्रयुक्त होता दीर्घतर कपोल-प्रसर तथा वक्ष-पेशियों द्वारा डाला जाता गुरुतर भार है। साधारण व्यवहार

---

१. हेमचन्द्र—प्रा. व्या० २.५७।

२. चटर्जी—भा० आ० हि०, पृ० ११३, की पादटिप्पणी।

में हम महाप्राणित स्पर्शों को स्पर्श महाप्राण ही मानना चालू रख सकते हैं, फिर उन्हें उच्चारित करते समय शब्द-यन्त्रियों की गति के आभ्यंतर प्रकार या विभेद चाहे जितने होते हों। वैसा देखा जाय तो इन ध्वनियों के बीच का अन्तर कोई ऐसा मूलगत नहीं है।"[१]

इस प्रसंग में म भा आ का एक परिवर्तन ध्यान देने योग्य है। स्वरों के बीच आने वाले महाप्राण अक्षर (सघोष और अघोष दोनों) 'ह' शेष रख कर लुप्त हो जाते हैं—मुह<मुख, लहुआ<लघुक, मेह<मेघ, रह<रथ, अहर<अधर, सेहालिका<शेफालिका, सहा<सभा।

आ भा आ की महाप्राण ध्वनियों के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि अन्य आर्य भाषाओं की अपेक्षा भारतीय आर्य भाषाओं में महाप्राण ध्वनियों की संख्या अधिक है।

फ़ारसी में मूलतः तीन महाप्राण ध्वनियां हैं, ज़, ख़ और फ़। इन तीन ध्वनियों में भी 'ज़' को छोड़ कर शेष दोनों अरबी ध्वनि-समूह से ली गई हैं। आ भा आ में अल्पप्राण ध्वनियों की अपेक्षा महाप्राण ध्वनियों का उपयोग कम होता है। बहुत थोड़े शब्द महाप्राण व्यंजन से प्रारम्भ होते हैं। मध्य तथा अन्त में भी महाप्राण ध्वनियां अपेक्षाकृत कम आती हैं। कुछ महाप्राण ध्वनियां दस-बीस शब्दों में ही व्यवहृत होती हैं। महाप्राण ध्वनियों में ख, छ और भ का प्रयोग अधिक किया जाता है। महाप्राण ध्वनियों के अल्प प्रयोग का सब से बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि इनके उच्चारण में अल्प प्राण व्यंजन की अपेक्षा अधिक प्रयास करना पड़ता है। दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आर्य भाषाओं में पहले भी महाप्राण ध्वनियों की यही स्थिति थी अथवा उनका प्रयोग अधिक होता था।

यह स्पष्ट है कि महाप्राण ध्वनियों के सम्बन्ध में म भा आ में जितने परिवर्तन हुए हैं, उनमें अल्पप्राण+ह युग्म को आधार बनाया गया है। म भा आ में जो परिवर्तन हुए उनमें बहुत समानता है, किन्तु न भा आ ने समान मार्ग निर्धारित नहीं किया। डाक्टर हार्नली ने नव्य भारतीय आर्यभाषाओं को, बहिरंग और अन्तरंग भाषा-क्षेत्र बनाकर, दो भागों में विभक्त किया है। प्रसिद्ध भाषाविद स्वर्गीय डाक्टर ग्रिअर्सन ने इस वर्गीकरण का समर्थन किया था। अन्तरंग तथा बहिरंग भाषा-क्षेत्र के प्रतिपादन में जिन उच्चारणगत और व्याकरण सम्बन्धी विभेदों का उल्लेख स्वर्गीय हार्नली तथा डाक्टर ग्रिअर्सन ने किया है उनमें महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियों और महाप्राण ऊष्मन् ध्वनि "ह" से सम्बन्धित परिवर्तनों को महत्त्व दिया गया है।

पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी में आ भा आ की महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियों तथा महाप्राण ऊष्मन् ध्वनि की रक्षा की गई है, जब कि बहिरंग क्षेत्र की बंगाली, उड़िया, असामी, गुजराती और मराठी में ही नहीं पंजाबी में भी महाप्राण ध्वनियों के अनेक परिवर्तन पाये जाते हैं। डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी आर्य परिवार की भाषाओं के बहिरंग तथा अन्तरंग क्षेत्र को स्वीकार नहीं करते, किन्तु महाप्राण ध्वनियों से सम्बन्धित मध्यवर्ती हिन्दी तथा बाह्य क्षेत्रवर्ती बंगाली, मराठी आदि में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें उपेक्षणीय नहीं मानते।

---

१. चटर्जी—भा० आ० हि०, पृ० ११४ की पादटिप्पणी।

पंजाबी, राजस्थानी और गुजराती में महाप्राण ध्वनियों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे दक्खिनी ही नहीं खड़ी बोली के लिए भी विवेचनीय हैं।

पूर्वी पंजाबी में अघोष महाप्राण ध्वनियां तो सुरक्षित रहती हैं, किन्तु सघोष स्पृष्ट महाप्राण ध्वनियां अपने वर्ग के अघोष अल्पप्राण वर्ण में परिवर्तित होती हैं। इस परिवर्तन के कारण पूर्वस्थ स्वर का उच्चारण-काल कुछ बढ़ जाता है और उच्चारण-विधि में एक प्रकार का वलन उत्पन्न होता है। परवर्ती स्वर पर भी इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है।

गुजराती का जो प्राचीन रूप लिखित रूप में सुरक्षित है, उसमें महाप्राण ध्वनियों के लिए अल्प प्राण को हलन्त बना कर उसके साथ "ह्" का संयोग किया गया है। पश्चिमी राजस्थानी में भी इस लोप के कारण उच्चारण में कंठनालीय स्पर्श उत्पन्न हुआ।

मेवात और शेखावाटी क्षेत्र में पूर्वी राजस्थानी का जो रूप प्रचलित है वहां प्रथम सस्वर व्यंजन के पश्चात् "ह्" अपने पूर्ववर्ण में सम्मिलित होता है, जिसके कारण अल्पप्राण वर्ण महाप्राण बन जाता है। ऐसी स्थिति में अल्पप्राण वर्ण "ह्" के स्वर को ही स्वीकार कर लेता है। इस परिवर्तन के कारण स्वराघात का अनुभव होता है।

"पंजाब में उर्दू" नामक पुस्तक के रचयिता स्वर्गीय महमूद शीरानी ने अनेक तथ्य उपस्थित करते हुए यह सिद्ध किया है कि खड़ी बोली का जन्म दिल्ली मेरठ सहारनपुर क्षेत्र में न होकर पंजाब में हुआ। पंजाबी मुसलमान जब राजनीतिक कारणों से दिल्ली पहुँचे तो वे अपने साथ खड़ी बोली भी ले गये। दिल्ली से यह भाषा देश भर में फैली; यदि इस सन्दर्भ में पंजाबी के सघोष महाप्राण वर्ण की अघोष अल्पप्राण में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति तथा उसके परिणाम स्वरूप पूर्व स्वर के वलन युक्त लम्बीकरण की तुलना हिन्दी की बहु प्रचलित महाप्राण ध्वनियों से की जाती तो कुछ नये तथ्य उपस्थित होते।

मराठी में ध्वनि-लोप का प्रभाव सब से अधिक शब्दान्त के महाप्राण वर्ण पर पड़ता है। वही सर्वप्रथम लुप्त होता है।[1]

पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी से दक्खिनी इस विषय में भिन्न परम्परा का अनुसरण करती है। दक्खिनी ने आ भा आ की मूल महाप्राण स्पृष्ट ध्वनियों तथा महाप्राण ऊष्मन् वर्ण की रक्षा नहीं की है। गुजराती तथा मराठी के अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए भी दक्खिनी इन दोनों भाषाओं से इस बात में भिन्न है कि महाप्राण ध्वनियां परिवर्तित होते समय पूर्वापर वर्ण पर कोई प्रभाव नहीं डालतीं।

इस विषय में पूर्वी पंजाबी तथा दक्खिनी में जो भिन्नता है उसके निदर्शन के लिए दो तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। दक्खिनी में पंजाबी की भांति केवल सघोष महाप्राण ध्वनियां ही अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तित नहीं होतीं अपितु अघोष महाप्राण ध्वनियों में भी परिवर्तन होता है। दक्खिनी में ऊष्मन् महाप्राण "ह्" भी दूसरा रूप ग्रहण करता है। दूसरा तथ्य यह है कि दक्खिनी

---

१. जूल ब्लाक—ला० फो० लें० म०, §१७३, पृ० २११।

में जब महाप्राण व्यंजन अल्पप्राण बनता है तो सामान्यतया पूर्वापर स्वर पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रसंग में द्रविड भाषा के महाप्राण वर्णों का उल्लेख करना आवश्यक है। तमिल-लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतंत्र चिह्न नहीं हैं। अन्य द्रविड भाषाओं की लिपियों में महाप्राण अक्षरों के लिए देवनागरी की तरह चिह्नों की व्यवस्था है। लिपि तथा शब्दावली पर विचार करने के पश्चात् इस धारणा का उद्‌भव हुआ है कि आर्यपूर्व द्रविड भाषा में महाप्राण ध्वनियों का सर्वथा अभाव था। संस्कृत शब्दावली के कारण द्रविड परिवार की भाषाओं ने इन ध्वनियों को स्वीकार किया।

इन समस्त तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् कुछ भाषावैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हार्नली द्वारा प्रतिपादित तथा डाक्टर ग्रिअर्सन द्वारा समर्थित आर्यभाषाओं के बहिरंग समुदाय में महाप्राण ध्वनियों का लोप तथा रूपान्तरण द्रविड तथा आर्येतर भारतीय भाषाओं के प्रभाव के द्योतक हैं। पश्चिमी हिन्दी की शाखा के रूप में विकसित होने वाली दक्खिनी में व्यापक रूप से परिवर्तित महाप्राण ध्वनियां इस तथ्य की पुष्टि करती हैं।

हैदराबाद के आसपास बोली जानेवाली दक्खिनी में इस समय कुछ अल्पप्राण व्यंजनों को महाप्राण बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है, किन्तु सामान्यतया साहित्यिक दक्खिनी अथवा बीजापुर-औरंगाबाद क्षेत्र की बोलचाल की दक्खिनी में अल्पप्राण ध्वनि महाप्राण नहीं बनती। दक्खिनी में महाप्राण व्यंजनों का प्रयोग अल्प परिमाण में हुआ है। स्पृष्ट महाप्राण ध्वनियों का विकास क्रम निम्न प्रकार है—

महाप्राण-स्पृष्ट व्यंजन

१०६. ख—(१) आ भा आ से प्राप्त मूल "ख"—

(आदि) तेरा खंग इक़बाल का है पनाह (अना) (खंग<खड्‌ग)

(मध्य) चौखंड अगर तुजे है चेला (मन)

(अन्त) दिसे चांद मुख (इब्रा)

(२) म भा आ में संस्कृत के निम्नलिखित युग्म व्यंजन "ख" में परिवर्तित हुए— स्क, स्ख, क्ष, क्ष्ण, और ष।[1] निम्नलिखित ध्वनियों से विकसित "ख" दक्खिनी में प्रयुक्त होता है—

(३) आ भा आ "क">"ख"

(क) अनुस्वार के पश्चात् परवर्ती महाप्राण ध्वनि के प्रभाव स्वरूप—

(आदि) कर अपना चीर खंटा गल में घाली (फूल)

(खंटा<कंठा)

(ख) "ह" के पूर्व व्यंजन में मिश्रित होने के कारण—

खया वो इस्म अहमद का... (अली) (खया<कह्‌या)

---

१. जूल ब्लाक—ला० फो० लें० म०, § ९६, पृ० १३५।

(ग) अन्तस्थ के पश्चात् शब्दान्त का "क"—
करूंगा बादे अजां पलखां सूं जारूब (फूल)

(पलख<पलक)

लगिया पलखां सूं पलखां (फूल)
पलखां कें तीर छानत (अली)
(४) आ भा आ "क्ष">"ख"
(अन्त) अपने अंखियां सू... (मे आ) (अंखी<अक्षि)
कहो दाख झाडां कूं मेरा सलाम (कु० कु) (दाख<द्राक्ष)
पंखी उड़ता सो जम...(फूल) (पंखी<पक्षी)
(५) आ भा आ "स्क" > ख
खांदे पर ले चलना हात (इना) (खांदा<स्कन्धक)
(६) अ फ़ा "ख़" > ख
बोलचाल की दक्खिनी में सामान्यतया अ फ़ा के संघर्षी महाप्राण "ख़" के स्थान पर "ख" उच्चरित होता है।
वो शैजादी बड़ी खफ़सूरत थी (टे० रि०, हैद०)
१०७. घ—(१) आ भा आ से प्राप्त मूल "घ"—
(आदि) सब घट नादूं देक (इना)
जानां का घोर नक्को (ख़तीब) (घोर<शाप)
(२) पश्च "ह्" के विलीनीकरण तथा अनुस्वार के पश्चात—
(आदि) वही सफ़ा है तेरा घर (इना) (गृह्>घर)
(मध्य) परम पियारी सात संघाती...(खु ना) (संघाती<संगाती)
यहां तूं संघम देक विचार (इना) (संघम<संगम)
ये ज़र ज़री सिंघार (अली) (सिंघार<शृंगार)
(अन्त) अंघें होना अफ़ाल (इना) (अंघ<अंगे<अग्रे)
(३) स्वरभक्ति के पश्चात—"क">ग>घ—
गुपत तूं च होर तूं च परघट (गुल) (परघट<परगट<प्रकट)
१०८. छ—(१) आ भा आ से प्राप्त—
(आदि) हर यक अपने अपने छन्द (इना) (छन्द<छन्दस्)
गर्ज़ ऐसी छिनालां के बुरे चाले (सब)

(छिनाल<छिन्नालय)

(अन्त) जिस ज़ात में मुहब्बत गर ना अछे अली की (अली)

(√अछना=√रहना)

(२) आ भा आ "च" > "छ", दो स्वरों के मध्य
सब नवेल्यां अछपल्यां बाल्यां (कु० कु), (अछपल<अचपल)

(३) आ भा आ "क्ष">छ—यह परिवर्तन म भा आ काल में हुआ।[1] दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण—

(आदि) जेता उड उड छिन छिन जाए (इना) (छिन<क्षण)

सो तन तिस दिन रहया छीन (इब्रा) (छीन<क्षीण)

(मध्य) अछर कूं तूं छोड़ अरत कूं देख (मन)

(अछर<अक्षर)

(अन्त) तिस के नयन कटाछ कूं सारी पिरत कहूं (अली)

पंछी कूं मछी के त्यूं तैराने (मन) (पंछी<पक्षी)

(४) आ भा आ त्स्य>छ

पंछी कूं मछी के त्यूं तैराने (मन) (मछी<मत्स्य)

१०९. झ—(१) आ भा आ काल में "झ" का उपयोग थोड़े से शब्दों में हुआ। दक्खिनी में मूल "झ" का उदाहरण—

उस वार की झनकार ते भूनाग के फन झड़पड़े (अली)

(झनकार<झणत्कार)

(२) ज>झ

(आदि) जूं वह झगमग कंचन रंग (इना) (झगमग<जगमग)

(३) आ भा आ "ज्+व">झ–

किया सुबह ने झल सूं दामन कूं चाक (गुल)

(झल<ज्वल=इर्ष्या)

(४) आ भा आ "स्">"झ"

जे ना इश्कों अंझू ढाले (खुना) (मरा० अंझू, गुज० आंजु, आंझु, द० अंझू, अंजू, हि० आंसू, सं० अश्रु, सिं० हुंज, पंजा० अंझु, प्रा० अंसु, पा० अस्सु)

(५) आ भा आ "क्ष">झ—

मिठाई जग में हुई उसकी पझर ते पैदा (अली)

(पझर<पज्जर<प्रक्षर)

(६) आ भा आ "श्+छ">"झ"

...चंदना यू निझल (अली) (निझल<निश्छल)

११०. ठ—आ भा आ काल में "ठ" का प्रयोग थोड़े-से शब्दों में हुआ है। म भा आ में मूल "ठ" के अतिरिक्त कुछ युग्म व्यंजनों से भी "ठ" का विकास हुआ—ष्ट, ष्ठ, स्त, और स्थ> ठ। दक्खिनी में आ भा आ का "ठ" मूल रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। क्षेत्रीय शब्दावली में प्रयुक्त "ठ" के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(आदि) उमट्या रूह का ठस्सा (इना)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.१७, १८, १९, २०।

यूं टुक सक केरे ठोले खाव (इना)

(२) ट>ठ, अन्तस्थ व्यंजनों और एकार के पश्चात् कुछ शब्दों में "ट" "ठ" में रूपान्तरित होता है—

(अन्त) तिसका सब कुछ पलठे (सु स) (पलठना<पलटा)
पलठाव कतो इने मूं पलठा लिया (कजाफ)
मेरा पेठ क्या मेरी भैन का पेठ क्या? (कलाप) (पेठ<पेट)

(३) आ भा आ "स्थ" < ठ। आ भा आ का "स्थ" प्राकृतों में "ठ" में परिवर्तित हुआ।[1] दक्खिनी में इस प्रकार का परिवर्तन निम्न उदाहरणों में उपलब्ध होता है—

(आदि) पन कला थे पकड़े ठांव (इना) (ठांव<स्थान)
हरेक ठार होर..(मे आ) (ठार<स्थल)
ठान में ठान उसका मान (इना) (ठान<स्थान)
(अन्त)..दिल की अंगेठी पूरकर..(अली) (अंगेठी<अग्गिट्ठा<अग्निष्टा<अग्निस्था)

(४) आ भा आ "त">ठ

उदा—माठी मिले, तंखा अबी तका लाया नैं (क सा पा)
(माठी<मृत्तिका)

१११. ढ—(१) आ भा आ में "ढ" का उच्चारण अधिक शब्दों में नहीं होता। अनुकरणवाचक शब्दों को छोड़ कर सामान्यतया कोई शब्द "ढ" से प्रारंभ नहीं होता। शब्द के मध्य तथा अन्त में भी इस ध्वनि का प्रयोग अधिक नहीं किया जाता।

(२) म भा आ में संस्कृत "ष्ट" से ट ठ ढ का उद्भव हुआ।

(३) न भा आ के प्रारंभ में ड+ह, ह+ड, और ल+ढ, "ढ" में परिवर्तित हुए। देशज शब्दों में "ढ" के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(आदि) ढिगेरा था उस अंगे कोहे अलवन्द (फूल)
(ढिगेरा=ढेर)
अगर माटी लेता तो बड़ी ढींग पर हात सट (सब)
(ढींग<ढेर)
(मध्य) बचन के जग मने मार्या ढिंढोरा (फूल)

(४) आ भा आ "द्ध" > ढ, म भा आ में "द्ध" > ढ में परिवर्तित हुआ। दक्खिनी में इस प्रकार का परिवर्तन उपलब्ध होता है।

....अछेगा बुढा (न न) (बुढा<वृद्ध (क)

११२. (१) आ भा आ "थ"—आ भा आ के शब्द के आदि में "थ" का उपयोग कुछ अनुकरणवाची शब्दों में होता है। शब्द के मध्य तथा अन्त में इस ध्वनि का उपयोग अधिक नहीं हुआ। दक्खिनी में मूल "थ" से युक्त कोई तत्सम शब्द उपलब्ध नहीं है।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.९।

(२) त>थ (दो स्वरों के मध्य)

मोथियों की माला बिरखाती हुई जा (क सा भा)

(३) थ=थ, हिन्दी में शब्दारंभ के "थ" को "ठ" बनाने की प्रवृत्ति पुराने समय से विद्यमान है। मराठी और दक्खिनी में आरंभिक "थ" "थ" ही बना रहता है।

मरा०	द०	हि०
थंड	थंड	ठंड
थाट	थाट	ठाट
थुड्डी	थुडी	ठुड्डी

(४) आ भा आ "स्त" >थ, यह परिवर्तन म भा आ में हो चुका था[1]। हिन्दी में शब्दारंभ के "स्थ" का कई स्थानों पर "ठ" में रूपान्तर होता है।

उदा० कलसे दिसते थांबां उपर चन्द-सूरज (कु० कु) (थांब<स्तम्भ)

(५) आ भा आ "स्थ"<थ, प्राकृतों में यह परिवर्तन कई शब्दों में दिखाई देता है। दक्खिनी में शब्दारंभ का "स्थ" "थ" बनता है, जब कि हिन्दी में यह व्यंजन-युग्म "ठ" में अन्तरित होता है—

टूटे चर्ख़ का थाट बांद्या तुही (गुल)

(थाट<स्थातृ, छप्पर या खपरेल का ढांचा)

थन अपना पर सूजे कोय (इना) (थन<स्थान)

११३. ध—(१) आ भा आ से प्राप्त—

(आदि) सरग मर्त पाताल हर यक धरा (इब्रा)

(मध्य) अधर कूं लाल थे कर. . . (फूल)

(अन्त) यहां जिन अंधा वहां भी होय (इना)

(अंधा<अन्ध+क)।

(२) म भा आ में मूल "ध" के अतिरिक्त द्ध, ग्ध, ब्ध, और ध्र "ध" में परिवर्तित हुए[2]। दक्खिनी में आ भा आ तथा म भा आ के "ध" के अतिरिक्त "द" के रूपान्तरण से भी इस महाप्राणध्वनि की उपलब्धि हुई है।

(आदि) रहे धूध (इब्रा) (धूध—धूध<दुग्ध)

(मध्य) ग्यान दीपक जिस मन्धर ना है (इना)

(मन्धर<मन्दिर)

(अन्त) दँधा दिल धर्या शाही (अली) (दंधा<धंदा)

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.४५, ४६, ४७।
वररुचि—पा० प्र० ३.१३।

२. जूल ब्लाक—ला० फा० लें० म० § १२४, पृ० १६२

११४. फ—(१) आ भा आ से प्राप्त मूल "फ"—
(आदि) इबादत भी यू इश्क़ का फूल है (गुल)
(फूल<फुल्ल)
के फूल बैत सिद्क़ फल सो तबा (इब्रा)
(२) देशज शब्दों से प्राप्त—
फोकट का है सवाल जवाब (इ ना)
(३) आ भा आ का "प" परवर्ती महाप्राण व्यंजन के प्रभाव से "फ" बनता है—
कंवल के फंकड्यां जैसे हात (कु० क़ु) (फंकडी<पंखडी<पक्ष+ड़ी)
फंकड्यां झमकाव बिजल्यां जूं (कु० क़ु)
(४) "ह" की पूर्वापसरण प्रवृत्ति के कारण—
फैले तन का लागा संग (इ ना) (फैले<पहले)
(५) आ भा आ "स्फ">फ
वो फुटते थे होकर फूलां के फांटे (गुल), (फांटा<फट्ट<स्फंट=शाखा)
(६) अ फ़ा "फ़">"फ" सामान्य बोलचाल में अफ़ा का "फ़" "फ" उच्चारित होता है—
उनो फरमाये अपन घर चलिंगे (बो० हैद०) (फरमाना<फ़रमाना)

११५. भ—(१) आ भा आ से प्राप्त—
(आदि) भुजंग के मन लुभाया है (अली)
(मध्य) जे तूं पकड़्या ले अभिमान (इना)
(२) म भा आ में संस्कृत के निम्नलिखित व्यंजन युग्म "भ" में परिवर्तित हुए— र्भ, भ्र, भ्य, ह्व। दक्खिनी में म भा आ से प्राप्त "भ" का प्रयोग प्रचुरता से होता है।
(३) दक्खिनी की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार "ब" के पश्चात् आने वाला "ह" पूर्व वर्ण में लीन होता है, जिससे "ब" "भ" में परिवर्तित होता है—
भूल पड़े तुज भौतेक अंग (इ ना) (भौतेक<बहुत+एक)
निकालता है ज्यूं नै ते आवाज भार (गुल) (भार<बाहर)
'...भौ बेटे कू पालती थी (क अ मा) (भौ<बहू)
(४) ब>भ, महाप्राण व्यंजन के प्रभाव से—
चारों भेक का देखना येक (इना) (भक<बेख<वेख<वेश)

नासिक्य

११६. आ भा आ में ञ्, म्, ङ्, ण्, और न् नासिक्य स्पृष्ट व्यंजन माने जाते थे। जहां तक ङ्, ञ् और ण् का सम्बन्ध है ये तीनों नासिक्य वर्ण संस्कृत में भी स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त नहीं हुए। केवल "न्" और "म्" ये दो नासिक्य वर्ण स्वतंत्र रूप से सस्वर प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत शब्दों में जब अनुस्वार के पश्चात् कोई स्पृष्ट व्यंजन आता है तो उस व्यंजन के वर्ग का पंचमाक्षर अनुस्वार

का स्थान लेता है।[1] "न्" और "म्" का प्रयोग स्वतंत्र रूप से भी होता है और इस नियम के अनुसार अनुस्वार की परिणति से भी इन दोनों नासिक्य वर्णों की उपलब्धि होती है। न् और म् के अतिरिक्त इसी नियम के अनुसार अनुस्वार ङ्, ञ् और ण् में परिवर्तित होता है। जब कभी अनुस्वार नासिक्य वर्ण में परिवर्तित होता है तो नासिक्यवर्ण हलन्त रहता है और उसका संयोग स्वरहीन व्यंजन की तरह पर वर्ण के साथ किया जाता है।

ङ् और ञ् महाराष्ट्री तथा शौरसेनी में लुप्त हो गये। कुछ प्राकृतों में अन्तिम 'ञ्' सुरक्षित रहा। पूर्वी हिन्दी में "इ" अथवा "य" के पश्चात् 'ञ्' की ध्वनि सुनाई देती है।[2] संस्कृत में पदान्त का "म्" सन्धि-नियम के अनुसार कभी "म्" बना रहता है, कभी "स्" का रूप धारण करता है और कई स्थानों पर अनुस्वार बन जाता है। दक्खिनी में "न्" और "म्" स्वतंत्र तथा सस्वर रूप में और "ङ" स्वर के पश्चात् तथा व्यंजन से पहले स्वरहीन प्रयुक्त होता है। ञ् तथा ण् का प्रयोग नहीं होता। दक्खिनी के नासिक्य वर्णों का विकास क्रम इस प्रकार है—

११७. ङ—आ भा आ तथा म भा आ से प्राप्त अनुस्वार "ङ" में परिवर्तित होता है—
जिब्राईल अंगे आकर वहां सूं... (मे आ), (अंगे=अङगे)
कंगाल के घर बी होए गंगाल (मन), (कंगाल=कङगाल) (गंगाल=गङगाल)
अडभंगे पन में पड़ को मुर्दार आया देखो (ख़तीब) (अडभंगा<अडभंङगा)।

११८. न्—(१) आ भा आ से प्राप्त स्वर—
(आदि) नट गाते नाटकसाल सब (कु० कु) (नाटकसाल<नाटकशाल)
(मध्य) आगे बडते च ननंद मिली (क स पा) (ननद<ननंद)
(अंत) तेरे नूर है तूं च दीपे नयन (गुल)
दसन कूं क्यूं कहूं... (फूल) (दसन<दशन)
(२) अ फ़ा "न"="न"
(आदि) सकल्यों पर भी हैं नाज़िर (इ ना)
(मध्य) पाक दीठा मुनज्ज़ा नूर (इना)
(अन्त) तूं हर खूब दीपक कूं रोग़न दिया (गुल)

(३) आ भा आ "ण">"न"। म भा आ में पैशाची को छोड़ कर अन्य प्राकृतों में मूल "न" को "ण" उच्चरित करने की प्रवृत्ति थी। अपभ्रंश में म भा आ का आरंभिक "ण" "न" में परिवर्तित हुआ किन्तु शब्द के मध्य का "ण" सुरक्षित रहा। पैशाची में अन्य प्राकृतों के विपरीत "ण" के स्थान पर भी प्रायः "न" का प्रयोग होता है। पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी में आ भा आ के ण के स्थान पर "न" उच्चरित होता है। बंगाली और आसामी में यही प्रवृत्ति पाई जाती है किन्तु लहंदा, पंजाबी, सिन्धी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी तथा उडिया में "ण" का उच्चारण[3] "ण"

---

१. पाणिनि—अष्टाध्यायी ८।४।५८।
२. हार्नली—क० ग्राम० गौ० § १७, पृ० ११।
३. चटर्जी—ओ० ड० ब० § २८६, पृ० ५२५।

होता है। ब्रजभाषा की भांति दक्खिनी में भी "ण्" का सर्वथा अभाव है। संभवतः पुरानी दक्खिनी में राजस्थानी और पंजाबी के प्रभाव से "ण" युक्त उच्चारण होता रहा होगा किन्तु फ़ारसी लिपि में "ण्" के लिए कोई स्वतंत्र चिन्ह नहीं है, अतः दक्खिनी साहित्य में "ण्" युक्त उच्चारण सुरक्षित नहीं है। कन्नड और मराठी क्षेत्र के लोग दक्खिनी बोलते समय कुछ स्थलों पर "ण" का उच्चारण करते हैं किन्तु दक्खिनी के मुख्य क्षेत्र में इस ध्वनि का उच्चारण सर्वथा नहीं होता। "ण" के सम्बन्ध में दक्खिनी ने पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव स्वीकार किया है। फ़ारसी लिपि में "ण" के लिए स्वतंत्र चिह्न नहीं है, इस कारण से भी दक्खिनी ने "ण" को स्वीकार नहीं किया। उदाहरण इस प्रकार हैं—

(मध्य) चंद पूनम सा हो बैठा (इना) (पूनम<पूर्णिमा)
(अन्त) दिसे संपूरन हर एक धात (इना) (संपूरन<संपूर्ण)
हिर्स के कान सूं ग़ैर न सुना सो, (मे आ) (कान<कर्ण)
सगुन का काडा दपना, (मे आ) (सगुन<सगुण)
निरगुन हुआ तो शफ़ा पावेगा, (मे आ), (निरगुन<निर्गुण)

(४) अनुस्वार का परिवर्तित रूप हलन्त "न्"—आ भा आ में तवर्गीय अक्षरों से पूर्व अनुस्वार न् में परिवर्तित होता था। खड़ी बोली की तरह दक्खिनी में भी तत्सम, तद्‌भव और देशज शब्दों में चवर्ग, टवर्ग तथा तवर्गीय वर्ण से पूर्व अनुस्वार स्वरहीन "न" में परिवर्तित होता है।

(चवर्ग से पूर्व) कोकिलां नाद सूं चौधिर कन्चनी पारी नचावैं (कु० क़ु) (कन्चनी<कञ्चनी)

(,,) कर छोड़े यूं जन्जाल (इना) (जन्जाल<जंजाल)
(,,) (क्ष० पू०) समदूर यक आंक के अन्जू में (मन) (अंजू< अश्रु)
(,,) (न द्र) मीठे कइ नीर के चश्मे सेती भर्या है मुन्जल (अली) (तेलुगु ए० व० मुंज़, ब० व० मुंज़ल)

(टवर्ग से पूर्व) थन्ड नाक सूं खुदा की बूई ना लेना सो, (मे आ) (थन्ड<थंड<ठंड)
(,,) मनां सूं था रूपा खन्ड्यां सूं सोना (फूल) (खन्डी<खंडी)
(,,) जिधर हन्डी डुई. . . (कहा) (हन्डी<हंडी)
(तवर्ग से पूर्व) (तत्सम) हर यक अपने अपने छन्द (इ ना) (छन्द<छन्दस्)
(तद्‌भव, क्ष० पू०) चन्द पूनम-सा हो बैठा (इ ना) (चन्द<चन्द्र)
(५) अन्तस्थ और ऊष्मवर्णों से पूर्व अनुस्वार कुछ शब्दों में "न्" में परिवर्तित होता है—
ज्यूं रात कूं बन्सी कू मछली लगे (सब) (बन्सी<वंशी)
(६) (अ फ़ा) से प्राप्त स्वर हीन "न्"
(चवर्ग से पूर्व) इलाही ज़बां गन्ज तूं खोल मुंज (इब्रा)
(तवर्ग से पूर्व) बन खांब क़लन्दरी दिया है (मन)

११९. म्—(१) आ भा आ से प्राप्त "म"—

(आदि) मन के लोचन अन्तर छेद (इ ना)

लग्या कानां कूं मुदरे होर चकरले (फूल) (मुदरा<मुद्रा)

(मध्य) के सुक समाद निदरा गर (इ ना) (समाद<समाधि)

(अन्त) यूं देक उपमा उत्तम बोल (इ ना)

(२) अ फ़ा से प्राप्त "म"—

(आदि) रह्या मैं मुज़बज़ब उस साथ जोड़ (गुल)

(मध्य) गुलाबी फूल पर दावा लग्या करने समन सेंती (अली)

(अन्त) खुदा का कलाम ना सुना सो (मे आ)

(३) आ भा आ "व">द० "म्", इस प्रकार का परिवर्तन द्रविड भाषाओं में पाया जाता है। मलयालम में "व" "म" में परिवर्तित होता है। तमिल का "व" भी मलयालम में "म" बनता है। हिन्दी की कुछ बोलियों में अन्तिम "व" "म" का रूप धारण करता है—

यू पिंड कूं प्रिथ्मी पछाने (मन) (प्रिथ्मी<पृथ्वी)

(४) संस्कृत शब्दों में पवर्ग से पूर्व अनुस्वार "म्" में परिवर्तित होता है—

दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

अम्ब के ज़र्फ में सनअत सूं. . . (अली) (अम्ब<अंब)

देखो अछम्बा लग्या है भू बन (अली) (अछम्बा<अछंबा)

(५) अ फ़ा से प्राप्त स्वरहीन "म"—

. . . पहचानत किसी पयम्बर नईं हुआ (मे आ)

१२०. वैदिक भाषा में स्वरों का अनुनासिक उच्चारण होता था और अनुस्वार का स्वतंत्र अस्तित्व भी था। संस्कृत, प्राकृत और वहां से नवीन भारतीय आर्यभाषाओं को स्वरों का अनुनासिकीकरण प्राप्त हुआ। संस्कृत शब्दों में स्पृष्ट व्यंजन से पूर्व के स्वर का अनुनासिकत्व नासिक्य व्यंजनों में परिवर्तित होता था। अन्तस्थ और ऊष्म वर्णों से पूर्व अनुस्वार अपनी स्थिति में रहता था। म भा आ में अन्तस्थ और ऊष्म वर्ण से पूर्व भी अनुनासिकत्व "न्" में परिणत होने लगा। न भा आ में यह परिणति पूर्ण हुई।

वैदिक भाषा और प्राचीन संस्कृत में प्रत्येक स्वर निरनुनासिक और सानुनासिक होता था। इस प्रकार का भेद परवर्ती वैयाकरणों को भी ज्ञात था, किन्तु लिखते समय अनुनासिक स्वर के लिए प्रयुक्त होनेवाला लिपि-चिह्न पाणिनि काल में ही अज्ञात हो चुका था। इस समय हम अर्धानुस्वार और अनुनासिक को सूचित करने के लिए चन्द्र बिन्दु का उपयोग करते हैं। वैदिक भाषा में अनुनासिक दीर्घ स्वर का जो उच्चारण था उसे आज भी वेदपाठी व्यक्त करते हैं। डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी के विचार में अनुस्वार का उच्चारण स्थिर नहीं होता जब कि अनुनासिकत्व, स्वर के उच्चारण काल तक बना रहता है।[1] द्रविड परिवार की भाषाओं में स्वर

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें०, § १३०, पृ० २४४ और १७५, पृ० ३५८

का अनुनासिकीकरण विद्यमान नहीं है। आधुनिक आर्य भाषाओं में अनुस्वार अथवा अर्धा-नुस्वार का उच्चारण जिस प्रकार से किया जाता है, द्रविड़ भाषाओं में वैसा उच्चारण नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में अनुस्वार का चिह्न प्रयुक्त होता है। उसका उच्चारण या तो वर्ग के पंचमाक्षर की तरह होता है या 'म्' के समान। तेलुगु में अनुस्वार का उच्चारण स्पृष्ट अक्षरों को छोड़ कर अन्य व्यंजनों से पूर्व संस्कृत के पदान्त में आनेवाले 'म्' के समान होता है।

मराठी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में इस समय दो प्रकार के अनुस्वार प्रचलित हैं। हिन्दी में सुविधा के लिए पहले प्रकार के अनुस्वार को अनुस्वार और दूसरे प्रकार के अनुस्वार को अर्धानुस्वार अथवा चन्द्र बिन्दु कहते हैं। अनुस्वार संबंधित स्वर को छोड़ कर परवर्ती व्यंजन से पहले उच्चरित होता है किन्तु अर्धानुस्वार अपने स्वर को अनुनासिकत्व प्रदान करता है। अनुनासिकत्व अथवा अर्धानुस्वार का परवर्ती वर्ण के साथ कुछ भी संबंध नहीं होता। संस्कृत में जिस तरह का अनुस्वार उच्चरित होता है वह पूर्वी[1] हिन्दी में नहीं बोला जाता।

मराठी में भी अनुस्वार के दोनों रूप प्रचलित हैं, किन्तु अर्धानुस्वार का उच्चारण धीरे धीरे समाप्त होता जा रहा है। पुरानी मराठी में जहां स्वरान्त उच्चारण अनुनासिक होता है वहां लिपि चिह्न रहते हुए भी निरनुनासिक उच्चारण किया जाता है।[2]

दक्खिनी में अनुस्वार के नासिक्य वर्ण में परिवर्तित होने के उदाहरण दिये जा चुके हैं। वास्तव में दक्खिनी की प्रवृत्ति अनुस्वार के स्थान पर स्वर को अनुनासिक करने की है। आ भा आ तथा म भा आ में जहां नासिक्य वर्ण अथवा अनुस्वार उच्चरित होता है, दक्खिनी में उन स्थानों पर केवल अनुस्वारपूर्व स्वर अनुनासिक बनता है। इस अनुनासिकीकरण को चन्द्रबिन्दु लगा कर व्यक्त किया जा सकता है। कुछ तत्सम शब्दों को छोड़ यह प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। जब अनुस्वार के स्थान पर स्वर को अनुनासिक किया जाता है तो क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर दीर्घ बनता है। कुछ शब्दों में क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर दीर्घ नहीं बनता। एक लेखक एक ही स्वर को दो प्रकार से लिखता है—कहीं वह क्षतिपूर्ति स्वरूप अनुनासिक स्वर को दीर्घ लिखता है और कहीं ह्रस्व।

(१) अनुस्वार>अनुनासिकत्व, क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर का दीर्घीकरण।

(कवर्ग से पूर्व) रख्या उस सर उपर आंकस चंदर का (कु क़ु) ,, (आंकस<अंकुश)

,, चल्या नैसा बिछू की होके डांक्यां (फूल) (डांक<डंक)

,, अगरचे लहू सूं सब आंग खाली (फूल) (आंग<अंग)

(चवर्ग से पूर्व) मूं पो आंचल डाल को. . (बो) (आंचल<अंचल)

,, लूंचत मूंडत. . . (खु ना) (लूंचत<लुंचत)

,, कांटा फांटा सब वसूल (इ ना) (कांटा<कंटक)

,, सुनूं मैं वो घांटे ते आवाज़ जूं (गुल)

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ०, § २३, पृ० २७।

२. कृ० पां० कुलकर्णी—अर्वाचीन मराठी, पृ० ७।

(टवर्ग से पूर्व) (घांटा<घंटा)

(तवर्ग से पूर्व) देवकला थे चांद अतीत (इ ना) (चांद<चंद्र)

(पवर्ग से पूर्व) कलसे दिसते थांबां उपर चन्द सूरज (कु क़ु)

(थांब<स्तम्भ)

कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें अनुस्वार के कारण क्षतिपूर्ति स्वरूप अनुनासिक स्वर दीर्घ नहीं होता —

(कवर्ग से पूर्व) कुर्सी अर्श तुज घर अंगन (कु, क़ु)

(अँगन<अंगन)

(चवर्ग से पूर्व) . . . . कल्बो खरा ज्यूं कँचन (अली) (कँचन<कंचन)

(टवर्ग से पूर्व) के सुंड फांस में दुश्मन नित संपड़ता (कु क़ु) (सुँड<शुंड)

(तवर्ग से पूर्व) जैसे कुँदन पर नग जड़े (अली) (कुँदन<कुंदन)

(ऊष्म वर्ण से पूर्व) हँस चाल ले पिया ने. . . (अली) (हँस<हंस)

(२) ऊष्मवर्ण के पूर्व 'अ' को अनुस्वार के रूपान्तर के कारण जब अनुनासिक किया जाता है तो 'अ' ओ में बदलता है। मराठी में भी यह परिवर्तन पाया जाता है। उदा०—उसीके इश्क़ ते सोंसार तिरजग का भराया है (अली) (सोंसार<संसार)। सब का उतपत यहीं सोंहार (इ ना) (सोंहार<संहार)।

(३) अनुनासिकीकरण-संस्कृत के जिन शब्दों के अन्त में मन् आता है, उनके मकार को व में परिवर्तित करते हैं और 'न्' अपने पूर्व स्वर 'अ' को अनुनासिक बना कर लुप्त हो जाता है। जहां पद के अन्त में 'मन्' न होकर शब्द-मध्य अथवा शब्दान्त में केवल 'म' होता है वहां 'म' 'व' में परिवर्तित होता है और निरनुनासिक बना रहता है। इन दोनों स्थितियों में अर्थात् 'व' चाहे 'व' रहे अथवा वं कभी कभी संज्ञा के प्रथम व्यंजन का स्वर सानुनासिक होता है। कुछ शब्दों में अनुनासिकीकरण नहीं भी होता। एक ही लेखक दोनों प्रकार के शब्दों का व्यवहार करता है। दक्खिनी में इस प्रकार के उदाहरण—

(पद के अन्त में) तू रूह है ससि नांवं (इ ना) (नांवँ<नामन्)

,, तिस नांवं सो अली है (अली)

,, पन कला थे पकड़े ठावं (इ ना) (ठांवँ<धामन्)

,, कंवल चन्दर के रश्कों सूं (अली) (कँवल<कमल)

(४) ऊष्म वर्ण से पूर्व स्वर को अनुनासिक करने की प्रवृत्ति पाई जाती है—

गर आग कूँ घाँस बाग कू मास (मन) (घाँस<घास)

उम्मीद की बरसांत का झड़ पर (कु क़ु) (बरसांत<बरसात)

(५) कुछ शब्दों में दीर्घ ईकार को शब्द के मध्य में अनुनासिक उच्चरित किया जाता है—

अपस ते बींज ना माटी मिलाती (फूल) (बींज<बीज)

(६) कुछ शब्दों में अनुस्वार का आगम होता है—

पंते पंत तीनों कंथे खोलते (कु मु) (कंथा<कथा)

(७) फ़ारसी 'अनुस्वार' का अनुनासिकीकरण—

यह है गूंगे केरी धात (इना) (गूंगा<गुंग)

(८) फ़ारसी अनुनासिकत्व = द० अनुनासिकत्व—

उनों कूं नई कते ज़बांवर. . . (सब)

इस बात ते पैलाड़ बेचूं बेचुगूं. . . (सब)

(९) अनुनासिक लोप—आ भा आ से प्राप्त 'स' के पश्चात् आनेवाला अनुस्वार कुछ शब्दों में लुप्त होता है—

दिसे सपूरन हर एक धात (इना) (सपूरन<संपूर्ण)

सिहासन बिछा बैठ दक्खन धरन (इना) (सिहासन<सिंहासन)

कुछ शब्दों में 'स' से पूर्व तत्सम शब्दों में मूल अनुस्वार का लोप होता है—आग कूं घांस बाग कूं मास (मन) (मास<मांस)

(११) स्थान परिवर्तन—कुछ शब्दों में मूल अनुस्वार पूर्व व्यंजन के साथ जुड़ता है। के ज्यूं धरते हैं पुंगड्यां पो मां-बाप (फूल) (पुंगडा<पौगंड)

अन्तस्थ

१२१. य—(१) पूर्वी हिन्दी, पंजाबी और उड़िया में "य" "ज" में परिवर्तित होता है। पश्चिमी हिन्दी में 'य' का यह रूपान्तर थोड़े से शब्दों में मिलता है। मराठी, गुजराती और सिन्धी में इस प्रकार की प्रवृत्ति बहुत कम है। पूर्वी प्रभाव से वेद-मंत्रों तक में 'य' के स्थान पर 'ज' का उच्चारण पुराने समय से प्रचलित है। दक्खिनी में जो शब्द पूर्वी हिन्दी से आये हैं, उनमें 'य' के स्थान पर 'ज' उच्चरित होता है, किन्तु सामान्यतया 'य' के स्थान पर 'य' और "ज" के स्थान पर 'ज' का उच्चारण किया जाता है। दक्खिनी में मूल 'य' का प्रयोग बहुत कम हुआ है। श्रुति के रूप में 'य' का उपयोग होता है। तत्सम अथवा तद्भव शब्दों में 'य' आरंभ में नहीं आता। 'य' का विकासक्रम निम्न प्रकार है—

(मध्य) पन अकास का बियंगा जाने (सु स) (बियंगा<वियद्ग)।

(अन्त) इमामां मया है मुहम्मद कुतुब पर (कु. कु) (मया<माया=प्रेम)

सुख है तो नजर अपस मया की (मन)

(२) अ फ़ा 'य' = य

(आरंभ) अजल ते जोड़ हो अक्सर बनी है तुज सुं मुज यारी

(मध्य) . . . मुमकिन का मुशाहिदा क़ायम करना (मे आ)

(अन्त) ज़ाहिर ख़ुदा का साया कतै (सब)

१२२. र-आ भा आ की अन्तस्थ ध्वनियों में 'र' की गणना की जाती है। द्रविड़ भाषाओं में पहले 'र' विद्यमान नहीं था। संस्कृत के तत्सम शब्दों में इस ध्वनि का उपयोग किया जाता है, और जब कभी आ भा आ का 'र' तमिल में उच्चारित होता है तो उसके पहले 'इ' अथवा 'उ' जोड़ देते हैं। तमिल में आ भा आ के 'र' का अभाव है, किन्तु उसमें 'र' की दो अन्य ध्वनियां

विद्यमान हैं, जिनका उच्चारण अपेक्षाकृत कठोर होता है। र का उच्चारण ड़ से मिलता-जुलता-होता है। तेलुगु और कन्नड़ में कठोर 'र' का उच्चारण लगभग समाप्त हो चुका है। तेलुगु में कठोर 'र' के स्थान पर 'ड़' और कन्नड़ में 'ळ' उच्चरित होता है। आधुनिक तमिल में 'र' को कोमल बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में 'र' तथा 'ल' से मिलती-जुलती स्थिति द्रविड भाषाओं के 'र' और 'ल' की है। काल्डवेल के विचार में 'र' 'ल' की अपेक्षा अधिक प्राचीन ध्वनि है।[1] द्रविड भाषाओं में प्रयुक्त 'कार' (काला) शब्द संस्कृत के काल (काला) शब्द से प्राचीन है। सीथियन भाषाओं में 'कार' का अर्थ काला होता है। इसकी पुष्टि में 'कृष्ण' शब्द उद्धृत किया गया है। काल्डवेल के विचार में 'कृ' द्रविड 'कार' से उद्भूत है। तमिल तथा मलयालम में कई स्थलों पर 'र' के स्थान पर 'ल' उच्चरित होता है। यह परिवर्तन प्रारंभिक अक्षर में भी देखा जाता है—जैसे सं० रक्षी=त०-लच्छी।[1] इसी तरह द्रविड़ भाषाओं में 'ल' 'र' में भी परिवर्तित होता है। तुलु में अन्तिम 'ल' का उच्चारण 'र' किया जाता है। मध्य एसिया की अनेक भाषाओं में 'ल' के स्थान पर 'र' का उच्चारण होता है। ज़ेन्द में 'ल' नहीं था, उसके स्थान पर 'र' का प्रयोग किया जाता था। जहां तक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का प्रश्न है, अवध से लेकर बंगाल तक 'ल' के स्थान पर 'र' बोला जाता है। सिन्धी में आरंभिक ही नहीं शब्द में अन्यत्र भी 'ल' 'र' बनता है। म भा आ में महाराष्ट्री को छोड़ कर सभी प्राकृतों में 'र' 'ल' बन गया।[2] वैसे यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी पाई जाती है। संस्कृत के अनेक शब्दों में 'र' के स्थान पर 'ल' और 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग हुआ है।

दक्खिनी में "र" के स्थान पर "ल" का उच्चारण नहीं किया जाता। "ल" और "र" का स्थान सुरक्षित है, किन्तु कई शब्द ऐसे हैं जो "ल" के "र" में परिवर्तित होने का परिचय देते हैं। "र" का विकासक्रम इस प्रकार है—

(१) आ भा आ से प्राप्त मूल "र"—

(आदि) भास अभास, रंग ना रूप (इना)
बिसर राजमारग पड़े दूर आह (अना)
ये रूप तेरा रत्ती रत्ती है (मन)

(मध्य) तब कहां दिसता वही सरूप (इना)

(अन्त) सरग मर्त्त पाताल हर यक धरा (इब्रा)

स्वरभक्ति रहित आ भा आ का स्वरहीन "र"—
कोई कर्त्ता है कर मानू भी (इना)

(२) अफ़ा से प्राप्त र=र

(आदि) रहमत कर चुक मेरे धीर (इना)

(मध्य) दूसरा बाब तरीक़त... (शम क़ु)

---

१. काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ५६।,
२. हार्नली—क० ग्रा० गौ० § १६, पृ० १६।

जरी किसवत सरापा कर सुरज. . . (अली)

(अन्त) गडरे पर अबीर लादे या सन्दल. . . (मे आ)

कभीं मिनक़ार सूं कलियां ढंडोले (फूल)

(मिनकार=चोंच)।

अ फ़ा का स्वर रहित "र"—

अंब के ज़र्फ से सनअत (अली)

(३) आ भा आ—ऋ>र

अम्रत के बजाय बिक हुआ है (इना) (अम्रत>अमृत)

बिन रुत आये हैं बार (सब) (रुत<ऋतु)

(४) ड़>र—पूर्वी हिन्दी में "ड़" "र" में परिवर्तित होता है। ब्रजभाषा में भी इस प्रकार का परिवर्तन विद्यमान है। दक्खिनी में "ड़" का उच्चारण "ड़" किया जाता है, किन्तु कुछ शब्दों में उसका रूपान्तर "र्" में भी होता है—

(मध्य) यू खरग है अज़दहा की ज़बान (गुल) (खरग<खड़ग<खड्ग)

(अन्त) बदल जूरे में केवरे फंकड्यां झमकाव (कु० क़ु)

(जूरा<जूड़ा। केवरा<केवड़ा)

(५) ल>र—आ भा आ के अन्तिम दिनों में कुछ क्षेत्रों में "र" के स्थान पर "ल" का और कुछ क्षेत्रों में "ल" के स्थान पर "र" का उच्चारण होने लगा था। मागधी को छोड़ कर शेष प्राकृतों में "ल" "र" में परिवर्तित हुआ।[1] ब्रज भाषा में "ल" के स्थान पर "र" का प्रयोग बहुलता से होता है।[2] सिन्धी में भी यही प्रवृत्ति है। दक्खिनी में खड़ी बोली की तरह "र" और "ल" का भेद यथोचित रूप से विद्यमान है। जो शब्द ब्रजभाषा से आये हैं उनमें इस प्रकार का उच्चारण होता है:—

जूं के हलद चूने के ठार (इना) (ठार<स्थल)

तरवार तेरे हात की. . . (अली) (तरवार<तलवार)

टुक अपने दिल के लहू सूं वां निकारूं (निकारूं<निकालूं)

१२३. ल्—भाषा वैज्ञानिकों का यह मत है कि प्राचीन आर्यभाषा में दन्त्य वर्ण नहीं थे। जब आर्यों का संपर्क अन्य भाषाओं से हुआ तो उन्होंने दन्त्य ध्वनियों का समावेश अपनी भाषा में किया। भारतप्रवेश के पश्चात् भारतीय आर्यभाषा ने दन्त्य ध्वनियों को स्वीकार कर के भी अपनी मूर्द्धन्य ध्वनियों का परित्याग नहीं किया, जैसा कि आदि आर्य-भाषा की कई शाखाओं ने यूरोप तथा एसिया में किया है। यद्यपि भारतीय आर्य भाषाओं ने दन्त्य तथा मूर्द्धन्य दोनों प्रकार की ध्वनियों का यथोचित उपयोग किया है, फिर भी कई कारणों से कहीं दन्त्य वर्ण के स्थान पर मूर्द्धन्य तथा मूर्द्धन्य वर्ण के स्थान पर दन्त्य वर्ण का प्रयोग किया जाता है। मूर्द्धन्य अथवा दन्त्य

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० § १.२५५।

२. धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा § १०९, पृ० ४४।

का विकल्प बना रहता है। कुछ भारतीय आर्य भाषाओं में दन्त्यवर्णों की प्रधानता स्थापित हुई और कुछ में मूर्द्धन्य ध्वनियां अपरिवर्तित बनी रहीं। मूर्द्धन्य ध्वनियों का "ल" में रूपान्तर इस सिद्धान्त को पुष्ट करता है। तलाब (तडाग), चेला (चेटक) आदि हिन्दी के शब्द इस बात के उदाहरण हैं। "र" और "ल" का अभेद भी मूर्द्धन्य वर्णों के दन्तीकरण का साक्षी है और "ल" को "ळ" में परिवर्तित करने की प्रक्रिया दन्त्य ध्वनियों को मूर्द्धन्य बनाने की ओर संकेत करती है। उड़िया और गुजराती में "ळ" तथा "ल" का भेद स्पष्ट नहीं है। कई स्थलों पर इन दोनों वर्णों को लेकर लेखक को सन्देह बना रहता है। पंजाबी में इस प्रकार के सन्देह के लिए कोई कारण शेष नहीं रह गया है।

दक्खिनी में "ल" का विकास क्रम इस प्रकार है—

(१) आ भा आ से प्राप्त "ल"—

(आदि) मन के लोचन अन्तर छेद (इ ना)

(मध्य) है जैसा बालक भाव (इ ना)

(अन्त) अचला उपर तल पांव के थिर नहीं रखते कधीं (अली)

(२) अ फ़ा "ल"="ल"

(आदि) इश्क़ की बेटी लताफ़त की बीबी. . . (सब)

(मध्य) पैग़म्बर. . .कहे सो मालूम करना (मे आ)

(अन्त) जिक्रे ख़फ़ी के महल में. . . (मे आ)

१२४. व—अन्तस्थ व्यंजन "व" आ भा आ के उत्तरार्द्ध में कुछ क्षेत्रों में "ब" उच्चरित होने लगा था, जिससे उस क्षेत्र में "व" "ब" का अभेद स्वीकार किया गया। नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में इस ध्वनि के सम्बन्ध में दो भिन्न परम्पराएं दिखाई देती हैं। कुछ में "व" और "ब" का भेद शेष नहीं है। शब्द के आरंभिक "व" को प्रायः "ब" उच्चरित करते हैं और मध्य तथा अन्तिम "व" पर भी कई स्थलों पर यह प्रभाव लक्षित होता है। दूसरे वर्ग में वे भाषाएं आती हैं जिनमें "व" और "ब" का भेद विद्यमान है। पूरबी हिन्दी में आरंभिक "व" के स्थान पर सर्वत्र "ब" उच्चरित होता है। पश्चिमी हिन्दी भी बहुत अंशों में पूर्वी हिन्दी का अनुसरण करती है। मागधी प्राकृत से उद्भूत आधुनिक भाषाओं में "व" का "ब" उच्चारण प्रचलित है। दूसरी ओर गुजराती, मराठी तथा पंजाबी है जो, इन दोनों व्यंजनों का भेद बनाये हुए हैं।[१] डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने अशोक के गिरनार स्थित शिलालेख से कुछ शब्द उद्धृत किये हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शती में "व" का उच्चारण कुछ क्षेत्रों में "ब" किया जाने लगा था।[२]

दक्खिनी में जो शब्द पूर्वी हिन्दी से पहुंचे हैं, उनके आरंभिक "व" का उच्चारण "ब" किया जाता है, किन्तु शब्द के मध्य और अन्त में स्थित "व" का उच्चारण सामान्यतया "व" ही

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ७९, पृ० १६८।

२. चटर्जी—ओ० डे० बें० § १३३, पृ० २५०।

होता है। दक्खिनी की मूल प्रवृत्ति "व" और "ब" के अन्तर को बनाये रखने की है। यह अन्तर मराठी के प्रभाव का द्योतक है, जिसमें कुछ अपवादों को छोड़ कर दोनों ध्वनियां उचित रूपसे सुरक्षित हैं।[१]

(१) आ भा आ से प्राप्त "व"—

(आदि) भले–बुरे का कैसा वाद (इ ना)

...पूरी विपता सुनाई। (क स पा) (विपता<विपत्ति)

(मध्य) मन इश्क़ में पावक हुआ दिल की अंगेठी पूर कर (अली)

(अन्त) तेरे तन में यू जीव सब ठार है (न ना)

(२) अ फ़ा "व"=द० "व"—

(आदि) वसवास के नक सूं बदबूई ना लेना सो (मे आ)

(मध्य) हवासे खमसा मुमकिन के आंक सूं...(मे आ)

(अन्त) ...इबलीस कूं रुसवा किया। (अली)

(३) अ फ़ा "उ">"व"—

बख्तां के आप अपने वस्ताद थे कतें रे (ख़तीब)

(वस्ताद<उस्ताद)।

(४) आ भा आ "द">"व"—प्राकृत के कुछ शब्दों में यह परिवर्तन दिखाई देता है।[२] दक्खिनी का निम्न उदाहरण इस परिवर्तन का परिचायक है—

है दुक-सुक केरा भेवक (इ ना) (भेवक<भेदक)

(५) आ भा आ "प">"व"—प्राकृतों में स्वर के पश्चात् आने वाले मध्य और अन्त के "प" का उच्चारण "व" किया जाता था।[३]

दक्खिनी में इस परिवर्तन के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(मध्य) लब के किवाडां लगा...(इ ना) (किवाड़<कपाट)

(अन्त) इसमें अछे दीवां...(इ ना) (दीवा<दीपक)

(६) आ भा आ के पदान्त का "मन्" "वँ" में परिवर्तित होता है। परवर्ती युग में "व" का अनुनासिकत्व क्षीण होता गया। शब्द के मध्य तथा अन्त में जब "म" "व" का रूप लेता है तो निरनुनासिक रहता है तथा क्षतिपूर्ति के रूप में "व" से पूर्व का स्वर सानुनासिक बन जाता है—

---

१. जूल ब्लाक—ला० फो० लें० म० § १५०, पृ० १९०।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२४४।
वररुचि—प्रा० प्र० २.१५।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२३१।
वररुचि—प्रा० प्र० २.१५।

तू रूह है ससि नाँवँ (इ ना) (नाँवँ<नामन्)
बेशक भँवर हो नित फिरे... (अली) (भँवर<भ्रमर)
नैन के दो कँवल मुख मूंद लेने (फूल) (कँवल<कमल)
रहे नाँव हर दौर के जमा का (गुल) (नाँव<नामन्)

(७) आ भा आ "य्" > "व्"—
ना दो का न्याव न्यारे तोय (इ ना) (न्याव<न्याय)
इश्क़ का न्याव हुआ... (सब)
ज्यूं पानी बाव समाय (इ ना) (बाव<वायु (?))

(८) आ भा आ "य">वं—शब्दान्त के "मन्>वँ" का अनुकरण—
के जिस छावँ... (गुल) (छावँ<छाया)

१२५. श्—(१) संस्कृत "श" प्राकृतों में "स्" में परिवर्तित हुआ। पश्चिमी हिन्दी में तत्सम शब्दों में "श" अपरिवर्तित रहता है, किन्तु वह तद्भव और देशज शब्दों में प्राकृत की "स" वाली प्रवृत्ति अपनाता है। दक्खिनी में आ भा आ का "श" शेष नहीं रह गया है। जहां-जहां "श" प्रयुक्त होता था, दक्खिनी में उसके स्थान पर म भा आ में परिवर्तित रूप "स्" का प्रयोग किया जाता है।

द्रविड भाषाओं में "श" का "स" उच्चारण किया जाता है, "स" "श" में विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता।

(आदि) शुक्र हक़ का जो धरे ऐसा इमाम (वली)
(मध्य) सरवरे ख़ातिम शहे जिन्नो बशर (वली)
(अन्त) सारे अंगूर की बेलां ये पके यूं खोशे (अली)
(३) अ फ़ा "स"> "श"—
उनो क्या मा, तशफिया करतें (क नौ हा) (तशफिया<तसफ़िया)।

१२६. ष—आ भा आ का "ष्" म भा आ काल में स तथा ह में परिवर्तित होकर निश्शेष हो गया।[1] न भा आ के कुछ शब्दों में "ष" "ख" उच्चरित होता है। हिन्दी भाषी संस्कृत के तत्सम शब्दों में इसका उच्चारण तालव्य "श" करते हैं।[2] दक्खिनी ने अपनी शब्दावली मुख्य रूप से म भा आ तथा आरंभिक न भा आ से प्राप्त की है, अतः उसमें "ष" का सर्वथा अभाव है। फ़ारसी लिपि में "ष" के लिए पृथक् चिह्न नहीं है। अतः हिन्दी की तरह लेखन में यह ध्वनि सुरक्षित नहीं है। दक्खिनी साहित्य में एक उदाहरण ऐसा मिला है, जिसमें मूर्द्धन्य "ष्" सुरक्षित प्रतीत होता है, यद्यपि उसे लेखक ने "श्" ही लिखा है—

जूं काष्ट कूं घुन बिड़ाने तुज कूं (मन) (काष्ट<काष्ठ)

---

१. **हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२६०, १.२६२।**
वररुचि—प्रा० प्र० २.४३।

२. **हार्नली—कं० ग्रा० गौ० §२०, पृ० २५।**

आ भा आ का "ष्" निम्नलिखित व्यंजनों में रूपान्तरित हुआ—

(१) ष्>क—आ भा आ का "ष" आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के प्रारंभिक काल में "ख" उच्चरित होने लगा। दक्खिनी में सर्वत्र "ष" के स्थान पर "क" उपलब्ध होता है। यह दो प्रकार से संभव हुआ होगा—(१) "ष" "ख" में परिवर्तित हुआ जैसा कि राजस्थानी में देखा जाता है और फिर दक्खिनी की अल्पप्राण-प्रवृत्ति के कारण यह "ख" "क" में परिवर्तित हुआ। यह भी संभव है कि दक्खिनी ने आरंभ से ही "ष" को सीधे "क" के रूप में स्वीकार किया हो—

बरक बिन फल व फूलां न... (अली) (बरक<वर्षा)

मुंज भूकन पिन्हाओ मत (अली) (भूकन<भूषण)

(२) ष्<स्

खाकी रच्या वैसा मूस (इ ना) (मूस<मूष)

(३) ष>स>ह—

या के पुहुप बस ज्यूं बास (इ ना) (पुहुप<पुष्प)

१२७. स—(१) आ भा आ से प्राप्त "स"—

कुछ भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि अन्य दन्त्य ध्वनियों की भांति "स्" भी भारतीय आर्य भाषा ने आर्यों के भारत प्रवेश के पश्चात् स्वीकार किया। संस्कृत में दन्त्य "स्" सन्धि नियमों के अनुसार "विसर्ग" तथा "श्" में और "श्" "ष्" में परिवर्तित होता रहा। इसके विपरीत म भा आ और न भा आ में मूर्द्धन्य तथा तालव्य "श" "स" में परिवर्तित होता रहा, जो मूर्द्धन्य वर्णों के दन्तीकरण की प्रवृत्ति का परिचायक है। "ष" तथा "श" के "स" में परिवर्तन की प्रक्रिया इस बात का प्रमाण है कि म भा आ और न भा आ में आर्येतर भाषाओं का प्रभाव प्रतिफलित होता रहा। दक्खिनी में आ भा आ से प्राप्त "स्" के उदाहरण—

(आदि) उसी च जन में सुधन अमोली... (अली)

(मध्य) फड फड पुस्तक भूले बाट (इ ना) (सुधन<सुधन्या)

(अन्त्य) कोई सन्यासी दिगम्बरधारी (इना) (सन्यासी=संन्यासी)

(२) अ फ़ा "स" (से, सीन और स्वाद)=स—

अरबी में – स, सीन तथा स्वाद भिन्न भिन्न ध्वनियों के द्योतक हैं। भारतीय भाषाओं ने अ फ़ा के शब्दों को ग्रहण करते समय इन तीनों ध्वनियों के लिए केवल "स" का प्रयोग किया जो उच्चारण में आ भा आ के "स" से बहुत साम्य रखता था। उर्दू में यद्यपि लिखते समय तीनों ध्वनियों के लिए पृथक् पृथक् चिह्नों का उपयोग किया जाता है, किन्तु उच्चारण करते समय तीनों में अन्तर शेष नहीं रहता।

अरबी में "से" तथा "सीन" दन्त्य माने जाते हैं। दोनों में जीभ की नोक ऊपरी दांतों का स्पर्श करती है। इन दोनों ध्वनियों का अन्तर इतना ही है कि "से" का उच्चारण करते समय जीभ ऊपरी दंतपंक्ति की ओर अग्रसर होती है तथा वायु अपेक्षाकृत अधिक घर्षण करती है जबकि "सीन" के उच्चारण में जीभ पीछे रहती है। बाह्य प्रयत्न की दृष्टि से "स्वाद" तथा "से" और "सीन" में अधिक अन्तर है। जीभ की नोक से वर्त्स्य का और जीभ के पिछले भाग से कोमल तालु का

स्पर्श करके "स्वाद" का उच्चारण किया जाता है। उच्चारण काल में जीभ और दांतों के बीच से घर्षण करती हुई वायु निस्सरित होती है, होंठ किंचित सिकुड़ते हैं[1]।

फ़ारसी की मूल ध्वनि "स्" (सीन) है। "से" तथा "स्वाद" अरबी शब्दावली के साथ फ़ारसी में पहुंचे। फ़ारसी में लेखन के समय "से" और "स्वाद" के लिए पृथक् पृथक् चिह्न हैं, किन्तु दोनों का उच्चारण "स" (सीन) किया जाता है।[2] उल्लेखनीय बात यह है कि अरबी में से, सीन और स्वाद के कारण ध्वनि में ही नहीं अर्थ में भी अन्तर पड़ता है। यह अर्थभेद तत्सम शब्दों में फ़ारसी में भी सुरक्षित है, किन्तु उच्चारण-भेद सुरक्षित नहीं रहा। दक्खिनी में से, सीन, स्वाद="स" के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

दिसे आसार खुश्की के सरासर (फूल)

सबा के हात उस टुकड़े गिरावे (फूल) (आसार—स=से, सरासर—स=सीन, सबा—स=स्वाद)।

(३) आ भा आ "श">"स"—म भा आ में इस परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[3] निम्नलिखित उदाहरणों से दक्खिनी के परिवर्तन का परिचय मिलता है—

(आदि) तू रूह है ससि नांव (इना) (ससि<शशि)

सब सुन अकार बसता होय (इना) (सुन<शून्य)

पगल्या ऊपर राख्या सीस (इना) (सीस<शीश)

(मध्य) दसन कूं क्यूं कहूँ . . . (फूल) (दसन<दशन)

(अन्त) जूं उस सरवर मोती आस (इना) (आस<आशा)

(४) आ भा आ "ष" > "स"

. . . बिस निस झड़े (इब्रा) (बिस<विष)

(५) अ फ़ा "श" (शीन)>स—

(आदि) कोई सरीक है दूजा कस (इना) (सरीक<शरीक)

(अन्त) रहे बेख़बर होस फिर (इब्रा) (होस<होश)

१२८. ह—आ भा आ की मूल ध्वनि "ह" के कारण न भा आ में उच्चारण सम्बन्धी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, उनमें से कुछ का उल्लेख महाप्राण ध्वनियों के साथ किया जा चुका है। प्राचीन द्रविड भाषा में यह ध्वनि नहीं थी। संस्कृत शब्दावली के कारण द्रविड़ भाषाओं में "ह" का समावेश हुआ। तमिल में "ह" के लिए पृथक् लिपि-चिह्न नहीं है। तेलुगु और कन्नड लिपि में "ह" के लिखने की व्यवस्था है। "ह" के कारण राजस्थानी और गुजराती में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। राजस्थानी में "ह" स्थानान्तरित होकर पूर्वस्थ व्यंजन में विलीन होता है जिसके कारण

---

१. गेर्डनर—दा फोनेटिक्स आफ़ अरेबिक, पृ० २१।

२. फिल्लट—हाइयर पर्शियन ग्रामर, पृ० १४, १५।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० §१.२६०।

वररुचि—प्रा० प्र० §२.४३।

पूर्वस्थ अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण में परिणत होता है और ध्वनि में कंठनालीय स्पर्श उत्पन्न होता है। पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी में आ भा आ तथा म भा आ से प्राप्त "ह्" का ठीक ठीक उच्चारण होता है। पंजाबी में "ह्" के कारण पूर्वापर ध्वनि में वलन-सा उत्पन्न होता है। दक्खिनी इस विषय में पूर्वी हिन्दी तथा पश्चिमी हिन्दी से सर्वथा भिन्न है। उसमें सभी स्थानों पर "ह्" सुरक्षित नहीं रहता। पंजाबी की भांति दक्खिनी में "ह्" के अन्तर्भाव के कारण स्वर में वलन उत्पन्न नहीं होता। राजस्थानी तथा दक्खिनी में "ह्" के विषय में बहुत साम्य है।

(१) आ भा आ से प्राप्त मूल "ह्" के उदाहरण—

(आदि) ना नाव न टोकरा न होडी (मन)

(होडी (सं)=नौका, छोटी नौका, समुद्र में तैरनेवाली नाव-वाचस्पत्यम्)।

(मध्य) सिहासन बिछा बैठ दक्खन धरन (इब्रा) (सिहासन<सिंहासन)

(अन्त) ना उस रूप ना उस देह (खु ना)

१२९. अ फ़ा "ह्" और "ह्" (हे—हाय हुत्ती, हे—हाय हव्वज़) के उच्चारण में अन्तर है। ह (हाय हुत्ती) का उच्चारण प्रतिजिह्वा से नीचे और कंठनाल से ऊपर घर्षण के साथ होता है, अतः यह प्रतिजिह्वित संघर्षी व्यंजन है। "ह्" (हाय हव्वज़) का उच्चारण-स्थान अलिजिह्वीय है।

फारसी में अरबी के "ह्" (हाय हुत्ती) का उच्चारण प्रतिजिह्वित और संघर्षी न होकर आ भा आ के "ह्" से मिलता-जुलता है। प्रतिजिह्वित और अलिजिह्वित "ह्" के उच्चारण में फ़ारसी में कोई अन्तर नहीं है, यद्यपि लिखते समय दोनों के लिए भिन्न भिन्न चिह्नों का उपयोग किया जाता है।

दक्खिनी में इन दोनों हकारों में उच्चारण का अन्तर नहीं है। आ भा आ तथा म भा आ के "ह्" के समान इनका उच्चारण होता है।

(आदि ह–हायहुत्ती)	हक़ की हक़ायक की बूज सब तो हमन कूं कहां ?	(अली)
(मध्य–ह—")	सट्या बुलबुल पो बेरहमी सेती हात	(फूल)
	पौन बिन नई है मेरा कोई महरम	(फूल)
(अन्त–ह् ")	सुवह उठ यूं लग्या करने कूं आरी	(फूल)
(आदि-हाय हव्वज़)	हरयक निस जाऊं उस धन की गली कूं	(फूल)
(मध्य–हाय हव्वज़")	अथा मशहूर सालम बन्दरां में	(फूल)
(अन्त " ")	शिकारी शह कूं आ तसलीम कीता	(फूल)

(३) अ>ह

सो हैबत थे दंदे तन मन हदरता (कु० कु) (हदरता<अधरता)

वां कोठरी में भौत हँदेरा था। (टे० रि० हैद०) (हँदेरा<अंधेरा)

(४) उ>अ (विपर्यय) ओ, ह (श्रुति)

न मेग मेहूं न होला (मन) (होला<उअल<उपल)

(५) महाप्राण व्यंजन ह्--म भा आ में संस्कृत के महाप्राण व्यंजनों में अनेक परिवर्तन हुए, जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जा चुका है। कई शब्दों में महाप्राण व्यंजन का स्थान हकार लेता है। हेमचन्द्र ने स्वर के पश्चात्, ख, घ, थ, ध और भ के "ह्" में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है।[1] एक शब्द में "ठ" को विकल्प से "ह्" आदेश होता है।[2] स्वर के पश्चात् "फ्" का विकल्प से "ह्" में परिवर्तन होता है।[3] वररुचि ने "ठ" तथा "फ" को छोड़कर अन्य महाप्राण व्यंजनों की "ह्" में परिणति का उल्लेख किया है।[4] दक्खिनी में सामान्य प्रवृत्ति शब्द के मध्य और अन्त में स्थित महाप्राण को अल्पप्राण में परिवर्तित करने की है, किन्तु म भा आ से प्राप्त शब्दों में महाप्राण के स्थान पर "ह्" शेष रहता है—

ख > ह्— बुरे कामते मुंह... (न ना) (मुंह<मुख)

घ > ह्— पहली घड़ी सांति के मेह मोत्यां—(कु० कु)
(मेह्<मेघ)।

ध > ह्— जड़त मानिक बहूट्यां (कु० कु०) (बहूटी<वधूटी)।

भ > ह्— कहे मुंझ सीर सुहाग अल्ला का (खुना)
सुहागाँ का गलसर... (कु० कु)
सूनार सोहागन बनाया (क नौ हा)
(सोहागन—सौभाग्य+अन)।

ष < ह्— इस प्रकार का परिवर्तन प्राकृत में भी मिलता है।[5] दक्खिनी का उदाहरण—
पुष्प या के पुहुप असे ज्यूं बास (इना) (पुहुप<पुष्प)

दक्खिनी में छ, झ, और ढ और फ, "ह्" में परिवर्तित नहीं होते। शब्दान्त में इन महाप्राण व्यंजनों का स्थान अल्पप्राण व्यंजन लेते हैं।

१३०. विसर्ग--संस्कृत की कण्ठस्थानीय विसर्ग-ध्वनि म भा आ में लुप्त हो गई। दक्खिनी में, हिन्दी की अन्य बोलियों के अनुसार विसर्ग-ध्वनि शब्द को प्रभावित किये बिना लुप्त हो जाती है—

मैं सब पर अछूं निसंग (इना) (निसंग<निःसंग)

जूं उस सरवर मोती आस (इना) (सरवर<सरोवर<सरः+वर)

सुक का सरवर शाह मीरांजी अन्तकरन ले माने (खुना) (अन्तकरन<अन्तःकरण)

कहीं विसर्ग लोप के कारण पूर्व स्वर दीर्घ होता है—

ये दूक उसकूं (इ ना) (दूक<दुःख)।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.१८०।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२०१।
३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२३६।
४. वररुचि—प्रा० प्र० २.२७।
५. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२६२।

उत्क्षिप्त व्यंजन

१३१. उत्क्षिप्त व्यंजन "ड़" और "ढ़" संस्कृत में नहीं थे। इन ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए भारतीय भाषाओं में स्वतंत्र लिपि-चिह्न भी नहीं हैं। अरबी और फ़ारसी में भी ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं। जब हिन्दी के लिए फ़ारसी लिपि को परिवर्धित किया गया तो उसमें "ड़" लिपिचिह्न की वृद्धि हुई। "ड़" के महाप्राण उच्चारण के रूप में "ढ़" अस्तित्व में आया।

कुछ भाषा वैज्ञानिकों के विचार से द्रविड भाषाओं में मूलतः तथा मराठी आदि आर्य-भाषाओं में वाह्य प्रभावों के कारण जो "ळ" प्रचलित है, उसके परिवर्तित रूप में नव्य भारतीय आर्यभाषाओं को "ड़" औ "ढ़" प्राप्त हुए। भारतीय भाषाओं में "ळ", ल, र और ड़ एक दूसरे में इतने अधिक परिवर्तित होते हैं कि चारों वर्ण एक ही ध्वनि के रूपान्तर ज्ञात होते हैं।[1] जूल-ब्लाक "ळ" को "ल" का रूपान्तर मानते हैं। उनके विचार में दो स्वरों के मध्य जब "ल" आता है तो वह "ळ" में परिवर्तित होता है। "ल" और "ळ" के आधार पर देश को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। सिन्धु नदी के दक्षिणी छोर से श्रीलंका तक शब्दान्त के "ल" के स्थान पर प्रायः "ळ" होता है। दूसरा क्षेत्र वायव्य दिशा में काश्मीर से प्रारंभ होकर गंगा के कछार तक पहुंचता है। वायव्य दिशा की अन्तिम सीमा में स्थित डोंगरी से लेकर गंगा कछार की हिन्दी तक जो भाषाएं पड़ती हैं, उनमें "ळ" प्रयुक्त नहीं होता। इन भाषाओं में "ल" प्रयुक्त होता है। प्राकृतों में भी दो स्वरों के मध्य में आनेवाला "ल" "ळ" नहीं बनता। मराठी में "ळ" का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस भाषा में "ड" के स्थान पर ड़ और ळ उच्चरित होते हैं।[2]

जूल ब्लाक के इस मत के विपरीत कई भाषा वैज्ञानिक "ळ" को "ल" का परिवर्तन न मान कर इसे विशेष ध्वनि के रूप में स्वीकार करते हैं। यद्यपि "ळ" से कोई शब्द द्रविड भाषाओं में भी प्रारंभ नहीं होता किन्तु इससे "ळ" के अस्तित्व में सन्देह नहीं किया जा सकता। भाषा-वैज्ञानिक वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त "ड़" स्थानीय "ळ" को आर्येतर भाषाओं का परिणाम मानते हैं। उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य में यह ध्वनि प्रयुक्त नहीं हुई। द्रविड परिवार की भाषाओं में "ळ" का प्रयोग बहुत हुआ है। मध्यप्रदेश की कोल परिवार की भाषाओं में भी यह ध्वनि विद्यमान है। भारतीय आर्य भाषाओं में मराठी तथा उड़िया में "ळ" का प्रचलन अधिक है। इसका एकमात्र कारण यह हो सकता है कि इन दोनों का सम्पर्क द्रविड भाषाओं से अधिक रहा है।[3] इन दोनों ने "ळ" के सम्बन्ध में द्रविड प्रभाव इतनी अधिक मात्रा में स्वीकार किया है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों में भी "ल" "ळ" का रूप ले लेता है। आर्यभाषाओं में मराठी तथा उडिया के पश्चात् राजस्थानी का नाम लिया जा सकता है, जिसमें "ळ" का उपयोग किया जाता है।

सभी द्रविड भाषाओं में "ळ" विद्यमान है। तमिल में "ळ" के अतिरिक्त "ड़" भी है

---

१. काल्डवेल—कं० ग्रा० द०, पृ० ५६।
२. जूलब्लाक—ला० फा० लें० म० §१४४, पृ० १८२, १८३।
३. चटर्जी—ओ० ड० बैं० § ८०, § २९२, पृ० १७० और पृ० ५३८।

जो सन्धि नियम के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। तमिल में "ऴ" और "ड़" परस्पर परि-वर्तित होते हैं। इस परिवर्तन में कठोर "र" भी सम्मिलित है। पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी में "ळ" नहीं है। मराठी तथा तेलुगु भाषियों के मध्य में विकसित होनेवाली खड़ी बोली की एक शाखा—दक्खिनी—ने भी इस ध्वनि को स्वीकार नहीं किया। ऊपर जो विवेचन किया गया उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी से सम्बन्धित जिन बोलियों में "ड़" "ढ़" विद्यमान हैं, वे सब "ळ" के प्रभाव को सूचित करती हैं। "ड़" के सम्बन्ध में चार बातें सामने आती हैं।

१. द्रविड़ परिवार की भाषाओं में व्यवहृत "ळ" से सीधे "ड़" का उद्भव हुआ।

२. जिस तरह वैदिक भाषा में "ड" "ळ" में परिवर्तित हुआ उसी तरह हिन्दी में "ड" "ड़" का रूप ग्रहण करता है।

३. आर्येतर भाषाओं में अथवा आर्येतर भाषाओं के प्रभाव से कुछ आर्यभाषाओं में "ल" "ळ" में परिवर्तित होता है, इस परिवर्तन का क्रम हिन्दी में इस प्रकार है—ल>ळ>ड़।

४. द्रविड भाषाओं में "र" तथा "ळ" का परस्पर परिवर्तन होता है। हिन्दी में भी "र" "ल" में अथवा "ल" "र" में परिवर्तित होता हुआ "ड़" में परिणत हुआ। "ळ" द्रविड भाषाओं में शब्द के प्रारंभ में नहीं आता, "ड़" भी शब्द के मध्य में कम किन्तु शब्दान्त में अधिक प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि "र" "ल" का परस्पर परि-वर्तन आर्यभाषाओं से ही सम्बन्धित नहीं है, मध्य एसिया की अनेक भाषाओं और द्रविड भाषाओं से भी इस परिवर्तन का सम्बन्ध है। इस परिवर्तन के साथ "ळ" तथा "ड़" भी संबन्धित हैं।

१३२. ड़—दक्खिनी में महाप्राण के स्थान पर अल्पप्राण व्यंजन के प्रयोग की जो प्रवृत्ति है, उसके कारण "ढ़" प्रायः "ड़" बन जाता है। दक्खिनी में "ड़" मुख्य रूप से ट, ठ, ड और "र" के परिवर्तन से उपलब्ध हुआ है।

१. ड़—(मध्य) जूं भड़का देक अंगार (इना)
(अन्त) उसके फ़हमों नहीं कुछ आड़ा (इना) (आड़<√अड़ना, मरा० √अड़-विणें कन्नड़–अड्ड=अड्ड़)। (गुल)

२. ट>ड़—न खोल किवाड़.... (मन) (किवाड़<कपाट)
, ,, रिया के न किस झाड़ कूं कीड़ ला (गुल) (कीड़<कीट)

३. ड>ड़—जूं गुड़ कियाँ भेल्याँ (मन) (गुड़=मरा० गुळ>गुड़)
,, अपस खत ते अंख्यां में माड़े फ़रेब (अना) (माड़ना<मंडन)

४. ठ>ढ़,=ढ़>ड़—देवे नूर के मय के खंजर कूं बाड़ (बाड़<हि० बाढ़=धार)
जिस देखते कीर दिल में कुड़ जाय (मन) (√कुड़ना<कुढ़ना<कुंठन)।
अतशौक़ सूं हरयक पड़े (अली) (√पढ़ना<पढ़ना<पठन)।

५. र्>ड़—ना घूड़ पछानता न गुलशन। (मन) (घूड<घूर)
,, नरगिस अपस पलक सूं झाड़ू करे शबिस्तां (कु क़ु) (झाड़ू<√झाड़ना<क्षरण)
,, बुरे काम ते मुंह अपस का मड़ोड़ (न ना) (मड़ोड़<√मरोड़ना)।
,, दिसे ताक़ां भवां जूं अछड़िया के (गुल) (अछड़ी<अप्सरा+ई)।

(६) र (फ़ा)>ड़—जड़त तेरा पड़द ला कहकशां (गुल) (पड़द<पर्दा)

(७) ल>ळ>ड़—जड़त तेरा पड़द ला कहकशां (गुल) (जड़त<जळत<जळन< ज्वलन)।

,, ,, — बैठा झड़ ये लाया जाल (इना) (झड़<झळ<ज्वाला)।

१३३. ढ़—ठ>ढ>ढ़—प्राकृतों में "ठ" "ढ" में परिवर्तित होता था। दक्खिनी में शब्दान्त का "ढ" 'ढ़" बनता है। उदा०—

इल्म पढ़ कर नई बूज्या तो... (मे आ) (पढ़ना<पठन)

जिह्वा मूलीय व्यञ्जन

१३४. ख़—१. यह जिह्वामूलीय संघर्षी ध्वनि अ फ़ा के शब्दों के साथ भारतीय भाषाओं में पहुंची। प्रायः तत्सम शब्दों में इस ध्वनि का उपयोग होता है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

(आदि) पानी में बारा, पानी में ख़ाली पांचा अनासिरां... (मे आ)

,, क्या शह उस हुजूरी ते बचन यक ख़ूब कै मुंज ते (फूल)

(मध्य) आख़िर मुल्क सब करेगा ख़राब (सब)

(अन्त) शीशा शराब का यूं दिसता है सुर्ख़ रंग का (अली)

(२) अ फ़ा क़>ख़—दक्खिनी में प्रयुक्त अ–फ़ा के "क़" का सामान्य जनता "ख़" उच्चारण करती है। दक्खिनी प्रदेश के निवासी लिखते समय "क़" तथा "ख़" को पृथक् पृथक् लिखते हैं, किन्तु बोलते समय "क़" का उच्चारण "ख़" करते हैं—

(आदि) हमा ख़िसम की बोली बोलने वाले चुड़ियां बी उड़ने लगे। (क जा फ) (ख़िसम<क़िस्म)।

"येक ख़िले के अन्दरी च पाले पोसे। (क जा फ) (ख़िला<क़िला)।

(मध्य) सच्ची बी हम दोनों बेवख़ूबीच हैं। (क स पा)

(३) अ फ़ा—क्क>ख़

मख़ा आगरा होर सगल पुर्तगाल (कु मु) (मख़ा<मक्का—अरब का नगर)।

(४) म भा आ "क">"ख़"

क्या देखती ये, येक चख़्वा-चख़्वी वो झाड़ के डाली पो बैठे हुए आपस में बातां कर र। (क स पा) (चख़्वा<चकवा<चक्रवाक; चख़्वी < चकवी<चक्रवाकी।)

(५) आ भा आ "क्ष">"ख़"

कई अख़रोट बादाम पिस्ते नफ़ीस (कु० मु) (अख़रोट<अक्षोट)।

१३५. ग़—(ग़ैन) (१) अ फ़ा के तत्सम शब्दों में जिह्वामूलीय संघर्षी ध्वनि "ग़" का प्रयोग होता है। दक्खिनी में इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(आदि) ग़रीबां नवाज़िन्दा ऐ बेनियाज़ (गुल)

(मध्य) मूसा पैग़म्बर रब्बे अरनी बोले ख़ुदा से (मे आ)

(अन्त) यू ग़ोरो यूं च था। (सब)

(२) फ़ा० "ग">ग़—अपठित जन बोलचाल में अरबी के "ग़" के अनुकरण पर फ़ा० के "ग" का उच्चारण कुछ शब्दों में "ग़" करते हैं—

उदा०—एक पाशा था, उसकी बेग़म भोत खपसूरत थी। (बोली)
(बेग़म<बेगम)।

तालव्य संघर्षी

१३६. अ फ़ा–ज़ (ज़ाल, ज़े, ज़े, ज़्वाद और ज़ोय)>ज़

हिन्दी की भांति दक्खिनी में भी अ फ़ा के ज़ाल, ज़े, ज़े और ज़ोय का उच्चारण 'ज़' किया जाता है, यद्यपि ये पांच अक्षर अ फ़ा में भिन्न-भिन्न ध्वनियों के द्योतक हैं। 'ज़े' केवल फ़ारसी में प्रयुक्त होता है। शेष चारों अरबी तथा फ़ारसी दोनों से संबंधित हैं। अरबी में 'ज़' (ज़ाल) का उच्चारण करते समय जीभ का अग्रभाग ऊपरी दंत पंक्ति का स्पर्श करता है और वायु किंचित् घर्षण करती हुई बाहर निकलती है। ज़ (ज़े) के उच्चारण में जिह्वाग्रभाग ऊपरी दन्तपंक्ति के मूल को छूता है और वायु ज़ाल की अपेक्षा अधिक घर्षण करती हुई निकलती है। ज़े (ज़्वाद तथा ज़ोय) के उच्चारण में जीभ की नोंक ऊपरी दन्त पंक्ति के मूल का और पिछला भाग कोमल तालु का स्पर्श करता है। दोनों सघोष वर्ण हैं। ज़्वाद की अपेक्षा ज़ोय में घर्षण अधिक होता है।[1] ज़ोय और ज़्वाद केवल अरबी शब्दों में प्रयुक्त होते हैं जब कि ज़ाल और ज़े अरबी तथा फ़ारसी दोनों में विद्यमान हैं। फ़ारसी में 'द' 'ज़' (ज़ाल) में परिवर्तित होता है। ज़े के स्थान पर फ़ारसी में 'ज़' 'ग़' और 'स' भी उच्चरित होते हैं। ज़्वाद का उच्चारण कुछ भिन्न होता है, किन्तु ज़ोय, ज़ाल और ज़े के उच्चारण में अन्तर नहीं होता। केवल फ़ारसी में 'झ़े' नामक अक्षर विद्यमान है जिसका उच्चारण 'झ़' किया जाता है। यह ध्वनि दक्खिनी में नहीं है। दक्खिनी के लेखक लिखते समय इन वर्णों को ध्यानपूर्वक पृथक-पृथक लिखते हैं किन्तु उच्चारण के समय किसी का भेद लक्षित नहीं होता। दक्खिनी में इन व्यंजनों के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

(१) अ फ़ा 'ज़' (ज़ाल)>ज़—सूरज ज़र्रा तेरे नूर का एक (फूल)
(२) अ फ़ा 'ज़' (ज़े)>'ज़'—अथा बन्दा सो उसका आज़ाद हूँ (फूल)
(३) अ फ़ा 'ज़' (ज़्वाद) ज़—ज़मीर उसका अथा सूरज ते रोशन (फूल)
(४) अ फ़ा 'ज़' (ज़ोय) ज़—करूंगा फूल का बारी नज़ारा (फूल)
(५) अफ़ा 'द' >'ज़'–फ़ारसी में 'द' 'ज़' में परिवर्तित होता है।

यह परिवर्तन दक्खिनी में भी पाया जाता है:

(उदा०) तू चालीस रोज़ में खिज़मत कर को मुजे अपना गुलाम बनाई। (कलाप)
(खिज़मत<खिदमत)

---

१. गेर्डनर—दी फोनेटिक्स आफ़ अरेबिक, पृ० २१।

दन्त्योष्ठ्य संघर्षी

१३७. अ फ़ा 'फ़'—(१) इस ध्वनि का उपयोग अ फ़ा से प्राप्त तत्सम शब्दों में होता है। दक्खिनी में 'फ़' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

(आदि) मुज दिल के मैदान पर जब इश्क़ के फ़ौजां चड़े (अली)
(मध्य) यूं यक नूर भोत सिफ़ात (इ ना)
(अन्त) दिल कुल्फ़ खोल (इब्रा)

(२) अ फ़ा 'ब>' 'फ़'—इस प्रकार का परिवर्तन बोलचाल की भाषा में होता है—"अपनी मुसीफ़त सुनाई" (क ला प) (मुसीफ़त<मुसीबत)

१३८. संस्कृत में एक स्वर की सहायता से एक से अधिक स्वरहीन व्यंजनों का उच्चारण किया जाता है, किन्तु प्राकृतों और प्राकृतों के पश्चात् अपभ्रंश में इस प्रकार के उच्चारण लुप्त हो गये। प्राकृतों में व्यंजन के स्थान पर स्वर-प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक रही। उच्चारण की सुविधा के लिए आ भा आ के संयुक्त व्यंजनों अथवा व्यंजन-युग्मों में निम्नलिखित परिवर्तन मुख्य रूप से दिखाई देते हैं:—

(१) निर्बल व्यंजन अपने साथी सबल व्यंजन में विलीन होता है।

(२) प्रथम निर्बल व्यंजन का, वर्ण-विपर्यय द्वारा द्वितीय स्थान ग्रहण करना और द्वितीय वर्ण का प्रथमाक्षर में परिवर्तन।

(३) संयोगी निर्बल व्यंजन का लोप।

(४) स्वरभक्ति द्वारा संयोगी व्यंजनों का पृथकीकरण।

दक्खिनी में संयुक्त व्यंजनों का बहुत कम प्रयोग होता है। म भा आ तथा आरंभिक न भा आ से प्राप्त शब्दावली में आ भा आ के संयुक्त व्यंजन बहुत कुछ परिवर्तित हो गये थे, अतः इन दोनों से प्राप्त दक्खिनी की शब्दावली में संयुक्त-व्यंजनों का अभाव-सा है। साहित्यिकों दक्खिनी में अफ़ा तत्सम शब्दों का प्रयोग आरंभ से किया जा रहा है। इस प्रकार के शब्दों में संयुक्त व्यंजनों का उपयोग ठीक ढंग से किया जाता है। अफ़ा के शब्दों में स्वरभक्ति का प्रयोग बहुत कम हुआ है। अफ़ा के ऐसे तत्सम शब्दों के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत करना ध्वनि-विकास की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं रखता, जिनमें संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण किया जाता है।

१३९. व्यंजन द्वित्व—दक्खिनी में संयुक्त व्यंजन युक्त जो शब्द शेष रह गये हैं, उन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है:—

१. उच्चारण की सुविधा के लिए किसी व्यंजन को द्वित्व किया जाता है। इस प्रकार का परिवर्तन क्षतिपूर्तिजन्य वर्ण-द्वित्व से भिन्न है।

२. आ भा आ के संयुक्त व्यंजन के स्थान पर नया संयुक्त व्यंजन अथवा आ भा आ के एक व्यंजन के स्थान पर संयुक्त व्यंजन का प्रयोग। व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति बोलचाल की दक्खिनी में अधिक है। बीजापुर के आसपास जो दक्खिनी बोली जाती है, उसमें वर्ण-द्वित्व के उदाहरण

अधिक मिलते हैं। शब्द के मध्य में विशेष रूप से अ फ़ा के शब्दों में प्रथम सस्वर व्यंजन के पश्चात् आने वाले न, म और ल का द्वित्व होता है।

न

(१) शहज़ादा खुशी खुशी तीनों पुड़ियां ले को रवन्ना हो जाता।

(क इ पा) (रवन्ना∠रवाना)

(२) चोरी-छुपी में तो मजा है ना मेरी जन्नी। (क चो श) (जन्नी<जानी)

दसन कूं क्यूं कहूं अन्नार दाने (फूल) (अन्नारदाना<अनारदाना)

म

चुन ले को कम्मर कू बन लिया। (क जा फ) (कम्मर<कमर)

ल

(१) सांप के हल्लक में कित्ते जमाने से फोड़ा था। (क इ–पा) (हल्लक<हलक)

(२) गल्ले लगा को बोली (क प श) (गल्ला<गला)

व

झाजां में भर को ग्यासां हव्वा में तू उड़ा को (खतीब) (हव्वा<हवा)

आ भा आ के 'स' को द्वित्व करने का उदाहरण भी मिलता है—

स

होर येक मुस्सल लाको मेरे बाजू लिटा दे। (क मा व) (मुस्सल<मूसल)

संयुक्त व्यंजन

१४०. दक्खिनी के संयुक्त व्यंजनों का विकास-क्रम निम्न प्रकार है—

(१) क़>क्क—तीन भायां अक्कलवाले थे (क स पा)

(अक्कल<अक़्ल)

(२) क्ष>क्क—रक्कास गुस्से में आको अपना...(क सा भा)

(रक्कास<राक्षस)

(३) क्ष>क्ख—(१) सारा पुनम का चांद सो तेरे सुलक्खन मुख अगल (अली)

(सुलक्खन<सुलक्षण)

(२) सिंहासन बिछा बैठ दक्खन धरन (इन्ना)

(दक्खन<दक्षिण)

(४) क्ख>क्क—चक्खी पीस को बेटे की अपनी गुजर करती थी। (क ज़ा फ़)

(चक्खी<चक्की)

(५) ज्ञ>ग्य—ग्यानी होय सो जाने (इ ना) (ग्यानी<ज्ञानी)

(६) श्च>च्छ—मेरा क़ुतुब तारा है तार्यां में निच्छल (कु क़ु)

(निच्छल<निश्चल)

१४१. व्यंजन युग्म>एक व्यंजन—

(१) आ भा आ—'त्त' 'ट'—इस पिट पटन कूं बादशाह उन (मन)

(पटन<पत्तन)

(२) आ भा आ—द्ध—ड—बुडे पाते थे फिर ताजा जवानी। (फूल)

बुडा<वृद्ध (क)।

(३) आ भा आ—'द्य' '>ज' यह परिवर्तन म भा आ काल में हुआ।[1]

(४) आ भा आ—'द्य>ज'—आज सो काल था न और कुछ (मन)

(आज<अद्य)

(४) आ भा आ—ध्य > 'ज'—संस्कृत का 'ध्य' प्राकृतों में 'झ' बनता है।[2] दक्खिनी का उदाहरण—

सभूं ते सांज लग... (अली) (संध्या>सांझ>सांज)

(५) आ भा आ 'प्स'>'छ'—म भा आ काल में 'प्स' छ में परिवर्तित हुआ।[3] दक्खिनी में इस परिवर्तन का उदाहरण—

दिसे ताक़ां भवां जूं अछड़ियां के (फल) (अप्सरा>अछड़ी)

इस प्रकार का परिवर्तन अवधी में भी देखा जाता है। अवधि में 'र' ... 'ड़' में परिवर्तित नहीं होता—

मानहु मैन मुरति सब अछरीं बरन अनूप।[4]

(६) आ भा आ श्च>छ,[5]

दक्खिनी का उदाहरण निम्न प्रकार है—

गर सांप गर विछू... (मन) (विछू<वृश्चिक)

(७) आ भा आ 'स्क'>'ख', हेमचन्द्र[6] और वररुचि[7] ने खंभा शब्द में 'ख' को 'स्त' का परिवर्तित रूप बताया है, किन्तु खंभा शब्द 'स्कंभ' शब्द का परिवर्तित रूप है, जो वैदिक भाषा में प्रयुक्त हुआ है। दक्खिनी में 'भ' 'ब' हो जाता है।

उदाहरण निम्न प्रकार है—

बन खांब क़लन्दरी दिया है (मन) (स्कंभ>खंभ>खांब)।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.२४।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.२६।
३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.२१।
४. जायसी—पद्मावत, ३२.८।
५. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.२१।
६. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.८।
७. वररुचि—प्रा० प्र० ३.१४।

(८) आ भा आ 'स्त'>थ---यह परिवर्तन म भा आ काल में घटित हुआ।[१] दक्खिनी का उदाहरण---

सर्वा क़दों के क़द थे जूं हरेक थाम (फूल)

(स्तंभ>थंभ>थाम)

(९) आ भा आ 'स्न'>न्ह---

दक्खिनी का उदाहरण---

मोत्यां सेती न्हाती पर (कु क़ु)

(स्नान>न्हान)

(१०) आ भा आ 'ष्ण'>न'

उदाहरण निम्न प्रकार है---

न गोप्यां लोगन कूं ओ है जो कान (इ ना)

(कृष्ण>कह्ल>कान्ह> कान)

स्वरभक्ति

१४२. संस्कृत में मत्स्य, धृतराष्ट्र आदि शब्दों में एक स्वर के साथ तीन तीन व्यंजनों का उच्चारण किया जाता है, किन्तु प्राकृतों में इस प्रकार के प्रयोग सर्वथा समाप्त हो गये। यदि संयुक्त व्यंजन-समूह में से किसी का लोप नहीं होता, तो समूह के प्रथम स्वरहीन व्यंजन को पृथक् करने के लिए स्वरभक्ति का प्रयोग किया जाता है। स्वर-भक्ति के संबंध में प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का विचार है---"उच्चारण संबंधी सुविधा के लिए आर्यभाषाओं ने द्रविड भाषा के प्रभाव से स्वरभक्ति को स्वीकार किया। संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण द्रविड भाषाओं में स्वरभक्ति के साथ किया जाता है। द्रविड भाषाएं मूलतः शब्द के प्रारंभ में संयुक्त व्यंजनों का उपयोग नहीं करतीं। मध्यकाल में स्वरभक्ति का प्रयोग-बाहुल्य आर्येतर भाषाओं के प्रभाव का द्योतक है।[२]

सभी प्राकृतों में स्वरभक्ति का प्रयोग विद्यमान है। मागधी में स्वरभक्ति के रूप में 'अ' का प्रयोग अधिक किया जाता है। अर्ध मागधी में प्रायः 'इ' का प्रयोग होता है।[३] हेमचन्द्र ने स्वरभक्ति के रूप में 'अ' का प्रयोग केवल स्नेह, अग्नि और प्लक्ष शब्द में निर्देशित किया है।[४] 'इ' तथा 'उ' के अनेक उदाहरण दिये गये हैं।[५] दीर्घ 'ई' का भी एक उदाहरण मिलता है। वर-

---

१. हेमचन्द्र---प्रा० व्या० २.४५।

२. चटर्जी---ओ० ड० बं० § ८० बी०, पृ० १७१।

३. पिशेल---कं० ग्रा० प्रा० §§ १३२, १३३, पृ० १०७, १०८।

४. हेमचन्द्र---प्रा० व्या० २.१०२, १०३।

५. हेमचन्द्र---प्रा० व्या० २.१०४-११४।

६. हेमचन्द्र---प्रा० व्या० २.११५।

रुचि ने स्वरभक्ति के अधिक उदाहरण प्रस्तुत नहीं किये हैं। 'अ' के उदाहरण के लिए क्ष्मा, श्लाघ और स्नेह शब्द प्रस्तुत किये हैं।[1] इ, ई तथा उ का उल्लेख भी स्वरभक्ति के रूप में वररुचि ने किया है।

म भा आ की यह प्रवृत्ति नव्य भारतीय आर्यभाषाओं को भी प्राप्त हुई किन्तु आधुनिक काल में संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग-बाहुल्य के कारण इस प्रवृत्ति में पर्याप्त शिथिलता आई है। दक्खिनी में तत्सम शब्दों के प्रयोग का अवसर उपस्थित नहीं हुआ, अतः उसमें स्वरभक्ति के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। जहां तक अ फ़ा के तत्सम शब्दों का संबंध है, स्वरभक्ति का प्रभाव उन पर बहुत कम पड़ा है।

दक्खिनी में स्वरभक्ति के रूप में प्रायः 'अ' का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी की अन्य बोलियों में इ तथा उ का प्रयोग भी स्वरभक्ति के रूप में होता है, किन्तु दक्खिनी में इस प्रकार के प्रयोग अपवादस्वरूप ही मिलते हैं और पंजाबी तथा व्रज के प्रभाव को सूचित करते हैं। स्वरभक्ति का प्रभाव शब्द के प्रथम व्यंजनयुग्म पर अधिक पड़ता है। शब्द के मध्य में स्थित संयुक्त व्यंजन समुदाय पर इसका प्रभाव अधिक नहीं पड़ता।

(१) **उपसर्ग और स्वरभक्ति**—दक्खिनी में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करते समय उन उपसर्गों को स्वरभक्ति के साथ उच्चारित करते हैं, जिनके अन्त में हलन्त अथवा स्वरान्त 'र' का प्रयोग होता है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

निर—	जूं मुक आरस में निरमल	(इ ना)
प्र>पर—	पन दीवे के परकार	(इ ना)
	याद किये के दो परमान	(इ ना)
	जूं है परभा ससि की	(इ ना)
	पकड़ सिफ़त परकास उस काज का	(इब्रा)
	मेरा बाप उस मुल्क पर था आप परधान	(फल)
	उसे परसन हुआ परमीस	(सब)

(२) **स्वरभक्ति**—प्राकृतों में जब संयुक्त व्यंजनों में से प्रथम व्यंजन के साथ स्वरभक्ति का प्रयोग किया जाता है तब द्वितीय व्यंजन का कुछ स्थानों पर द्वित्व होता है। दक्खिनी में यह प्रवृत्ति नहीं है। दक्खिनी में अल्पप्राण स्पृष्ट, र, स और ह के साथ स्वरभक्ति का प्रयोग किया जाता है, किन्तु त, प और र के साथ इसका प्रयोग अधिक होता है। महाप्राण व्यंजनों के साथ स्वरभक्ति का प्रयोग नहीं होता। इन तीनों व्यंजनों में भी 'र' के साथ स्वरभक्ति के उदाहरण अधिक मिलते हैं। 'र' को सस्वर बनाया जाता है और जब दूसरा व्यंजन 'र' से मिलता है तो वह भी सस्वर बनता है।

१४३. 'अ' से संबंधित स्वरभक्ति के उदाहरण इस प्रकार हैं—

क्—ना हैं मुंज पर किसकी सकत (इ ना) (सकत<शक्ति)

---

१. वररुचि—प्रा० प्र० ३.६३-६४।

ग् (१) जूं है अगन भौ परकार (इ ना) (अगन<अग्नि)
(२) ....भगत की खूबी (इ ना) (भगत<भक्त)
ज्—तेरे क़हर के बजर का तेग़ मौज (अ ना) (बजर<वज्र)
ड्—जब रन में खींचे खड़ग तूं (अली) (खडग<खड्ग)
त् (१) ना कुच लोप्या फूफ पतर (इ ना) (पतर<पत्र)
(२) दादा कहे पोतरा यू मेरा (मन) (पोतरा<पौत्र × (क))
(३) यूं करा चांद निरमल रतन (इब्रा) (रतन<रत्न)
द् (१) जूं सेज निदर अनभीजी रात (इ ना) (निदर<निद्रा)
(२) असमां सूर चंदर तारे (खु ना) (चंदर<चन्द्र)
(३) ग्यान समन्दर तूं मुंज पास (इ ना) (समंदर<समुद्र)
प् (१) तूं यूं अलिपत राख नज़र (इ ना) (अलिपत<अलिप्त)
(२) गुपत तूं च हौर तूं च परघट अछे (गुल) (गुपत<गुप्त, परघट<प्रकट)
(३) तव थे सपत धन जोत पाकर (कु क़ु) (सपत<सप्त)
ब् (१) तुज सबदों मुंज होवे लाब (इ ना) (सबद<शब्द)
र् (१) गरब थे आया भार (इ ना) (गरब<गर्भ)
(२) यूं यक दरपन केरे ठार (इ ना) (दरपन<दर्पण)
(३) ...जल का मारग मीन (सु स) (मारग<मार्ग)
(४) वहां नज़र तो मुरछा खाय (इ ना) (मुरछा<मूर्छा)
(५) ...ले के पिन्हाये बरन (अली) (बरन<वर्ण)
(६) ...जाते परान सारे (अली) (परान<प्राण)
(७) ...जगत सार बरस दिन थे (कु क़ु) (बरस<वर्ष)
(८) पूरब की तरफ अगर चले पीर (मन) (पूरब<पूर्व)
स् सरवन मांही नाद सुनावे (सु स) (सरवन<श्रवण)
ह् (१) तूं देव तूं बरहमन तूं पूजा (मन) (बरहमन<ब्राह्मण)
(२) उस बहमनी हिन्दू का किस धिर करूं शिकायत (कु क़ु) (बहमनी<ब्राह्मणी)

१४४. 'इ' से सम्बन्धित स्वरभक्ति के उदाहरण—

ग् (१) यू जूं लाग्या देर गिरान (इ ना) (गिरान<ग्रहण)
(२) नको यूं घाबरा हो ऐ गियानी (फूल) (गियानी<ज्ञानी)
प् (१) पीर वहीं जे पिरम लगावे (ख ना) (पिरम<प्रेम)
(२) पिरम बास हर कहूं की सुंगता अथा (च म) (पिरम<प्रेम)

'उ' स्वरभक्ति—

१४५. स्—निस दिन करूंगी सुमरन (अली) (सुमरन<स्मरण)
ह् — या के पुहुप वसे ज्यूं बास (इना) (पुहुप<पुष्प)

१४६. अ फ़ा से प्राप्त तत्सम शब्दों में स्वरभक्ति का प्रयोग बहुत कम हुआ है। स्वर-

भक्ति के कारण अ फ़ा के थोड़े से शब्दों में जो परिवर्तन होता है, उसका विवरण निम्न प्रकार है—

अ—

क् (१) ना कुच तेरे हात हुकम (इ ना) (हुकम<हुक्म)
(२) अल्ला मियां का शुकर अदा करती (क स पा) (शुकर<शुक्र)
न् – भोत से इनसानाँ पातरनियाँ... (क प श) (इनसान<इन्सान)
र् – कित्ता करजा हुयाय (क स पा) (करजा<क़र्ज़)
ल् (१) जेते इलम जहां के... (अली) (इलम<इल्म)
(२) तीरां छूटे पिच्छे सारे मुलक में... (क इ पा) (मुलक<मुल्क)

'उ' स्वरभक्ति—

र् (१) बारा बुरुज पर है.... (कु क़ु) (बुरुज<बुर्ज)
(२) तुमे सच्चे बुजुरुग हैं। (क नौ हा) (बुजुरुग<बुज़ुर्ग)

वर्णागम

१४७. उच्चारण की सुविधा के लिए शब्द के आरंभ, मध्य अथवा अन्त में वर्ण का आगम होता है। इस प्रकार के वर्णागम के कारण अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता। यास्क ने वैदिक संस्कृत में वर्णागम के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। द्रविड भाषाओं में, विशेष कर तमिल में, उच्चारण की सुविधा के लिए स्वरागम के अनेक उदाहरण मिलते हैं। सभी नव्य आर्य भारतीय भाषाओं में वर्णागम के कारण शब्दोच्चार में अन्तर पड़ता है। शब्द के आरंभ में यदि संयुक्ताक्षर है और स्वरभक्ति के कारण व्यंजनयुग्म पृथक् नहीं हुआ है अथवा प्रथम व्यंजन लुप्त नहीं हुआ तो इस प्रकार के शब्दों के उच्चारण के लिए आरंभ में "अ" अथवा "इ" का उपयोग किया जाता है। व्रजभाषा में इस प्रकार के शब्द के साथ 'इ' का उच्चारण किया जाता है।[1] खड़ी बोली में आदिस्थ संयुक्त व्यंजन से पूर्व 'अ' का उच्चारण होता है।[2] अरब तथा ईरान के निवासी संयुक्ताक्षर से प्रारम्भ होनेवाले विदेशी शब्दों का उच्चारण 'इ' के साथ करते हैं।[3] अरबी-फ़ारसी की यह प्रवृत्ति हिन्दी से संबंधित बोलियों में सबसे अधिक उर्दू ने स्वीकार की है। उर्दू में लिखते समय भी ऐसे शब्दों को 'इ' से प्रारंभ किया जाता है—इस्कूल=स्कूल, इस्टेशन=स्टेशन। राजस्थानी में भी इस प्रकार के शब्द 'इ' से प्रारंभ होते हैं।

दक्खिनी में संयुक्ताक्षर से पूर्व कुछ शब्दों में 'अ' से सहायता ली जाती है और कुछ में 'इ' से। ऐसे शब्दों में भी 'अ' का आगम हुआ है जिनके आदि में असंयुक्त व्यंजन होता है। शब्द के मध्य में उच्चारण की सुविधा अथवा अनुकरण के कारण कुछ व्यंजनों का आगम भी होता है।

अ — (१) (असंयुक्त व्यंजन से पूर्व) अपरूप अचपल इस्तरी का (म न)

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—व्रजभाषा, पृ० ५३।
२. केलाग—ग्रा० हि० लें०, §८६, पृ० ५१।
३. फिल्लट—हा० प० ग्रा०, पृ० २८।

(अंचपल<चपल)

(२) (असंयुक्त व्यंजन से पूर्व, अफ़ा शब्द) केते शाह असवार उस पंथ आय (इब्रा)

(असवार<सवार)

(३) (संयुक्ताक्षर से पूर्व) अस्तुत करे नज़र के जूं भाट (मन)

(अस्तुत<स्तुति)

इ (संयुक्ताक्षर से पूर्व)

(१) इस्थूल थे तू कीता साक (इ ना) (इस्थूल<स्थूल)

(२) दूसरी घड़ी इश्क चादर ओड़े है वो इस्तरी (कु क़ु) (इस्तरी<स्त्री)

क (प्रथम स्वर के साथ)—

जहां दो-तीन मिले वहां बड़ा कुचाट (सब)

(कुचाट<उच्चाटन सं०=उचाट हि०)

र (मध्य)

मत किसी कू सराप दे जूं रांडां (मन) (सराप<शाप)

रो (मध्य)

कई अखरोट बादाम पिस्ते नफ़ीस (क़ु मु) (अखरोट<अक्षोट)

अनुनासिकत्व

ऊष्म व्यंजन से पूर्व अफ़ा शब्द।

उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) तबक़ में चार कासे रख को दिये (मे आ)

(कासा<कासह्, अर० (=प्याला)।

(२) सूरज चांद के सो काँसे धरे (कु क़ु)

(३) तेरी तेग़ का सरके कासे में आब (गुल)

(४) हौंसा सूं भरने आता... (सब)

(हौंस<हवस-अर)

श्रुति

१४८. संस्कृत में 'स्वर', शब्द के आरंभ में स्वतंत्र रूप से आते हैं। शब्द के मध्य में स्वर व्यंजन की सहायता के लिए प्रयुक्त होते हैं। जिन स्थलों में एक के पश्चात् दूसरा स्वर आता है वहां सन्धि नियम के अनुसार दोनों मिल जाते हैं और उनके स्थान पर अन्य स्वर का उच्चारण किया जाता है। म भा आ काल में शब्द के मध्य में अनेक व्यंजनों का लोप हुआ, फलस्वरूप उन व्यंजनों से युक्त स्वर शेष रह गये। इन स्वरों में संधि न होने के कारण उनका उच्चारण करना कठिन हो गया और अर्थ की कठिनाई भी प्रस्तुत हुई। दो स्वरों के निकट आने पर य, व अथवा ह् का उपयोग श्रुति के रूप में किया जाने लगा। जब कोई शब्द स्वर से प्रारंभ होता है तब उच्चा-

रण की सुविधा के लिए श्रुति का उपयोग किया जाता है। शब्द के आरंभ में 'ए' के आने पर प्रायः 'य' का उच्चारण किया जाता है। अपभ्रंश में यह 'य' 'ज' में परिवर्तित हुआ। 'उ' से प्रारंभ होनेवाले शब्दों के साथ महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी में 'व' श्रुति का उपयोग होता रहा।[१] 'अ' से प्रारम्भ होने वाले अव्यय के साथ 'ह' का उच्चारण किया जाता था[२]।

(१) उच्चारण सम्बन्धी अध्याय में यह बताया जा चुका है कि द्रविड भाषाओं में आरम्भिक 'ए' और 'औ' के साथ क्रमशः य् और व् का उच्चारण किया जाता है। मराठी में भी कुछ शब्दों में आरंभिक 'ए' का उच्चारण 'य्' की सहायता से होता है।[३] दो स्वरों को पृथक् रखने के लिए पूर्वी हिन्दी में 'आ' और 'ई' से पहले 'य्' तथा ऊ, ए और औ के पहले 'व्' का उच्चारण किया जाता है। यदि अगला स्वर इ अथवा ई हो तो य और 'व्' का उपयोग नहीं होता।[४] दक्खिनी में 'य्' का उपयोग श्रुति के रूप में किया जाता है। कुछ शब्दों में अपवाद स्वरूप 'व' का उपयोग भी हुआ है—

य—'ह' के पश्चात्—

(१) हिया दाडिम चुराया है (अली) (हिया<हिअअ<हृदय)

(२) आलिंग बदल रहूं जब बंद खोल अंगिया के (अली)
(अंगिया<अंगिआ<अंगिका)

व (१) (आरंभ) दो के बीच वेक अलाहृदा मान (इ ना)
(वेक<एक)

(२) (मध्य) 'अ' तथा 'आ' के बीच में—
मैं इसये हुआ निरवाला (इ ना)
(निरवाला<निरआला<निराला)

(२) दक्खिनी में कुछ व्यंजनों के पश्चात् उच्चारण की सुविधा के लिए सामान्यतया 'य्' श्रुति का उपयोग होता है। आरंभ में 'य्' का उपयोग दो स्वरों को पृथक् रखने के लिए किया गया, किन्तु इस समय ध्वनि संबंधी परिवर्तनों के कारण उसका रूप कई शब्दों में बहुत बदला हुआ है। पूरबी हिन्दी में स्वरभक्ति के रूप में प्रयुक्त 'ई' के पश्चात् 'य्' का लोप हो जाता है अथवा श्रुति के रूप में 'य्' का उच्चारण नहीं होता, किन्तु दक्खिनी में ऐसे स्थलों पर 'य्' बना रहता है—

उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(१) हर्या था बाग़ उसके अद्ल का जम (फूल)
(हर्या<हरिओ<हरितः)

(२) ये है मवस अन्ध्यारे टाक (इ ना)

---

१. पिशेल—कं० ग्रा० प्रा०, § ३३७, पृ० २३४।
२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या०, § २.२०२।
३. जूल ब्लाक—लां० फो० लें० म०, § १५४, पृ० १९४।
४. हार्नली—कं० ग्रा० गौ०, § २८, पृ० ३३।

(अन्ध्यारा<अन्धआरा<अन्धकार (क))

(३) ख, ग ल श और स के पश्चात् भी श्रुति के रूप में "य्" का उपयोग किया जाता है। इस संबंध में दक्खिनी राजस्थानी से साम्य रखती है—

"ख" के पश्चात्—जिते मारिफ़त को दिख्याने कूं धन (गुल)

(दिख्याना<दिखाना)

"ग" के पश्चात्—(१) मेरी अक़्ल मेरे संग्यात है। (सब)

(संग्यात<संगात)

(२) झाजां मे भर को ग्यासां हव्वा में तू उडा को (ख़तीब)

(ग्यास<गास<गैस)

"ल" के पश्चात् अ फ़ा शब्द में—

(१) उसकू औल्याद नैं थी। (क चो श)

(औल्याद<औलाद)

" (क्रिया) (२) जवाब ल्यावे... (इ ना)

(ल्यावे<लावे<लाना)

" (वचन) (३) सकल्यों पर भी है नाज़िर (इ ना)

(सकल्यों पर < सकलों पर)

(३) "श" के पश्चात्—अफ़ा शब्द—

(१) श्यार के वो पापी पावां मुज पो आ सकते नहीं (ख़तीब)

(श्यार<शहर)

(४) "स" के पश्चात्—

(१) स्योवनहारे अपै वैसे सो जाग (फूल)

(स्योवनहारे<सोनहारे)

(२) पंखी खुशमग्ज़ हो स्यारे (अली) (स्यारे<सारे)

(३) यू बेद पुरान स्यास्तर ग्यान (मन)

(स्यास्तर<सास्तर<शास्त्र)

वर्ण लोप

१४९. म भा आ काल में संस्कृत के शब्दों में जो ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन हुए उनमें 'वर्णलोप' उल्लेखनीय है। शब्द के आरंभिक व्यंजन अथवा स्वर में बहुत कम परिवर्तन हुए, किन्तु शब्द के मध्य तथा अन्त में स्थित व्यंजनों के लुप्त होने से शब्दों का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। म भा आ के प्रारंभ में ही तत्सम शब्दों का अन्तिम स्वरहीन व्यंजन लुप्त होता था। इस प्रवृत्ति के कारण संस्कृत के हलन्त शब्द स्वरान्त लिखे जाने लगे। यशस् के स्थान पर यश और 'नामन्' के स्थान पर 'नाम' शब्द का प्रचलन हुआ।

'अ' लोप—कुछ समय पश्चात् शब्दान्त के अकार सहित व्यंजन का उच्चारण स्वरहीन

व्यंजन की तरह किया जाने लगा। सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में अकारान्त संज्ञाएँ तथा धातुएं हलन्त शब्द की भांति उच्चारित होती हैं।[1]

लिखते समय शब्द तथा धातुओं को विभक्ति, प्रत्यय आदि से पृथक् लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण के समय शब्द अथवा धातु को विभक्ति, प्रत्यय आदि से जोड़ दिया जाता है। हिन्दी का निम्नलिखित वाक्य इसका उदाहरण है—

(लिखते समय)—पैदल चलता हुआ वह बात की बात में घर पहुंच गया।

(बोलते समय)—पैदल्चल्ता हुआ वह बात्की बात्में घर पहुँच गया।

अकार का लोप शब्द के मध्य में भी होता है, किन्तु लिखते समय इस लोप को व्यक्त नहीं किया जाता। इ, ई और ऊ के पश्चात् शब्दान्त का 'य' स्वर सहित उच्चारित किया जाता है। इ, ई अथवा 'ऊ' के पश्चात् शब्दान्त के 'य' में 'अ' उच्चारित होता है। तीन व्यंजन वाले शब्द में द्वितीय व्यंजन में यदि 'अ' हो, तो उसका उच्चारण नहीं किया जाता।[2] लेखन में बकरा, उच्चा: बक्रा। चार व्यंजनों वाले शब्द में द्वितीय आकार युक्त व्यंजन का उच्चारण स्वरहीन व्यंजन की तरह किया जाता है।

लेखन—बलहीन, उच्चा, बल्हीन। चार व्यंजनोंवाला शब्द यदि दीर्घ ईकार के साथ समाप्त हो रहा है तो तृतीय अकार सहित व्यंजन स्वरहीन व्यंजन की भाँति उच्चारित किया जाता है—लेखन-सुनहरी, उच्चा० सुनह्री। दक्खिनी में भी शब्द के मध्य तथा अन्त में स्थित 'अ' का लोप इसी प्रकार होता है—

(१) अन्तिम 'अ'

लेखन —ऊपर का छिलटा सब दूर हुआ। (सब)

उच्चा०—ऊपर्का छिल्टा सब्दूर्हुआ।

(२) तीन व्यंजनों के शब्द में द्वितीय व्यंजन के 'अ' का लोप—

लेखन —(१) रहते रहते उस भिन्गे होर कीड़े का किस्सा होता (सब)

उच्चा०— रहते रहते उस्भिन्गे होर्कीड़े का क़िस्सा होता।

(२) सस्रे कू बारूं सस्या कु बारूं (गी) (सस्रा<ससरा)

(३) चार व्यंजनों वाले ह्रस्व स्वरान्त शब्द के द्वितीय व्यंजन के साथी 'अ' का लोप—

लेखन —कई अखरोट बादाम पिस्ते नफ़ीस (क़ु मु)

उच्चा०—कई अख्रोट बादाम्पिस्ते नफ़ीस्।

(४) चार व्यंजनों वाले दीर्घ स्वरान्त शब्द के तृतीय व्यंजन के अकार का लोप—

लेखन —लग्या कानां कूं मुदरे होर चकरले (फूल)

उच्चा०—लग्या कानां कूं मुद्रे होर्चकर्ले।

१५०. प्रारंभिक 'अ' का लोप—

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § १३४, पृ० २५१।

२. गुरु—हि० व्या० § ४०, पृ० ४६, ४७।

म भा आ काल में संस्कृत के कुछ शब्दों में प्रारंभिक अकार विकल्प से लुप्त हुआ।[१] दक्खिनी में संस्कृत के तत्सम शब्दों में आरंभिक अकार के लोप होने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

उदा० (१) ये है मवस अंध्यारे टाक (इ ना) (मवस<अमावस्या)।

(२) इस घर में लाय लाजां...(कु कु)

(लाय<प्रा. अलाय, सं. अलात=अग्नि, लपट, राज० लाय)।

१५१. व्यंजन लोप—

म भा आ काल में अनेक व्यंजनों का लोप हुआ। दक्खिनी में अन्तस्थ और ऊष्म वर्णों के लोप की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है।

१५२. 'य' लोप—

प्राकृतों में स्वर के पश्चात् आनेवाला 'य' लुप्त होता था।[२] दक्खिनी में इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(मध्य) कर बेल पवन पखाल बादल (म न)

(पखाल<पयस्+खल्ल)

(अन्त) (१) ये है मवस अंध्यारे टाक (इना) (मवस<अमावस्या)

(२) असमां, सूर, चंदर तारे (खुना) (सूर<सूर्य)

१५३. 'र' लोप—

प्राकृतों में 'र' का लोप प्रायः होता है।[३] दक्खिनी में तत्सम शब्दों में 'र' लोप के अनेक उदाहरण मिलते हैं—

(मध्य) खुशनज़र अंब की ख़ूबी दिसे यक तन में दो रंग

कहरबा सारका नीमा, नीमा है ज्यूं के पवल (अली) (पवल<प्रवाल)

(अन्त) ...सब गोतों की प्यारी (ख़ुना) (गोत<गोत्र)

१५४. 'व' लोप—

म भा आ में बहुत से शब्दों में 'व' लुप्त हो गया।[४] दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

(मध्य) (१) यहां जाग्रुत नहीं सुन सपन (इ ना) (सपन<स्वप्न)

(२) जनम तुझ दंदी जीवते फिरने का चोर (गुल) (दंदी<द्वंदिन्)

(३) उसासाँ का बारा छुट्या जोर सूं (गुल) (उसास<उच्छ्वास)

(४) दिल शौक़ लिया कबीसरी का (मन) (कबीसरी<कवीश्वरी)

---

१. वररुचि—प्रा० प्र० § १.४।

२. हेमचन्द्र—प्रा० § व्या० १.६६।

३. हेमचन्द्र—प्रा० § व्या० १.१७७, १.२६९।

४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० § २.७९।

१५५. 'स' लोप—

म भा आ में शब्द के प्रारंभ में स्थित स्वरहीन 'स' लुप्त हो गया।[1] दक्खिनी में भी आरंभिक 'स' लुप्त होता है—

(आदि) टूटे चर्ख़ का थाट बांद्या तु ही (गुल)

(थाट सं० स्थातृ-छप्पर अथवा खपरैल रखने का लकड़ी का ढाँचा। मरा. थांटणें=व्यवस्थित करना)।

१५६. ह् लोप—

म भा आ में कुछ तत्सम शब्दों से 'ह्' का लोप हुआ।[2] दक्खिनी में भी शब्द के मध्य में 'ह्' लोप के उदाहरण मिलते हैं—

(मध्य) टिटरी बहरी का ज़ोर ल्या सकती है? (सब) (टिटरी<-हि. टिटहरी<सं. टिट्टिभ)

१५७. अनुस्वार लोप—

दक्खिनी के कुछ शब्दों में अनुस्वार का लोप होता है—उदाहरण—

उसके घर में हाजबी ननद होर सास (सब) (ननद<ननंद)

क्षतिपूर्ति

१५८. जब तत्सम शब्दों में उच्चारण की सुविधा तथा अन्य कारणों से किसी व्यंजन का लोप होता है अथवा एक ध्वनि दूसरी ध्वनि में परिवर्तित होती है तो शब्द में गुण-वृद्धि-द्वित्व अथवा दीर्घीकरण के द्वारा क्षतिपूर्ति की जाती है। क्षतिपूर्ति की यह प्रक्रिया म भा आ काल से प्रारंभ होती है। नवीन भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक काल में यह प्रवृत्ति बहुत व्यापक हो गई।

१५९. दीर्घीकरण (व्यंजन लोप के कारण)—

म भा आ काल में उच्चारण की सुविधा तथा लाघव के कारण तत्सम शब्दों में यदि कोई व्यंजन लुप्त होता अथवा कोई अन्य परिवर्तन किया जाता तो क्षतिपूर्ति के रूप में उससे पूर्व का स्वर दीर्घकर, दिया जाता था। नव्य भारतीय भाषाओं में से पश्चिमी हिन्दी में जब संयुक्त व्यंजन समूह का कोई व्यंजन लुप्त होता है तो कुछ शब्दों में पूर्व का स्वर दीर्घ होता है और कुछ में पूर्ववत् बना रहता है। कुछ शब्दों के दोनों रूप पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए सच्च, सच्चा और साचा तीनों रूप प्रचलित हैं, किन्तु नित<नित्य का एक रूप ही मिलता है। पूर्वी भाषाओं में अर्थात् बंगाली, आसामी, उड़िया, मैथिली, भोजपुरी और पूर्वी हिन्दी में तथा गुजराती, राजस्थानी और मराठी में संयुक्त व्यंजन समूह में से जब व्यंजन लुप्त होता है तो पूर्व का स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। जहां तक पूर्वी भाषाओं का प्रश्न है, उनमें इस प्रकार दीर्घीकरण अधिक पाया जाता है। पूर्वी भाषाओं के विपरीत पश्चिमी भाषाओं अर्थात् सिन्धी, पंजाबी और लहंदा की स्थिति है। इन

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० § १·७७।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० § २·८४,५८।

भाषाओं में व्यंजन लुप्त होने पर भी पूर्व का स्वर ज्यों का त्यों बना रहता है। इस संबंध में पश्चिमी हिन्दी की स्थिति मध्यवर्ती भाषा के समान है। उसमें पूर्वी भाषाओं का अनुकरण भी मिलता है और पश्चिमी भाषाओं का भी। पुरानी पश्चिमी हिन्दी में दीर्घीकरण की प्रवृत्ति अधिक थी, किन्तु आधुनिक साहित्यिक भाषा में यह प्रवृत्ति कम हो गई है। स्पष्ट रूप से यह स्थिति उत्तर-पश्चिमी भाषाओं के प्रभाव की द्योतक है।[1] क्षतिपूर्ति के रूप में दीर्घीकरण के विषय में दक्खिनी और पश्चिमी हिन्दी अथवा खड़ी बोली में पूरी पूरी समानता है। पुरानी दक्खिनी में दीर्घीकरण की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है, किन्तु परवर्ती दक्खिनी में ह्रस्व स्वर ज्यों का त्यों बना रहता है। एक लेखक ने एक शब्द के दो दो रूप भी प्रयुक्त किये हैं।

उदा०—पल में कई लक रतन (गुल) (लक<लक्ष)

फ़न करे अक़्ल लाख (गुल) (लाख<लक्ष)

दक्खिनी शब्दों में स्वर तथा व्यंजनों का लोप अथवा रूपान्तर होता रहा है। यह प्रक्रिया इस समय भी ध्वनि में अनेक परिवर्तन उपस्थित कर रही है। 'र' का लोप अन्य व्यंजनों की अपेक्षा अधिक होता है। यहां दक्खिनी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनमें वर्ण-लोप के कारण क्षतिपूर्ति स्वरूप स्वर दीर्घ हुआ है—

(१) 'क्' लोप के कारण—

बोंबो खुल रही थी सो ज्यूं ऊखली (कु मु) (उखली, प्रा०<उक्खल<उत्खल-सं.)

(२) 'ग्' लोप के कारण—

जलती आग थे खेंच्या पाव (इ ना) (आग<अग्गी प्रा०<अग्नि सं०)

(३) 'य' लोप के कारण—

(अन्त) ——इश्क के तूल है (गुल) (तूल<तुल्य)

(४) 'र' लोप के कारण—इस प्रकार का दीर्घीकरण प्राकृतों में भी हुआ है[2]—

(१) जिसते यू थंडक यू आंच है सांचा (म न)

(२) सुरज का आंच मोती च तेज होगी (फूल)

'मेराजुल आशकीन' में ख़ाजा बन्दे नवाज ने आंच तथा आग दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। (आंच<अर्चि सं.)

(३) पान ना फड़के भइ उस बाज (इ ना) (पान<पर्ण)

(४) घरें रूप पातां बी तुझ फ़हम संग (अ ना) (पात<पत्र)। (बाज<वर्ज)

(५) सहस बरस का माकड़ देखो.... (सु स) (माकड़<मर्कट)

(६) मंगे दिल सूं सब मीत व वैरी तुजे (गुल) (मीत<मित्र)

(७) ...पूत की दान कूं (गुल) (पूत<पुत्र)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० §७६ पी, पृ० १६०।

२. पिशेल—कं० ग्रा० प्रा० §६२, पृ० ६२।

(५) 'स्' लोप के कारण—

(आदि) (१) रूह मुक़ीम का वह है ठार (इ ना) (ठार<स्थल)

(२) बिन उस देखें लेऊं मन थीर (इ ना) (थीर<स्थिर)

(मध्य) (३) हाती है केतक. . . (मन) (हाती<हस्ती)

(६) 'ष' लोप के कारण—

(मध्य) बचन मीठ उस जो. . . . (इब्रा) (मीठ<मिष्ट)।

पिया नीठुर हुए हैं अब (अली) (नीठुर<निष्ठुर)

(७) 'ह्' लोप के कारण—

(अन्त)—दिसे हर तरफ़ तेरी कुदरत का मूं (गुल) (मूं<मुंह<मुख)

१६०. दीर्घीकरण—समान व्यंजन द्वय में से एक व्यंजन के अवशिष्ट रहने के कारण—

(१) ज्ज>ज—कोई जाओ कहो मुज साजन सात (अली) (साजन<सज्जन)

(२) ट्ट>ट्—ना मुंज लोडे पाट पितंबर. . . (खुना) (पाट<पट्ट)

. . .अस्तुत करे नज़र के जूं भाट (मन) (भाट<भट्ट)

(३) त्त>त—कहीं भवरे कहीं तीतर लिखे थे (फूल) (तीतर<तित्तिर)

(४) ल्ल>ल—इबादत भी यू इश्क़ का फूल है (गुल) (फूल<फुल्ल)

. . .या फिर दिसन्तर जंगल धर कर खावें आला पाला (सु स) (पाला<पल्लव)

१६१. दीर्घीकरण—व्यंजन परिवर्तन के कारण—

(१) क्ष>क—आलिमां मने भीकां सभी (कु क़ु) (भीक<भिक्षा)

(२) त>च—जे तू मन में राखें सांच (इ ना) (सांच<सत्य)

१६२. विसर्ग लोप के कारण दीर्घीकरण—

यू दूक घनेरा घेर्या अब (अली) (दूक<दुःख)

१६३. महाप्राण व्यंजन के अल्प प्राणत्व के कारण दीर्घीकरण—

(१) सब कूच. . . . (मे आ) कूच<कुछ)

(२) नुक्ता पैदा अदीक हुआ (इ ना) (अदीक<अधिक)

१६४. अनुनासिक के अनुस्वार बनने के कारण दीर्घीकरण—दक्खिनी में अनुनासिक के स्थान पर पूर्वस्वर को अनुस्वार युक्त बनाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। जब सानुनासिक हलन्त वर्ण अनुस्वरित बनता है तो सम्बन्धित स्वर दीर्घ बना दिया जाता है।

अ>आ—(१) सुनूं मैं वो घांटे ते आवाज़ जूं (गुल) (घांटा<घंटा)

(२) बुरा हूं सबी हूं तेरी गांट का (गुल) (गांट<ग्रंथि)

(३) यू बीन की धुन वह बांसुरी की (मन) (बांसुरी<वंश+री)

(४) उनो करते हँस हँस कर लोकां में तांटा (सब) (तांटा, हिं टंटा, मरा० तंटा, सं० तंड)

अनुनासिक के अनुस्वार बनने पर दीर्घस्वर पूर्ववत् बना रहता है—

उदा०—जिसमें हिम्मत नई सो खाली भांडा (सब)

(भांडा<भांड (क))

उ>ऊ—(१) लूंचत मूंडत फिर. . . (खु ना)

(लूंचत<लुंचन, मूंडत<मुंडन)

,, (२) बचन मीठ उस जो पडें बूंद आय (इब्रा)

(बूंद<बुंद)

अल्पप्राण से महाप्राण

१६५. जब शब्द के मध्य का महाप्राण व्यंजन अल्पप्राण उच्चरित किया जाता है तो शब्द के आदि का अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण बनता है।

(१) बन खांब क़लन्दरी दिया है (मन) (खांब<स्कंभ)।

(२) खांदां पै उसके अपने दस्ते (मन) (खाँदां<स्कन्ध) (क))

(३) अपस पांवां कूं सब छितड़े लपेटी (फूल) (छितड़ा<चिथड़ा)

(४) भबूती अपने मुंह कूं फिर लगाई (फूल) (भबूती<बिभूती<विभूति)

महाप्राणत्व

१६६. कुछ शब्दों में अन्तिम अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण उच्चारित होता है। लकार के पश्चात् प्रायः इस प्रकार का परिवर्तन देखा जाता है:—

(१) गिने पलखां कूं तीरां के मुक़ाबिल (फूल) (पलख<पलक)

(२) कोई काम करो उलठा ई च होता है (बो) (उलठा<उल्टा)

(३) उनों पलठ को जवाब दिये. . . (बो) (पलठना<पलटना)

व्यंजन द्वित्व

१६७. (१) संयुक्त व्यंजन समूह में से जब स्वरहीन व्यंजन लुप्त होता है तो कुछ शब्दों में स्वरसहित व्यंजन का द्वित्व होता है:—

(क) जूं के सुन्ना में दाल (इ ना) (सुन्ना<स्वर्ण, दाल< डाल)

(ख) फतर होए सुन्ना जिस परस छांव ते (गुल)

(२) दक्खिनी के कुछ शब्दों में स्वर के पश्चात् आनेवाले शब्दान्त के अन्तस्थ तथा ऊष्म व्यंजन का द्वित्व होता है। यह प्रवृत्ति बोलचाल की भाषा में अधिक विद्यमान है:—

(क) गल्ला फाड़ कर नको बोल (बो) (गल्ला<गला)।

(ख) पस्सो उठा को मांटी डालेंगे नाउं पो तेरे (ख़तीब)

(पस्सो<पसो)

अनुस्वारत्व

१६८. (१) मागधी, अर्द्ध मागधी और जैन मागधी में व्यंजन लोप के कारण क्षतिपूर्ति स्वरूप शब्दान्त का 'अकार' सानुनासिक उच्चारित किया जाता है।[1] इस प्रकार का सानुनासिकत्व उपर्युक्त प्राकृतों के क्रियाविशेषणों में विशेष रूप से दिखाई देता है। इन प्राकृतों में कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जब शब्दान्त के संयुक्त व्यंजन समूह में से एक व्यंजन का लोप होता है तो उसका अकार सानुनासिक हो जाता है।[2] पुरानी दक्खिनी में इस प्रकार का सानुनासिक अकार विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है, किन्तु धीरे धीरे यह अनुनासिकत्व या तो लुप्त हो गया है या फिर लुप्त व्यंजन पूर्व स्वर को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए पुरानी दक्खिनी के दो शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं:—

(१) पाद>पाँव। (२) ठाँव<स्थान।

इन शब्दों का एक दूसरा रूप भी प्रचलित रहा है—पाँवँ, ठाँवँ। इन दिनों बोलचाल में इन शब्दों का उच्चारण पाँव और ठाँव किया जाता है, किन्तु 'म' जब 'व' में परिवर्तित होता है तो इस समय भी उसके पूर्वापर स्वर सानुनासिक हो जाते हैं। म भा आ के द्वितीय काल में शब्दान्त का 'म' 'वँ' में परिवर्तित हुआ। नव्य भारतीय भाषाओं में 'म' का यह परिवर्तित रूप प्रचलित है। उर्दू के लेखक म>वँ को सानुनासिक लिखते रहे हैं। पुरानी उर्दू में 'वं' से पूर्व का स्वर भी सानुनासिक लिखा जाता था। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'गाँव' लिखा जाता है जब कि उर्दू के पुराने लेखक इसे 'गाँवँ' अथवा 'गावँ' लिखते थे। पुरानी दक्खिनी का उदाहरण इस प्रकार है:—

तू रूह है ससि नाँवँ (इ ना) (नाँवँ<नामन्)।

(२) जब शब्द के मध्य में किसी वर्ण का लोप होता है तो शब्द के आदि का ह्रस्व अकार क्षतिपूर्ति स्वरूप दीर्घ कर दिया जाता है। कुछ शब्दों में यह अकार सानुनासिक रहता है—

'ड्'-लोप—तेरे खंग आगे... (गुल) (खंग<खड्ग)।

'प्'-लोप—गगन सिपी कर सुरज का जल भर (अली)

(सिपी<प्रा० सिप्पी)।

'य्'-लोप—उन्हों सांच बुझ्या है माशूक़ नाज़ (इब्रा) (सांच<सत्य)

"र" लोप—जो उस नर अंगे कर सके आ नमूद (गुल) (अंगे<अग्रे)

" हरेक बूंद वो जो होएं समुंद (इब्रा)

(समुंद<समुद्र)

" यू आंच है सांचा (मन) (आंच<अर्चि)

" गर सांप व गर बिछू है (मन) (सांप<सर्प)

"व्" लोप—...रह्या तंत निराला (सु स) (तंत<तत्व)

---

१. पिशेल—कं ग्रा० प्रा० §१८१ पृ० ३७।

२. वररुचि—प्रा० प्र०, ४·१५।

"ह्" लोप—अजब तरां की महल तैयार कराता (क जा फ)

(तरां<तरह)

(३) जब शब्द के मध्य में स्थित कोई स्वर दूसरे स्वर में परिवर्तित होता है तो कुछ शब्दों में परिवर्तित स्वर का उच्चारण सानुनासिक किया जाता है। जब कोई व्यंजन दूसरे व्यंजन में परिवर्तित होता है तो उसका अपना स्वर अथवा पूर्व-स्वर अनुनासिक बनता है :—

आ>अ — दक्खिनी में दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर बनाने की जो प्रवृत्ति है उसका प्रभाव समासित शब्दों के दीर्घ स्वर पर भी पड़ता है। जब 'आ' 'अ' बनता है तो कुछ शब्दों में परिवर्तित अकार का उच्चारण सानुनासिक होता है :—

सहज देव यूं निरंकार (इ ना) (निरंकार<निराकार)

उ>अ — ग्यान समंदर तूं मुंज पास (इना) (समंदर<समुद्र)

ऋ>इ — इस नार कूं करनहार सिंगार (मन) (सिंगार<श्रृंगार)

क्ष>ख — ...भीत पंखी है ज्ञात (सु स) (पंखी<पक्षी)

क्ष>छ — पंछी कूं मछी के त्यूं तैराने (मन) (पंछी<पक्षी)

द>व — हाती के तूं पाँवँ कूं नहीं धुन (मन) (पाँवँ<पाद)

क्षतिपूर्ति का अभाव

१६९. पूर्वी तथा मध्य प्रदेशीय भारतीय आर्य भाषाओं में क्षतिपूर्ति स्वरूप ह्रस्व स्वर दीर्घ बनता है अथवा ध्वनि संबंधी कोई दूसरा परिवर्तन होता है, किन्तु पश्चिमी भाषाओं में सामान्यतया कोई परिवर्तन नहीं होता। दक्खिनी के कुछ शब्द पश्चिमी प्रभाव का परिचय देते हैं :—

"ग्" लोप—नज़र ना लगे त्यूं सटे अग सपन्द (इ ना) (अग<प्रा० अग्गी)

"ज्" लोप—लबरेज़ थे लज में (मन) (लज<लज्जा)

...पैने है नार कजल (अली) (कजल<कज्जल)

"र्" लोप—कोई फाड़ मुद्रा भावे कन (इ ना) (कन<कर्ण)

खुदा ना करे अगर राजवट अड़े (सब) (राजवट<राजवर्त्म)

"स्" लोप (शब्दारंभ में)—

या कुतुब सात खम का (कु कु) (खम<स्कंभ)

वर्ण विपर्यय

१७०. आर्य भाषाओं में वर्ण विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यास्क ने वैदिक संस्कृत के अनेक शब्द उद्धृत किये हैं, जो वर्ण-विपर्यय की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। उच्चारण की सुविधा के लिए बोलचाल की भाषा में व्यंजनों का स्थान-परिवर्तन होता है। परस्थ व्यंजन का उच्चारण पूर्वस्थ व्यंजन के स्थान पर और पूर्वस्थ व्यंजन का उच्चारण परस्थ व्यंजन के स्थान पर किया जाता है। संस्कृत तथा प्राकृतों में भी यह प्रवृत्ति है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का साहित्यिक रूप वर्ण-विपर्यय को प्रोत्साहन नहीं देता किन्तु बोलचाल में वर्ण-विपर्यय के बहुत

से उदाहरण मिलते हैं। दक्खिनी के पुराने साहित्यिकों ने वर्ण विपर्ययित शब्दों का प्रयोग किया है—

(१) पाटी में चिकड़ में पड़ मुआ है (मन)

यू मिश्क सुवास त्यूं ओ चीकड़ (मन)

आधुनिक हिन्दी की दृष्टि से चीकड़ शब्द 'कीचड' का परिवर्तित रूप ज्ञात होता है। हिन्दी शब्द सागर में 'कीचड़' शब्द की व्युत्पत्ति 'कच्छ' से मानी गई है, किन्तु कुछ भाषाशास्त्रियों ने इस शब्द के संबंध में जो जानकारी दी है, उसके अनुसार हिन्दी का 'कीचड़' शब्द चीकड़ अथवा चीकड़ का परिवर्तित रूप कहा जा सकता है। राजवाड़े ने 'चिकिल' से 'चिकड' शब्द की उत्पत्ति मानी है। कुछ लोग 'क्लिद'—'चिक्लिद' से इस शब्द का उद्भव मानते हैं। मराठी तथा पंजाबी में 'चिकड़' शब्द का प्रयोग होता है। वर्ण विपर्यय के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(२) भर्यागंज क़ुदरत टिपारा भराय (इब्रा)

(टिपारा<पिटारा<सं० पिटक)।

(३) मोत्यां सेती नहाती परी (कु क़ु) (नहान<स्नान)

(४) भबूती अपने मुंह कूं फिर लगाई (फूल) (भबूती<विभूति)

(५) है कडोरन केरा हीरा (खुना) (कड़ोरन<करोड़न)

(६) कुत्यां के दाँते थे बल्के दरांत्यां (दरांत<सं० दांत्र)

दक्खिनी में महाप्राणत्व का प्रायः स्थान परिवर्तन होता है—

(क) खांदे पर ले चलना हात (इ ना) (खांदा<स्कंध)।

(ख) रो रो को हंदा हो गयाय। (क जा फ) (हंदा<अंधा)।

(ग) फत्तर की ठोकर खा को मर गई (क अ भा)

(फत्तर<पत्थर<सं० प्रस्तर)।

(घ) कैं तो बी घट गया तो (क नौ हा) (घटना<गठना)।

(ङ) उसके घदे गुम हो गये थे। (क नौ हा) (घदा<गधा)।

अघोष > सघोष

१७१. नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में जब किसी शब्द के अन्त में अघोष व्यंजन आता है और उस शब्द के पश्चात् आनेवाला शब्द सघोष व्यंजन से प्रारंभ होता है तो अघोष वर्ण अपने वर्ग के सघोष वर्ण की भांति उच्चरित किया जाता है। यद्यपि परिवर्तित सघोष वर्ण अकारान्त लिखा जाता है, किन्तु उसका उच्चारण हलन्त होता है। समासित शब्दों अथवा दो से अधिक व्यंजनों वाले शब्द में भी इस प्रकार का परिवर्तन पाया जाता है। लिखते समय शब्दान्त का अघोष वर्ण मूल रूप में लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण में उसका रूप परिवर्तित होता है :—

क>ग — ले० येक बडै था=उच्चारण—येग् बड़ै था।

" ले० थक गई=उ० थग् गई।

" ले० हकदार=उ० हग्दार।

ख>क>ग– ले० रख बोलको =उ० रग् बोल को।

छ>च>ज— ले० कुच दिन=उ० कुज् दिन।
ट>ड — ले० धंडोरी पिट गई=उ० धंडोरी पिड गई।
त>ज — ले० रतजगा=उ० रज्जगा।
त>द — ले० भोत ग़म में=उ० भोद ग़म में।
त>द — ले० फ़क़त ग़रीबी=उ० फ़कद् ग़रीबी।
प>द — ले० आप बैठो=उ० आब् बैठो।
फ़>प>ब — ले० — तरफ़दार=उ० तरब्दार।

सघोष से अघोष

१७२. यदि किसी शब्द के अन्त में सघोष वर्ण आता है, और उसके पश्चात् आनेवाला शब्द अघोष व्यंजन से प्रारंभ होता है तो शब्दान्त का सघोष व्यंजन अपने वर्ग के अघोष व्यंजन में परिवर्तित हो जाता है। दो से अधिक व्यंजनों वाले शब्द में भी अघोष व्यंजन पूर्वस्थ सघोष व्यंजन को इसी प्रकार प्रभावित करता है। लेखन में यह परिवर्तन व्यक्त नहीं किया जाता। परिवर्तित अकारान्त अघोष वर्ण हलन्त उच्चरित होता है—

ग>क — ले० सुहाग की चीज़=उच्चारण सुहाक् की चीज़।
,, ले० चीज़ पिनाई =उ० चीच् पिनाई।
ड>ट — ले० ठंड से=उ० ठंट् से।
द>त — ले० बेहद खुश=उ० बेहत्-खुश।
ब>प — ले० ख़ूबसूरत=उ० ख़ूपसूरत।
,, ले० अबतक =उ० अप्तक।
,, ले० सोब सुनाया उ० सोप सुनाया<सब सुनाया।

१७३. अनुस्वार>न—शब्द का उपान्त्य स्वर सानुनासिक हो अथवा उपान्त्य स्वर के पश्चात् कोई हलन्त नासिक्य वर्ण हो तो परवर्ण के प्रभाव से शब्दान्त के ड, द और ध् लुप्त हो जाते हैं तथा अनुनासिकत्व "न" में परिवर्तित होता है:—

ठन से<ठंड से
चानका तुकड़ा<चांद का टुकड़ा
बन दिये<बंध दिये।

१७४. र<न—नासिक्य व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्द से पूर्व यदि कोई रकारान्त शब्द आये तो "र" "न" में परिवर्तित होता है—

उदाहरण—चानमीनार<चारमीनार। चानमीनार में "र" का उच्चारण "न" होता है अथवा भ्रमवश "चार" को चांद मान कर "न" का उच्चारण किया जाता है, इसका निश्चय नहीं किया जा सका। इस प्रकार का अन्य उदाहरण कोई नहीं मिला, अतः यही उचित प्रतीत होता है कि चार को चांद मान कर "न" का उच्चारण किया जाता है।

स्वराघात

१७५. डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी के विचार से सभी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में स्वराघात अथवा बलाघात विद्यमान है और उसका संबंध स्वर की दीर्घता से है।[1] स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु ने हिन्दी में स्वराघात का अस्तित्व स्वीकार करते हुए कुछ नियम बनाये हैं।[2]

(क) यदि शब्द के अन्त में अपूर्णोच्चारित 'अ' आवे तो उपान्त्य अक्षर पर जोर पड़ता है—जैसे घर, झाड़, सड़क इत्यादि।

(ख) यदि शब्द के मध्य भाग में अपूर्णोच्चारित 'अ' आवे तो उसके पूर्ववर्ती अक्षर पर आघात होता है। जैसे—अनबन, बोलकर, दिनभर।

(ग) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती अक्षर पर जोर पड़ता है:—जैसे—हल्ला, आज्ञा, चिंता इत्यादि।

(घ) विसर्गयुक्त अक्षर का उच्चारण झटके के साथ होता है:—जैसे—दु:ख, अंत:करण।

(च) यौगिक शब्दों में मूल अवयवों के अक्षरों का जोर जैसा का तैसा रहता है, जैसे—गुणवान्, जलमय, प्रेमसागर इत्यादि।

इस प्रसंग में एक अन्य नियम भी दिया गया है—

यदि शब्द के एक ही रूप से कई अर्थ निकलते हैं तो इन अर्थों का अन्तर केवल स्वराघात से जाना जाता है।

दक्खिनी में भी उपर्युक्त नियमों के अनुसार स्वराघात विद्यमान है, केवल विसर्ग के अभाव के कारण विसर्ग-पूर्व के स्वराघात का उदाहरण नहीं मिलता। विसर्ग संबंधी स्वराघात के स्थान पर अरबी तथा फ़ारसी के शब्दान्त में स्थित "ह्" से पूर्व स्वर पर होनेवाले आघात का उल्लेख किया जा सकता है। दक्खिनी के कुछ शब्दों में हिन्दी की अपेक्षा आघात अधिक होता है। धातु में यह आघात अधिक तीव्र प्रतीत होता है। पंजाबी से ली गई 'सट' धातु इसका उदाहरण है। 'सट' के उपान्त्य स्वर 'अ' पर जिस प्रकार का आघात विद्यमान है, वह अंग्रेज़ी क्रियाओं में विद्यमान स्वराघात के समान है।

---

१. **चटर्जी—ओ० डे० बें० § १४२, पृ० २७६।**

२. **कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण § ५६, पृ० ५२, ५३।**

संज्ञा

१७६. साहित्यिक तथा बोलचाल की दक्खिनी में जो शब्दावली व्यवहृत होती है, उसे निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

(१) म भा आ तथा आरंभिक न भा आ से प्राप्त शब्द।

(२) हिन्दी की उपभाषाओं से प्राप्त देशज शब्द।

(३) संस्कृत से प्राप्त तत्सम शब्द।

(४) अरबी-फ़ारसी से प्राप्त तत्सम तथा तद्भव शब्द।

(५) हिन्दीतर आर्यभाषाओं, विशेष रूप से पंजाबी, गुजराती और मराठी से प्राप्त शब्द।

(६) द्रविड भाषाओं से प्राप्त शब्द।

(७) देशज शब्द।

प्रकृति

१७७. नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की भांति दक्खिनी के बहुसंख्यक शब्द म भा आ तथा आरंभिक न भा आ से प्राप्त हुए हैं। दक्खिनी में जो धातुएँ प्रयुक्त होती हैं, उनमें से कुछ को छोड़ सब की सब म भा आ में विकसित हुईं। इस स्रोत से प्राप्त होनेवाली शब्दावली के प्रकृति-प्रत्यय के सम्बन्ध में इस अध्याय में विस्तार से चर्चा की जाएगी। ख़ाजा बन्देनवाज़ से लेकर अबतक दक्खिनी में इसी प्रकार के शब्दों की बहुलता रही है।

म भा आ काल से प्राप्त शब्दों के संबंध में एक बात ध्यान देने योग्य है। दक्खिनी में एक ही अर्थ के लिए म भा आ काल से प्राप्त एक से अधिक शब्दों का व्यवहार होता है। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका मूल रूप परवर्ती संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत में अधिक प्रयुक्त होता था। कुछ शब्दों के उल्लेख से यह बात स्पष्ट होती है। ख़ाजा बन्दे नवाज़ ने 'मेराजुल आशक़ीन' नामक पुस्तक में 'आंक' और 'अंक' शब्द का प्रयोग किया है। इन दोनों शब्दों का उद्भव संस्कृत के 'अक्षि' शब्द से हुआ है। संस्कृत की नेत्रवाची संज्ञाओं में 'अक्षि' शब्द 'आंख' के रूप में हिन्दी में अधिक प्रचलित है। बुरहानुद्दीन जानम ने 'आंक' के अतिरिक्त 'चक' शब्द का भी अधिक उपयोग किया है। मुहम्मद क़ुली-क़ुतुबशाह और अली आदिल शाह ने भी 'आंक' के अतिरिक्त 'चक' का उपयोग किया। चक का संबंध संस्कृत के 'चक्षु' शब्द से है। प्रायः सभी लेखकों ने आंख के लिए 'नयन' शब्द का भी प्रयोग किया है, किन्तु 'नेत्र' शब्द अथवा उसके तद्भव रूप का प्रयोग किसी भी लेखक ने नहीं किया। दक्खिनी साहित्य में लगभग पांच सौ वर्षों तक 'चक' शब्द का प्रयोग

हुआ है, किन्तु इस समय बोलचाल की भाषा में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। 'चक' शब्द के प्रयोग में ब्रजभाषा की भी यही स्थिति है।

दक्खिनी के लेखकों ने आग, आंच और वसन्दर शब्द का प्रयोग किया है—

आग—आग में पानी, पानी में वारा... (मे आ)

(आग<अगणी<अग्गी<अग्नि)

आंच—पर्दा उठ जावे तो उसकी आंच ते मैं जलूं। (मे आ)

(आंच<अच्चि<अर्चि)

आंच—सूरज का आंच भोती च तेज़ होगा (फूल)

,, जिसते यू थंडक, यू आंच है सांचा (मन)

वसन्दर—तन जल वसन्दर में सकल... (अली) (वसन्दर<वैश्वानर)

हिन्दी से संबंधित बोलियों में 'आग' की अपेक्षा 'आँच' अधिक प्रचलित है किन्तु साहित्यिक भाषा में 'आग' शब्द का प्रयोग अधिक होता है। बोलियों में पवित्रता के लिए 'वसन्दर' शब्द भी व्यवहृत होता है, किन्तु साहित्यिक भाषा में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता।

दक्खिनी में पत्ते के लिए 'पात' और 'पान' शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो क्रमशः 'पत्र' और 'पर्ण' के परिवर्तित रूप हैं। 'पर्ण' शब्द प्राचीन संस्कृत में अधिक प्रचलित रहा है। हिन्दी में पत्ता<पत्र का उपयोग अधिक होता है और 'पान'<पर्ण एक विशेष अर्थ में रूढ हो गया है। दक्खिनी में इन दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा है—

पान—नेमत फूप प्रेमां पान (इ ना) (पान<पर्ण)

,, खिलाफ़त जगत की सो बो पान (इब्रा) (पान<पर्ण)

पात—रंगीला यू हर यक नज़ाकत का पात (गुल) (पात<पत्र)

,, इस झाड़ कूं फूल-पात आलम (मन)

दक्खिनी में कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो म भा आ से संबंध रखते हैं और जिन पर न भा आ का प्रभाव नहीं पड़ा है। एक ही लेखक शब्द के म भा आ और न भा आ रूपों का प्रयोग करता है। दक्खिनी के लेखकों ने 'पुष्प' और 'फुल्ल' तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं किया। म भा-आ में इन दोनों शब्दों का जो रूप था उसे भी लेखकों ने स्वीकार किया और न भा आ के रूप भी प्रयुक्त किये :—

पुहुप—या के पुहुप बसे ज्यूं बास (इ ना) (पुहुप<फुप्प<पुष्प)

फूप—नेमत फूप प्रेमां पान (खु ना) (फूप<फूप्प)।

फुल—महके बास सूं फुल केवड़ी (कु क़ु) (फुल<फुल्ल)।

फूल—इबादत भी यू इश्क़ का फूल है (गुल)

हिन्दी की तरह दक्खिनी में भी कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका संबंध वैदिक संस्कृत से है। वैदिक संस्कृत में खंभे के लिए 'स्कंभ' शब्द का प्रयोग होता था। संस्कृत में 'स्तंभ' शब्द का प्रयोग होता रहा। हिन्दी से संबंधित बोलियों में थंब' की अपेक्षा 'खंभा' अधिक प्रचलित है। दक्खिनी में भी 'खंभ' शब्द का प्रयोग होता है।

दक्खिनी में कुछ शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जिस अर्थ में वे म भा आ के उत्तरकाल में प्रयुक्त होते थे। उदाहरण के लिए 'धन' शब्द लिया जा सकता है। अपभ्रंश में यह शब्द स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है :—

सामि पसाउ सलज्जु पिउ सीमा संधि हि वासु
पेक्खिवि बाहु बलुल्लडा धण मेल्लइ नीसासु।

(हेमचन्द्र—प्रा० व्या०)

अब्भा लग्गा डुंगरिहिं पहिउ रडन्तउ जाई
जो एहा गिरि गिलण मणु सो कि धण हि धणाई

(हेमचन्द्र—प्रा० व्या०)

पुरानी राजस्थानी में भी धण (=धन) शब्द का प्रयोग स्त्री के लिए हुआ है और बोलचाल में भी स्त्री के लिए 'धण' तथा पति के लिए धणी शब्द का प्रयोग किया जाता है।

१७८. दक्खिनी बोलने वाले उत्तर भारत के विभिन्न भाषा-क्षेत्रों से दक्षिण में आये थे, अतः उनकी बोलचाल की भाषा में अनेक ऐसे शब्द विद्यमान थे जिनका सम्बन्ध क्षेत्र विशेष से रहा। इस प्रकार के शब्दों का उपयोग विस्तृत क्षेत्र में नहीं होता था। पिछले छह सौ वर्षों में दक्खिनी बोलनेवाली जनता में भाषा-समन्वय की जो प्रवृत्ति रही है, उसके कारण साहित्य ही नहीं बोलचाल में भी भाषा का एक परिनिष्ठित रूप प्रचलित हो गया है। विशिष्ट देशज शब्दों को पुराने लेखकों से प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी बहुत से शब्द दक्खिनी साहित्य में अवशिष्ट रह गये, जिनका संबंध हिन्दी की किसी न किसी उपभाषा से है :—

द० अछड़ी—लिये हैं अछड़ियां जूं हात में हात (फूल)

(अछड़ी<अच्छरा<अप्सरा)

अवधी-अछरी मानहु मैन मुरति सब अछरी बरन अनूप (पद्मावत)

द० दुहेली—पिरत सूं पीव के होकर दुहेली (फूल)

(दुहेली<पु० दुहेला<दुर्हेला)।

अवधी ,, कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली (जायसी)

दक्खिनी ने संज्ञा ही नहीं अव्यय भी अवधी से लिये हैं—

बाज (बिना)—द०-पिया बाज प्याला पिया जाय ना (कुकु)

(बाज<वर्ज)

,, ,, अवधी-गगन अन्तरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक (पद्मावत)

ब्रजभाषा में प्रचलित देशज तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग दक्खिनी में प्रचुरता से हुआ है। इस प्रकार के शब्दों का परिचय यथास्थान इसी अध्याय में दिया जाएगा। यहां कुछ ऐसे शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनका संबंध हिन्दी से संबंधित उपभाषाओं तथा बोलियों से है—

खोड़ (मन) = राज० खोड़ (कलंक, त्रुटि)
घूड (मन) = पू० हि० घूरा (कचरे का ढेर)

चुनरी (कुक़ु)	=	राज० चुनड़ी (√चुनना)
डूंगर (गुल)	=	राज० डूंगर (मरा०, गुज०-डूंगर)
तांटा (सब)	=	पू० हि० टंटा (मरा०—तंटा)
धनी (मन)	=	राज० धणी (स्वामी, पति)
नवानी (फूल)	=	मेवाती-नवान (निम्न स्थान, कहा० नीम निवाने-धरम ठिकाने)
पखवा (फूल)	=	राज० पाखो (पंखड़ी)
परचो (इ ना)	=	राज० परचो<परिचय (चमत्कार, करामात)
पातर (कु क़ु)	=	पू० हि० तथा अन्य बोलियां—पातर (वैश्या, नर्तकी)
पैलाड़ (फूल)	=	राज० पैलाड़ी (उस ओर)
फोकट (इ ना)	=	पू० हि० फोकट (मरा० फुकट)
बतकाव (कु क़ु)	=	मेवाती-बतका (कहा० बात कहूं बतका की)
बाड़ (गुल)	=	बुन्देलखंडी-बाढ़ (धार)
बना (क़ु मु)	=	राज० बना (वर)
बनी (क़ु मु)	=	राज० बनी (वधू)
बंदड़ा (लो० गी०)	=	राज० बंदड़ा (वर)
बिनोला (मन)	=	हरियाणी बन (कपास)+ला।
बोता (मन)	=	अहीराटी-बोतड़ा<पोत+डा (ऊंट का बच्चा)
भुरकी (सब)	=	ख० बो० बुरकी<√बुरकना (जादू, टोना)
भेली (मन)	=	मेवाती-भेली (गुड़ की भेली)
मांडा (फूल)	=	राज० मांडा<मंडप
रतजगा (कु क़ु)	=	हिन्दी की अनेक बोलियों में रतजगा।
रूक (इना)	=	राज० रूख<वृक्ष
लूतरी (सब)	=	मेवाती-लूतरी (निन्दा)

१७९. दक्खिनी साहित्य में आरंभिक काल से संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग होता आया है। प्राचीन मराठी तथा गुजराती में संस्कृत तत्सम शब्द प्रचुरमात्रा में विद्यमान थे। पूर्वी हिन्दी तथा ब्रज के पुराने साहित्य में तत्सम शब्दों की ओर अधिक रुचि दिखाई देती है। म भा आ काल में ध्वनि संबंधी परिवर्तन-बहुलता के कारण न भा आ के आरंभ में नवोदित आर्य भाषाओं की प्रवृत्ति तत्सम शब्दों की ओर थी। यही कारण है जो दक्खिनी की आरंभिक रचनाओं में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। धीरे धीरे अरबी-फारसी के तत्सम शब्दों तथा संस्कृत के तद्‌भव शब्दों की संख्या बढ़ती गई। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग दो कारणों से अधिक हुआ:—

(१) जिन सूफ़ी सन्तों ने आरंभिक काल में दक्खिनी के माध्यम से अपने आध्यात्मिक ज्ञान को व्यक्त किया है, वे भारतीय चिन्तन तथा दर्शन शास्त्र से परिचित थे। उन्होंने इस्लामोत्तर

अरब-ईरानी विचारधारा के साथ भारत के प्राचीन तथा तत्कालीन चिन्तन के समन्वय का प्रयत्न किया। इस समन्वय के कारण उन्होंने भारतीय दर्शन शास्त्र में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दावली को थोड़े से परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर लिया। इसलिए उनकी वाणी में संस्कृत तत्सम शब्द अधिक संख्या में हैं।

(२) दक्खिनी के शृंगारी तथा आख्यानी कवि भी संस्कृत के साहित्यशास्त्र से परिचय रखते थे। इस परिचय ने उनकी रचनाओं को अनेक तत्सम शब्द प्रदान किये। दक्खिनी के कुछ अनुसन्धानकर्त्ताओं ने इस बात का संकेत किया है कि अमुक लेखक के युग से दक्खिनी ने संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का परित्याग कर दिया। समष्टि रूप से यह विचार उचित नहीं है। लेखक अपनी रुचि तथा विषय के अनुसार संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक अथवा कम किया करते थे। अली आदिल शाह (द्वितीय) ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक किया है जब कि उसी के आस्थान–कवि नुसरती की रचनाओं में अरबी-फ़ारसी के तत्सम शब्द अधिक हैं। यहां संस्कृत के कुछ तत्सम शब्द दिये जा रहे हैं:—

ख़ाजा बन्दे नवाज़ — निर्गुन<निर्गुण, रस, जीवन, जीव।

(मेराजुल आशक़ीन)

शाह मीरां जी — मसि, नासिक, दास, ज्ञानी, चरन<चरण, मुख। (सुख सहेला)।

बुराहानुद्दीन जानम — बालक, प्रकार, संचित, सार, इन्द्रिय, अलिप्त, सहज, कमल, स्थूल, काल, सदा, जीवन, अतीत, संसार, भोग-विलास, सेवक, निधान, ज्ञानदृष्टि, भ्रान्त, सरूप, भाव, भेदाभेद, भास, दीप, उपमा, उत्तम, नर, माया, उपकार, दया, निरंतर, जल, पूजा, जप, योग, कथन, कर्ता, क्रोध, लोप, माता, चित्र, आभास, कल्पित, भेद।

(इर्शाद नामा)

मुहम्मद क़ुली क़ुतुब शाह

जीव, जयमाला, गगन, रूप, नाटक, चंचल, छन्द, कला, पवन, नीर, वैकुंठ, निर्मल, अधर, बहुरूप, अमृत, कोकिल, मुकुट, नारी, अमल, दास, गज, पलक, चंपा, नट, कुरंगनयनी, रसाल, यौवन, सुन्दर, पंथ।

वजही

जीव, बहुगुनी (बहुगनी<बहुगुणी), गंभीर, माया, कपट, हलाहल, बज्र (वज्र), (सबरस)। मन्दिर, गुन (गुण), अनूप, संसार, नवल, कुंडल, भुजंग, भाल, रसन (रसना), (क़ु मु)।

अली आदिल शाह द्वितीय

अचल, अचला, अधर, अपरूप, अलक, कंचुक, गज, घट, धन, छंद, दाडिम, परिमल, पल, पावक, मान, रसाल, विरह, सकल, गौर, दिनकर, जल, मदन, जलद, नयन, तरुन (तरुण), सुन्दर, गगन, मुख, खंड, रूप, चन्दन (अली आदिल शाह का काव्यसंग्रह)

इब्ने निशाती

भार, सदा, नयन, धन, अधम, सकल, नीर, मुख, निर्मल, अधर, नासिक, जगत, विरह, मोहनी, दुर्जन, दर्पन (दर्पण), चीर, अपरूप, अंगार, सुन्दर, कुन्तल।

क़ाज़ी महमूद बहरी

ज्ञान (ग्यान), श्री, अन्त, बल, अम्रत (अमृत), कनिष्ट (कनिष्ठ), अनन्त, रूप, जीव, समाचार, पंचभूत, जनार्दन, जन, उपचार, गुप्त, कारन (कारण), सूक्षम (सूक्ष्म), भूप, निराकार, रोगी, उडगन (उडुगण), अतीत, निरंजन, म्रिग (मृग), सुर।

१८०. विदेश से आनेवाले मुसलमानों में कोई सामान्य भाषा प्रचलित नहीं थी। कुछ लोग तुर्की बोलते थे, कुछ अरबी, कुछ फ़ारसी और कुछ मध्य एसिया की विविध भाषाएं। अरबी धार्मिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी, किन्तु उनकी अपनी भाषाएं बहुत भिन्न थीं। वे विभिन्न भाषा-परिवारों से संबंधित थी। उदाहरण के लिए तुर्की और फ़ारसी में केवल शब्दावली का ही अन्तर नहीं था, अपितु दोनों का विन्यास सर्वथा भिन्न था। अरबी ने ईरान में महत्व प्राप्त कर लिया था और फ़ारसी ने असंख्य शब्द अरबी से ग्रहण कर लिये थे, फिर भी दोनों भाषाओं के विन्यास में मूलतः भेद बना रहा। भारत में कुछ समय तक तुर्कों का प्रभाव बना रहा, किन्तु उनके काल में ही फ़ारसी को महत्व प्राप्त हो गया। तुर्कों की विजय और पवित्र अरबी भाषा के गौरव के रहते हुए भी अरबी बोलनेवाले देशों को छोड़ कर शेष इस्लामी देशों में फ़ारसी राजकीय ही नहीं सांस्कृतिक भाषा के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गई। भारत के मुगल सम्राटों ने फ़ारसी के इस महत्व को पूर्णतया स्वीकार कर लिया था, किन्तु यह भी एक तथ्य है कि इस साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने अपना जीवन-चरित्र तुर्की में लिखा था। इस्लामोत्तर फ़ारसी में अरबी के अनेक शब्द आत्मसात हो चुके थे। तुर्क और ताजिक जो फ़ारसी भारत में लाये वह पूर्वी ईरान की नई फ़ारसी थी। इस फ़ारसी में तुर्की के अनेक शब्द सम्मिलित हो चुके थे। भारतीय जनता ने पांच-छह शताब्दियों तक जिस फ़ारसी को राजनयिक और सांस्कृतिक भाषा के रूप में स्वीकार किया उसके माध्यम से अनेक तुर्की और अरबी शब्द भी भारतीय भाषाओं में पहुंचे। फ़ारसी के साथ जो तुर्की और अरबी शब्द भारत में पहुंचे उनका उच्चारण ईरान में ही फ़ारसी के ढंग से किया जाता था, अतः उन शब्दों की मूल ध्वनियां भारत में नहीं आईं और ये शब्द जब भारतीय भाषाओं में पहुंचे तो उनमें ध्वनि और विन्यास संबंधी परिवर्तन हो चुके थे। अतः इस प्रबन्ध में इन शब्दों का उल्लेख अ फ़ा (अरबी-फ़ारसी) के नाम से किया गया है।

जो फ़ारसी भारत के शासन-कार्य और सांस्कृतिक क्षेत्र में विकसित हुई वह भारत से बाहर के देशों के साथ पत्र-व्यवहार की भाषा भी बनी रही। इसी फ़ारसी के माध्यम से कई शताब्दियों तक भारत का विदेशों के साथ संबंध बना रहा।

दक्खिनी साहित्य में आरंभ से ही अ फ़ा के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। अ फ़ा के शब्द—प्रयोग में दक्खिनी के लेखकों ने १८वीं शती के मध्य तक विशेष आग्रह प्रदर्शित नहीं किया। विषय के अनुसार शब्दों का प्रयोग किया गया। उदाहरण के लिए प्रेमाख्यानक काव्यों और गद्य-ग्रन्थों में अ फ़ा के शब्द कम प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु धार्मिक पुस्तकों में इस प्रकार के शब्दों की संख्या अधिक है। आख्यान-काव्यों और प्रेम सम्बन्धी काव्यों में फ़ारसी के शब्द अधिक व्यवहृत होते हैं और धार्मिक पुस्तकों में अरबी के शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। ख़ाजा बन्दे नवाज़ ने उस समय के बहुप्रचलित म भा आ से प्राप्त शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे:— अंक<अक्षि, नक<नासिक, कान<कर्ण आदि; किन्तु धार्मिक विवेचन और साम्प्रदायिक कर्म-काण्ड से संबंधित किसी विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अरबी के सामान्य और परिभाषिक शब्द स्वीकार किये हैं।

यद्यपि शाह मीरां जी और बुरहानुद्दीन जानम ने धार्मिक विषयों के विवेचन में भी संस्कृत के तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, फिर भी दोनों की रचना में अ फ़ा के तत्सम शब्दों की संख्या कम नहीं है। नुसरती ने अ फ़ा के तत्सम शब्दों का प्रयोग अपने काव्यों में अधिकता से किया है किन्तु उनकी रचनाओं में भी संस्कृत तत्सम शब्द मिलते हैं। दक्खिनी में लेखकों और कवियों द्वारा प्रयुक्त अ फ़ा के कुछ तत्सम शब्द यहां दिये जा रहे हैं:—

ख़ाजा बन्दे नवाज़

तौहीद, जबरूत, जिबल्ली, रकत, सिफ़ली, शाफ़ी, शबे मेराज। शिर्के खफ़ी, तरीक़त, इरफ़ान, किब्रियाई, लाहूत, मेहद, नफ़्स, ख़ाली, निगहबान, मुराक़िबा, ज़बान, मुतालआ, मुरीद, आरिफ़, नुज़ूल, उलवी, मीसाक़, महशर, महताब, मुतफ़क्किर, मलकूत, वहदानियत, बन्दगी, जमाल-जमाली, बक़ा, मग़रिब, मशरिक़, मुशाता, इक़रार, लक़ा, वस्ल, तरतीब, मुनकर, कामिल, फ़र्ज़, तमा, हिर्स (मेराजुल आशक़ीन)।

बुरहानुद्दीन जानम

मुरक्कब, निहां, ख़ास, किसवत, रूह, ख़ास, फ़हम, मुनज्ज़ह, नूर, फ़हम, मुर्शिद, लतीफ़, कसीफ़, दायम, मीसाक़, जन्नत, दोज़ख, गिलाफ़, मख़फ़ी, ग़ैबी, ग़व्वास, शाहिद, वाहिद, क़रार सग़ीर, माज़ी, आरिफ़, नूर, ज़ुहूर, निशां, तफ़ावत, विसाल, ज़ाहिर, बातिन, तालिब, मुहीत, (इर्शादनामा)

मुहम्मद क़ुली क़ुत्ब शाह

इमाम, सुभान, शीरीं, ख़ुशरू, याक़ूत, तबक़, मुरस्सी, ज़री, फ़ाज़िल, महपारा, करम,

फ़नी, मलक, फ़लक, क़ुत्बे जमां, आतिश, शह, मौलूद, अर्श, पैरहन, मक़सूद, गुंचा, जुहरा, मोमीन, मुनकर, तालिब, सालिह, मुहिब्ब, हुरमत, अहद, मेज़बानी, जल्वा, जीनत, अर्श, तजल्ली, सादिक़, रहबर, जानशीं, दामन, सरवर, मुकर्रब, हातिफ़, खिलाफ़त, फ़साहत, अफ़ज़ल, फ़ैज़, इनायत, मज़हर, तुलु, सिपर, इशरत, दायम (काव्य संग्रह)।

वजही

अव्वद, अग़्यार, अज़मत, अजर, अज़ाब, अदावत, असरार, अलम, अहमक़, आक़िल, आतिश, आफ़ताब, आफ़ियत, आबिद, आशना, इमामत, इज़हार, इल्लत, करीम, कसाफ़त, क़ादिर, क़हर, कायनात, किसवत, कोह, खाक, खार, खुशलबा, गंज, ग़फ्फ़ार, ग़ाज़ी, गिरह, गिल, गोर, गौहर, चश्मा, चाहे ज़ंखन, जल्वा, ज़ाकिर, जियाँ, ज़िश्ती, ज़ेर, तक़लीद, तजल्ली, तालिब, तुरफ़ा, तोशा, दाम, दिलरुबा, देव (राक्षस), दोज़खी, नंग, नाज़िर, नीश, परतो, पिन्हा, पेशवा, फ़ना, फ़सीह, फ़हीम, फ़ासिक़, बख्त, बहरी, बहार, बहिश्त, बाज, बातिन, बेनवाई, बोस्तां, मक़बूल, मखदूम, मजीद, महरम, मुफ़लिस, मुसहिफ़, मुश्ताक़ी, मौज, रश्क, रहज़न, रिन्द, रुखसार, रुस्वा, रूबा, लाफ़, लावबाली, वज़ा, वाहिद, विलायत, संग, सदा (आवाज़), साक़, साहिर, सिपर, सेराब, शफ़क़त, शरजा, शीरींगुफ्तार, शैदा, हमज़ाद, हमागोशी, हातिफ़, हिर्स, हैफ़ (सबरस)।

ग़वासी

अक़ारिब, अज़ल, अज़्म, अलम, आक़िबत, आरिफ़, इरफ़ान, इशरत, उस्तवार, कनीज़ा, कुदूरत, ग़नी, ग़व्वास, ग़ायत, ग़ुरबत, ग़ैब, ग़ोगा, ग़ौस, जफ़ा, ज़र्द, ज़मीर, जुल्मात, तक़सीर, तक़ी, तवक्कुल, दबीर, दार, फ़ज़ीलत, फ़ाल, फ़ैज़, बख्तावर, फ़रहबख्श, बशर, बहरोबर, मक़बूल, मज़कूर, मरातिब, मुजर्रद, मुरस्सा, मुन्तही, मुश्तरी, मोअम्मा, रज़्म, रुखसार, विर्द, शफ़क़, शहरयार, शाहिद, शुजाअत, सर्वेआज़ाद, हक़यावरी, हम्द, हयात, हाजिब, हुवदा।

(सैफ़ुल मुलूक व बदीउल जमाल)

अली आदिल शाह (द्वितीय)

अंगुश्त, अंजुमन, अतारिद, अदालत, अद्, अनवर, अफ़ज़ल, अफ़जूं, अयां, अलम, अहले सुखन, आग़ाज़, आब, आला, इक़बाल, इबादत, इल्मदानी, इशरत, इश्क़, औज, क़ज़ा, कमान, कीमिया, कुशादा, खजिल, खिदमत, खुशवज़न, खूबी, ग़ल्तान, गिरह, गुल, चमन, चंद, जंग, जदवल, ज़फ़र, ज़रीना, जहन्नम, जियां, ज़ेह, ज़ौक, तक़सीर, तग़ाफ़ुल, तबक, तशरीफ़, तहसीन, दर्स, दाम, नंग, नज़ारा, नाबात, निगार, निहाल, पारा, फ़रमान, फ़हम, फ़ैज़, बज़्म, बबर, बहर, बिस्मिल, बैत, मंजर, मग़रिब, मग़रूर, मजहर, मर्ग, मारिफ़त, मुअल्लिम, मुज़मर, मुज़मल, मुनव्वर, मग़रिब, मग़रूर, मजहर, मर्ग, मारिफ़त, मुअल्लिम, मुजमर, मुज़मल, मुनव्वर, मुश्तरी, मेहन, मौतबर, यारी, रंजूर, रब, रम्ज़, रश्क, रूह, लब, लाफ़, लुत्फ़, वली, वतन, वीरान, सरापा,

सफ़ीना, सहन, सिद्क़, सुर्ख़, सेर, सोफ़ा, शजरे जमर्रुद, शबकुशा, शिगुफ़्तगी, शोला, हक़, हक़ीक़ी हसद, हूर आदि। (काव्य संग्रह)

इब्ने निशाती

हमेशा, जर्रा, ताला (भाग्य), सुबह, अक़्ल, वहदत, ताज़ा, बख़्शिश, रहमत, निहायत, एजाज़, रूह, मुरसिल, राह, बरहक़, ख़ातिर, मुसम्मर, जारूब, असहाब, सादिक़, सज़ावार, सतर, रिया, सितारा, अद्, तारीफ़, ग़म, बहरी, मसनदनशीनी, राहज़न, मुतरिब, हिम्मत, सितम, हीला, दुनिया, मुश्किल, मैदान, बाग़बानी, मुशरिक, दरिया, साकिन, जवानी, ख़ार, जमर्रुद, आहू, माकूल, सआदत, शुक्र आदि। (फूलबन)

बहरी

क़लन्दरी, ज़ात, हक़ीकत, मारिफ़त, राह, ज़बान, पादशाह, तीर, इब्तिदा, शिताब, क़ुदरत, सवार, मुक़द्दमा, तालिब, मतलूब, लतीफ़, दिल, नफ़्स, नज़दीक, खुदी, ख़तर, महबूब आदि। (मनलगन)

दक्खिनी के लेखकों ने अ फ़ा के तत्सम शब्दों की पूरी-पूरी रक्षा की है, किन्तु सामान्य बोलाचाल में उनका मूल रूप सुरक्षित नहीं रह सका। अ फ़ा के तत्सम शब्दों में ध्वनि संबंधी जो परिवर्तन हुए हैं उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

१८१. हिन्दीतर आर्यभाषाओं से भी दक्खिनी ने शब्द ग्रहण किये हैं। इस प्रकार के बहुत से शब्द मूल रूप में विद्यमान हैं। कुछ शब्दों में ध्वनि संबंधी थोड़े बहुत परिवर्तन भी हुए हैं। हिन्दीतर आर्यभाषाओं में गुजराती तथा मराठी से अधिक शब्द लिये गये हैं। कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो गुजराती तथा मराठी में सामान्य रूप से प्रयुक्त होते हैं। यहां कुछ शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं:—

गुजराती

अंजु—समदर यक आंक के अंजु में (मन) (अंजु<अश्रु)।

गधड़ा—या गधड़े पर कुरान लाद्या (ख़ु ना) (गधड़ा<गु. गधाड़ो)।

चाड़ी—यूं उसके धीर चाड़ी कोई खाये (फूल) (चाड़ी=चुगली, यह शब्द मराठी में भी प्रयुक्त होता है)।

टीला—वो पदमन कूं टीला करा चन्द लगाये (कु-कु) (टीला=टेक, सहारा)।

नाद—सीने सूं लावे दिल के नाद उसकूं (फूल) (नाद=सं. ध्वनि, मूल ध्वनि, लाक्ष० टेव, धुन, गर्व)।

नीट—अर्श के धीर या रुख नीट उसका (फूल) (नीट=विशेषण, स्थिर, नक्की)।

पैला—जगत की अक्ल सूं पैला रही बात (फूल) (पैला < पेलुं, प्रथम, पहला)।

फांटा—वो फुटते थे होकर फूलां के फांटे (फूल) (फांटा<√फुटवुं=खिलना, पल्लवित होना)।

फोक—ऐसा ग्यान यू ख़ाली फोक (इ ना) (फोक=मिथ्या)।

मूस—ख़ाकी रच्या व वैसा मूस (इ ना) (सं० मुषा, मुषी, प्रा० मूसा, (मरा० हि० मूषी-धातु गलाने की कुलड़ी)।

मोकल—रूह कूं मोकल किया जतन (इ ना) (मोकल<√मोकलवुं=भेजना, पहुंचना)।

रावत—तब होश के रावत जिते .... (अली) (गुज० रावत=घुड़सवार, मरा० हि० राउत, प्रा० रायउत, सं० राजपुत्र)।

सरी—गले में भाके सरियां खींच कर ल्याय (फूल) (यह शब्द मराठी में भी प्रयुक्त हुआ है—अर्थ एक प्रकार की लकड़ी)।

हीर—उसकूं राखे ले वो हीर (इ ना) (हीर=तेज, कांति, सत्व, दैवत)।

मराठी

अढल—मैं शाहिद देक अढल (इ ना) (अढल-अविनाश पद, मोक्ष, प्रा० ढल (√पड़ना)।

अभाल—किया कर करम इश्क़ का तिस अभाल (गुल) (अभाल-आकाश, मेघाच्छन्न-आकाश)।

उड़ी—सटता है उड़ी तो जूं के कौड़ियाल (मन) (उड़ी—एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेग से उछल कर पहुंचना अथवा गिरना, कार्यक्षमता)।

कालवा—चली तार तंबूरे की कालवे (गुल)। हरेक यक कालवा पानी का भर्या है सो गुलाब (अली)। नैन ते कालवे लहू के बहावे (फूल)। बोल्या के यू कालवे हैं जल के (मन)। (मरा० कालवा<सं० कुल्या, नदी अथवा तालाब से सिंचाई के लिए बनाया गया नाला अथवा छोटी नहर)।

कुलासा—कुलास्यां सूं सांद्या, कौन सांद्या? तुही (गुल) (कुलासी-(गोमान्त मराठी) पौधे की कलम)।

कोलसा—फ़लक यू सो है कोलसे का ढिगार (गुल) (कोलसा<मरा० कोळसा<वै० सं०√कुल (जलना) = कन्न० कोळळि)। प्रा० कोऴळ)।

खुलगा—बिल्ली कूं बाग का कस आएगा, ... खुलगा हतीके काम सारेगा ..... (सब)। खुलगा<(कोंकणी मराठी) भैंसा।

गम्मत—गम्मत नित मेरी रख तूं उस यार सूं (गुल) (गम्मत, गमत = चैन का समय, चैन)।

गवी—यू बाग न बाग की गवी है (मन) (गवी = गुफा)।

गांडा—फूलां के मंडप होर गांड़े के थांबां (कु-कु) (गांडा<सं० कांड, हि० गन्ना)।

चाड़—माशूक़ ज कुछ करे तो आशिक़ के चाड़ (सब) (चाड़<चस्का-चटक, मिठास)

जत्रा—बरस एक बादज़ को जत्रा वहां (च म) (जत्रा<सं० यात्रा-देवालय में होने-वाला उत्सव, उत्सव के निमित्त भरने वाला मेला)।

झेलां, झेली—पिरोया निर्मल मोत्यां के झेले (फूल)। पुरोया जवाहिर की झेली निछल (क़ु मु)। (झेला=पुष्प गुच्छा, गुच्छा, एक प्रकार का जड़ाऊ काम)।

ढिगार—फ़लक यू सो है कोलसे का ढिगार (गुल) (ढिगार<मरा० ढीग, ढिगाळ= ढेर)।

तगट—· · ·तारे तगट फूलां सुहें (कुकु)। झीनी चुनड़ी पर तगट तार्यां कर आये अंगन (कु-कु)। तगट ओढ़ बैठी थी सारी ज़मीं (अ ना)। · · ·हवा परदा मँजे का कर सितार्यां का तगट तिस पर (अली)

मरा० तगट, तकट, ज़री का कपड़ा, आभूषण तैयार करने के लिए बनाया गया धातु का पत्रा, एक गहना, छपाई या रँगाई का सुनहरा काम।

तास—दिन रात तास पसर घड़ी मनबसी की याद (अली) (मरा० तास (घंटा)< अर० तास एक प्रकार का बरतन।

थोबड़ा—बड़े थोबड़े होर बड़े ज़ात के (क़ु मु) थोबड़ा<मरा. थोबाड़=थूथन)

दुराई, दुराही—वां दूसरों की नईं फिरती दुराई (सब)। तन के मदन पुरिन में पिवकी फिरे दुराई (अली)। नको कओ आज ते मेरी दुराई (फूल)। बलमन में इसीकी है दुराही (मन)। मरा० दुराई, दुराही=आदेश, शासन की ओर से दी गई शपथ, दुहाई<सं० दुर्+हार+(ई)। डाक्टर ज़ोर ने दुराई शब्द की उत्पत्ति तेलुगु के 'दुरा' शब्द से बताई है। उनके विचार में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—तेलु०दुरा (=बड़ा हि,+आई=दुराई)। किन्तु दक्खिनी के किसी भी लेखक ने इस शब्द का प्रयोग प्रभुत्व अथवा बड़प्पन के अर्थ में नहीं किया है। सभी लेखकों ने 'दुराई' अथवा दुराही शब्द का प्रयोग राज्यादेश के लिए किया है।

नडवा—अचता न मर्ग बीच नडवा (मन) (मरा० नड=प्रतिबन्ध, बाधा)

नेट—जिसे नेट नईं, उसे भेट नईं (सब) (नेट=प्रयत्न, श्रम, उत्साह, हिम्मत)।

पझर—मिठाई जग में हुई उसकी पझर ते पैदा (अली) (पझर<प्रा० पज्जर<सं० प्रक्षर=घड़े आदि से रिसनेवाला द्रव पदार्थ, हि०√रिसना)।

पारंबी—सर पर जटाँ सुद पारंबियां (अली) (पारंबी<सं० प्रलंब=बड की जटा)।

पीक—यू झाड़ पहाड़ पीक पानी (मन) (पीक=उपज, फसल)

पूरन—जूं बीच में पूरियां के पूरन (मन) (पूरन<मरा० पुरण=कच्चे खोपरे का घिस्सा, सीझी हुई दाल, शक्कर आदि को मिला कर बनाया जानेवाला पदार्थ, पूरन को गीले आटे में लपेट कर परावठे की तरह पूरनपोली तैयार की जाती है)।

पैका—अपे गये पीछे पैका जाएगा · · ·(सब) (पैका-द्रव्य, पैसा, चार कौड़ी)।

बुड़बुड़ा—दिसे यक बुड़बुड़े ते हो को कमतर (फूल) (बुड़बुड़ा<सं० बुदबुद, हि० बुद-बुदा)।

बोंबी—बोंबी खुल रही थी जो ज्यूं ऊखली (कु० मु०) (बोंबी, बेंबी=नाभि)

मड़ी—तहाँ का माली पिरम का पानी नयन मंड्यां में सदा फिरावे (अली) (मड़ी <मरा०, मढ़ी, पहाड़ के नीचे सिंचाई के लिए पानी खोदा हुआ गढ़ा, खेत की क्यारी)।

माकड़—सहस बरस का माकड़ देखा.... (सु स) (मरा० माकड़ <अप० मक्कड़, <सं० मर्कट)।

मोप—कुछ कुछ दारवां का मोप दरकार है। (सब) (मोप=विपुल)

रहवास—जीवन-मुक्त का वह रहवास।

(रहवास=सहवास, परिचय, बस्ती)।

राजवट—खुदा न करे अगर राजवट अड़े पीछे तो तो लहवे सूं च काम अपड़े, (सब) (राजवट) सं० राजवर्त्ति=राजनीति, राजा का कार्य काल, राजा का आचरण)।

लकार—फ़हम दलाली का लकार (इना) लकार—एक सांकेतिक शब्द जो 'ल' से आरंभ होनेवाले तीन शब्दों का परिचायक है—(१) लुच्चा, (२) लफंगा, (३) लबाड़)।

लावक—नज़र तेरी खूबां कू लावक अहे (अना) लावक-खुराफ़ात, झगड़ा, उद्विग्नता)।

वैताग, वैतागी—हो वैतागी लिया सट अपने वैताग, (फूल) वैताग—संताप, ग्लानि, ग्लानिजन्य वैराग्य, उद्वेग, त्यागभाव मराठी में वैतागी शब्द नहीं है।

होड़ी—अपस सब कूं उस होड़ी के बीच डोली। (क़ु मु)। ना नाव न टोकरा न होड़ी (मन)। मरा० होड़ी (नौका) <सं० होड (समुद्र में चलनेवाली छोटी नाव—वाचस्पत्यम्)।

गुजराती तथा मराठी के पश्चात् हिन्दीतर आर्यभाषाओं में पंजाबी का प्रभाव दक्खिनी पर अधिक पड़ा है। जहाँ तक शब्दावली का संबंध है, पंजाबी से बहुत कम शब्द सीधे दक्खिनी में पहुँचे हैं। पंजाबी शब्दों का रूप हिन्दीभाषी क्षेत्र में ही परिवर्तित हो गया था। यहां कुछ शब्द उद्धृत किये जाते हैं जो पंजाबी से संबंधित हैं—

कांद—गिलावा कांद पे ऐसा गोया लीपे है संदल (अली) (द० कांद <पं० कंध <सं० स्कन्ध=दीवार)।

नक—हसद नक सूं बदबूई न लेना सो (मे आ) (नक <पं० नक्क)

मँजा, मँजा—खड़ा है दोल हो दायम मँजा कर बाग़ के ताईं। मंजा अहै असमान होर... (कु क़ु) (मंजा <पं० मंझा' <सं० मंच)।

लोड़-लोड़ी—उसकी लोड़ लोड़ना, अपनी खुशी उसकी खुशी पर छोड़ना। (सब) अब यू मनसा बांध्या लोडी जे यू चंदर धावे। (सु सु)।
(द० लोड़, लोड़ी=पं०—आवश्यकता, लालसा)।

साहित्यक दखिनी में द्रविड़ भाषाओं के शब्द प्रयुक्त नहीं हुए। दो-चार शब्द ही इस कथन के अपवाद स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं, किन्तु बोलचाल की दक्खिनी में अनेक द्रविड़ शब्द प्रचलित हैं। बोलचाल के समय पठित जन भी द्रविड़ भाषाओं के तत्सम तथा तद्-भव शब्दों का प्रयोग करते हैं। बीजापुर-गुलबर्गा क्षेत्र की दक्खिनी में कन्नड़ के और हैदराबाद-करनूल क्षेत्र में तेलुगु के अधिक शब्द प्रयुक्त होते हैं। द्रविड़ भाषाओं के कुछ ऐसे शब्द भी दक्खिनी ने स्वीकार किये हैं, जिन्हें हिन्दी ने प्रत्यय आदि लगाकर आत्मसात कर लिया है। दक्खिनी में कुछ तेलुगु शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार के तत्सम शब्दों के प्रयोग का उद्देश्य मनोरंजन रहा है। यह वृत्ति प्रायः सभी भाषाओं में पाई जाती है। साहित्यिकों में केवल मुहम्मद-कुली कुतुबशाह का नाम लिया जा सकता है, जिसने मनोरंजन के लिए अपनी कविता में तेलुगु के कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। यहां एक लोकगीत दिया जा रहा है, जिसमें यह प्रवृत्ति विद्यमान है:—

बीबो का दुला गाँव-खेड़ेवाला मां।
दूले के वास्ते मैं खाना पकाई
बीबो का दुला बुव्वा बुव्वा बोलता मां
दूले के वास्ते मैं पान मंगाई
बीबो का दुला आकु आकु बोलता मां
दूले के वास्ते मैं पानी भराई
बीबो का दुला नीलु नीलु बोलता मां।

(ते० बुव्वा=चांवल, ते० आकु=पान, ते० नीलू=पानी)।

यहां दक्खिनी साहित्य तथा बोलचाल में प्रयुक्त कुछ तत्सम और तद्भव द्रविड़ शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं:—

अड़—इस बिन उसकूं सारा अड़ (इ ना) (द० अड<क० अड्डा=बाधा)।

आवा—सिने जलते थे दिन कूं हो को आवा (फूल) (द० आवा < क० आवि=कुम्हार की भट्टी, मरा० अवा, हि० आवा)।

कट्टा—झाड़ू के कट्टे से तेरी मरम्मत करूँगा (क अ मा) (ते० कट्टा—बांध, यह शब्द तेलुगु में क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है बांधना। बंधन के कारण झाड़ू के साथ कट्टा शब्द जुड़ा हुआ है। दक्खिनी में तालाब के बाँध के लिए कट्टा शब्द प्रचलित है)।

खुडी —- आंख्यां डोंग्या ज्यूं खुड़ी सार के (कु मु)
(खुड़ी < क० कुडरू=$\surd$बैठना, मरा० हि० खुड्डी)

गुदड़ी ——यक ठार पड्या ले गुदड़ी ओड (मन)
(गुदड़ी < क० $\surd$गद्=$\surd$खूंदना)

घुड़सी — पुल के जरा बाजू दस-पन्द्रा घुड़सियां हैं (बो) (द० घुड़सी, ते०

गुड़सी, त० कुडि (=घर), कुट=मिलना, कूड, कुडिल, कुडिशे (झोंपड़ी)। ते० क० गुडि (मन्दिर), क० गुडसलु>गुड़सी, घुड़सी। संस्कृत का कुटि, कुटीर तथा कुटुम्ब इस शब्द से संबंधित हैं।

चाड़ी — यूं उसके धीर चाड़ी कोई खाये (फूल)
(चाड़ी< क० चाडि>मरा० चहाड़, चाड़ी)।

झोंपड़ी — घास की झोंपड़ी बग़ैर आग धुएं च सूं जलेगी (सब)
(झोंपड़ी<क० झौंपड़े)

ताँबल — यक तांबल के पेट के निच्चे से... (क जा फ)
(ताँबल<क० ते० ताँबेलु=कछवे)।

तुकड़ा — कइ लाक तुकड़े हो पड़े...... (अली)
(तुकडा=मरा० तुकड़ा, हि० टुकड़ा, क० तुकड़ि)।

दाट — अटक है अदिक ख़ारो ख़स दाट में (गुल)
(दाट=मरा० दाट, क० दट्ट=समूह, घिचपिच)।

भंगार — सकल कोट चौगिर्द भंगार के (क़ु मु)
(भंगार= ते० बंगारमु, सं० भंगारक—सोना)।

मंदा—तुमारे बावा मेरा सुसरा वो मंदे में का बकरा (लो गी) (ते० मंदा=समूह, पशुसमूह, रेवड़, गोठ)

मुंजल—मीठे कइ नीर के चश्मे सेती भर्या है मुंजल (अली) (मुंजल<ते० मुंज़ (ा): तोडफल अथवा तालफल, तेलुगु में बहुबचन के लिए 'लु' प्रत्यय लगता है। दक्खिनी ने 'मूंजु' का बहुवचन वाला रूप मुंजलु स्वीकार किया। अब एक मुंज़ (ा) के लिए भी मुंजल शब्द का प्रयोग होता है।

हैदराबाद की बोलचाल की दक्खिनी में तेलुगु के अनेक शब्द व्यवहृत होते हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

एट्टी (बेगार), कुप्पा (ढेर), गंपा (टोकरा), डोप्पा (टोपी), दोब्बा (मोटा), पोट्टा (लड़का), बंडी (बैलगाड़ी), बोन्ता (गुदड़ी), मन्दम (मोटाई)।

संस्कृत ने आर्यों के भारत प्रवेश के पश्चात् अनेक द्रविड़ शब्दों को आत्मसात कर लिया था। म भा आ ने संस्कृत से इन शब्दों को स्वीकार किया और अब नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं में वे कुछ परिवर्तन के साथ प्रचलित हैं। दक्खिनी साहित्य में इन शब्दों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहां दिये जा रहे हैं:—

आली—रंभा ते जेती हसन में आली बंधी अपस तो बिरद अथारा (अली), (आली< सं० आली (सहेली), ते० आलि (पत्नी) गो० आली (=पत्नी)[१]।

---

१. काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ४५५।

कोट—यकायक जो एक कोट नज़र आया, आसमान पर पड्या साया ····· (सब) (कोट<कुट, त० कोट्टे, क० कोटे, ते० कोट[१]।

नीर—लगे यू नीर लबद म्याने शकर ते अफ़ज़ल (अली) (नीर<नी, बॉप ने इस शब्द की व्युत्पत्ति वैदिक संस्कृत नार (जल) अथवा स्ना से मानी है, किन्तु काल्डवेल ने यह सिद्ध किया है कि "नीर" शब्द आदि द्रविड़ में विद्यमान था। द्रविड़ भाषाओं में पानी के लिए केवल 'नीर' शब्द ही प्रयुक्त होता है। र—ल के अभेद के कारण 'नीर' तेलुगु में 'नीळ्ळु' हो जाता है।)

पटन—उसी से नावं उस कंचन पटन था (फूल) (पटन=ग्राम, पुर, नगर<√पट (घेरना), द्रविड़ भाषाओं में पट्टि शब्द भी 'गाँव' का द्योतक है। हिन्दी में प्रचलित 'पेठ' (बाजार) शब्द 'पट' अथवा पट्टि से उद्भूत माना जाता है।[२]

नारंगी—नारंगी रंग का हवस धर लगी आ बाग़ मने (अली) (नारंगी<नारंग—द्र. नार (सूंघना), मलया० नारण्ण, नाराणगाय (नारण काय) (=फल)>नारंग[३]।)

लंका—लंका पड़लंका होर बंगाला व गौड़ (कु मु) (द्रविड़ भाषाओं में 'लंका' शब्द द्वीप के लिए प्रयुक्त होता है। संस्कृत में यह शब्द द्वीप विशेष के लिए रूढ हो गया।

उपसर्ग तथा प्रत्यय

१८२. संस्कृत में धातु तथा प्रत्यय शब्द-निर्माण में सहायता देते हैं। उपसर्ग तथा अव्यय भी शब्द के अर्थ निर्धारण में सहायक होते हैं। संस्कृत में जब 'प्र' आदि क्रिया के आरंभ में आते हैं तो उपसर्ग कहलाते हैं[४]। जब संज्ञा के आरंभ में 'प्र' आदि उपसर्ग तथा अव्यय जोड़े जाते हैं तो वे 'निपात' कहलाते हैं। हिन्दी में संज्ञा के साथ प्रयुक्त होने वाले उपसर्ग तथा निपात में भेद नहीं किया जाता। शब्द से पूर्व जो ध्वनिसमूह जोड़ा जाता है उसे उपसर्ग कहते हैं[५]। जब प्रकृति-प्रत्यय युक्त शब्द सुबन्त अथवा तिङन्त होते हैं, तब उनकी पद संज्ञा होती है। संस्कृत में 'पद' अर्थ का बोधक होता है। म भा आ में सुप् और तिङ प्रत्ययों का बहुत कुछ लोप हो गया और सुप् तथा तिङप्रत्ययों के अभाव में भी शब्द अर्थ प्रकट करने लगा। आ भा आ के आरंभिक काल में प्रकृति तथा प्रत्यय का अन्तर विद्यमान था, किन्तु आ भा आ के उत्तरकाल में यह भेद बहुत कुछ समाप्त हो गया। म भा आ तथा न भा आ में प्रकृति-प्रत्यय की भिन्नता कुछ शब्दों को छोड़ कर लुप्त हो गई।

---

१. काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ४५७।
२. काल्डवेल—कं० ग्रा० द्र०, पृ० ४५८।
३. काल्डवेल—कं०ग्रा० द्र०, पृ० ४६४।
४. पाणिनि—अष्टाध्यायी १।४।५९।
५. कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण §४३०, (अ), पृ० ४१०।

उपसर्ग

प्राचीन काल के संस्कृत—वैयाकरणों में उपसर्गों के सार्थक अथवा निरर्थक होने के विषय में मतभेद रहा है। कुछ विद्वान् उपसर्गों को सार्थक मानते थे और कुछ निरर्थक। जो विद्वान् उपसर्गों को निरर्थक मानते थे उनका विचार था कि उपसर्गों का उपयोग स्वतंत्र रूप से नहीं होता। क्रिया के साथ प्रयुक्त होने पर वे केवल क्रिया के अर्थ में परिवर्तन मात्र करते हैं। म भा आ में बहुत से उपसर्ग अथवा निपात निरर्थक हो गये और शब्द समग्र पद के रूप में एक निश्चित अर्थ में रूढ हो गया।

दक्खिनी में अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की भांति संस्कृत के मूल उपसर्ग-निपात प्रयुक्त होते हैं। अ फ़ा के कुछ अव्यय तथा उपसर्ग भी अन्य न भा आ के समान अ फ़ा के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के साथ जोड़े जाते हैं। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि बहुत दिनों से अ फ़ा के उपसर्ग भारतीय शब्दों के साथ और संस्कृत के तत्सम अथवा तद्भव उपसर्ग अ फ़ा के शब्दों के साथ जुड़ते हैं। दक्खिनी में प्रयुक्त उपसर्गों का विवरण इस प्रकार है :—

१८३. अ<सं० आ (आङ्) रूह जारी तुज अधान (इ ना)

(अधान<आधान)

१८४. अत<सं० अति—ज़मी पर तो अत अक़्ल सूं हद बंदे (गुल)

(अतअक़्ल<अति+अक़्ल)

१८५. अन<सं० न (संस्कृत में स्वर से प्रारंभ होने वाले शब्द से पूर्व 'न' 'अन्' बनता है और व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्द से पूर्व 'अ' में परिवर्तित होता है। खड़ी बोली की तरह दक्खिनी में भी व्यंजन से प्रारंभ होने वाले कुछ शब्दों के साथ 'न' 'अन्' बनता है—

अनाचीते उदर जाकर पड्या है (फूल)

(अनाचीते<न+चीते)

१८६. अप<सं अप (संस्कृत के विपरीत मैथिली तथा दक्खिनी के कुछ शब्दों में 'अप' उपसर्ग का अर्थ 'अच्छा' होता है) :—

उदा०— जिसे बार फल फूल अपरूप है (गुल)
अपरूप अचपल इस्तरी का (मन)

(अपरूप वै० सं०=अलभ्य, चमत्कारिक)

१८७. अभि=सं० अभि—जे तूं पकड्या ले अभिमान (इ ना)

१८८. उ<सं० उत्—उसासां का आरा छुट्या जोर सूं (गुल)

(उसास<उत्+श्वास)

१८९. उप=सं० उप—उपकार मुंज पर दहूं जग (इ ना)

१९०. औ<सं० अव—तुझ शह में शर्ज़े की औधान है (गुल)

(औधान<अवधान)

फ़हम में तूं दिया औतार (इ ना) (औतार<अवतार)

१९१. कु=सं० कु—कुवल है रतन मोल लेना परख (गुल)

१९२. दु<सं० दुर्—बलपन में इसी की है दुराही (मन)

(दुराही<दुर्+हार)।

१९३. नि=(क) सं० नि—जब उस भावे करे निपैद (इ ना) (नि+पैदा)

,, ,, निकस चीज़ नाचीज़ होय जग में बस (गुल)

नि+कस (शक्ति, सार)।

,, ,, है नूर अगर निरूप लेकिन (मन)

(ख) नि<सं० निस्— मैं सब पर अछं निसंग (इ ना)

(निसंग<निस्+संग)।

(ग) नि<सं० निर्—जो आवेगा तेरे कन वो निलाजा (फूल)

(निलाजा<निर्लज्ज)

ग्यान छूटे क्यूं निसार (इ ना) (निसार<निस्सार)

१९४. निर्=(क) सं० निर्— नूर निरंजन केरे नूर (इ ना)

... निर्मोल शकर का (कु कु)

के जो थी यक रात निर्मल चौदवी रात (फूल)

सब दारू इसी च निर्बिसी में (म न)

(निर्बिसी<निर्+बिसी=विषी)

१९५. निर्<सं० निर् — निरगुन के पानी में पकाकर खाना।

(निरगुन<निर्गुण)।

जूं मुक आरस में निरमल (इ ना)

(निरमल<निर्मल)।

१९६. पड़<सं० प्रति—म भा आ में संस्कृत का "प्रति" उपसर्ग 'पडि' में परिवर्तित हुआ।[1] न भा आ में 'पडि' अकारान्त उच्चरित होने लगा। दक्खिनी में 'पड़' का उपयोग पुराने लेखकों ने भी किया है—

लंका पड़लंका होर बंगाला व गौड़ (कु मु)

(पड़लंका<पडिलंका<प्रतिलंका)।

अवधी में 'पड़' का 'ड़' भी लुप्त हो गया और केवल प शेष रह गया:—

तेहि की आगि उहौ पुनि जरा

लंका छाड़ि पलंका परा (जायसी-पद्मावत)

जीभ खाये और पड़जीभ न जाने। (कहा०)

(पड़जीभ<प्रतिजिह्वा)।

---

१. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० १.२०६।

१९७. पर<सं० प्र—हर हर धातो बहु परकार (इ ना) (परकार<प्रकार)
या जूं दिये में जो परकास (इ ना) (परकास<प्रकाश)

१९८. प<सं० प्र— पसार अपने दो हत ज्यूं दाक के पास (फूल)

१९९. बि<सं० वि—क्या जानेगा बिचार (खु ना) (बिचार<विचार)
,, ,,— याद बिसर का फांदा भला न होए (सु स) (बिसर<विस्मरण)
,, ,,— की ये जग होता सहज बिलास (इ ना) (बिलास<विलास)

२००. स=(क) सं० स—सरस होर निरस गर चे मेरी यू बात (गुल)
है तूं यहां का देक सलोन (इ ना)
(ख) स< सं० सम्—चल्या यूं सनासी हो परदेस कूं (गुल)
(सनासी<सम्+न्यासी)

२०१. सम्=सं० सम्—सितायाँ में कला चौदह सँपूरी है (कु क़ु)
(सँपूरी<सम्+पूरी=सम्पूर्ण)

२०२. सु=सं० सु—के जोत कपूर होर सुगंद तईं (इ ना)
(सु+गन्द<गन्ध)।
—किया तिसमें पैंदा सुवास और रंग (अ ना)
—हर आन सुधन के सुद में अछ (मन)
(सुधन<सुधन्या)।
—सुलक्खन जीव के उस पैरहन कूं (फूल)
(सुलक्खन<सुलक्षण)।

अ० फ़ा० उपसर्ग

२०३. दर (अधीन, नीचे, अन्दर)—जब इश्क़ के परधान मिल बुद सात सफ़ दरसफ लड़े।
(अली)
—पीर कूं दरकार दस चीज समझना (मे आ)

२०४. ना—(न)—अजब है हमारा च दिल नासबूर (गुल)

२०५. पेश=(सम्मुख, उपस्थित)—अछो जम हक़ सूं उसको पेशबाज़ी (फूल)

२०६. ब (=स, सह, साथ)—मुक़ाबिल दिरंग दरपन बजुज़ जल थल नहीं (अली)

२०७. बद (कु, बुरा)—तेरे हक़ में जिन कोई बदंदेश होय (अ ना)
अबस जग में हुआ यूं आज बदनाम (फूल)

२०८. बर (उचित, संमुख)—ईमान बरक़रार रहेगा— (मे आ)

२०९. बा (सह, युक्त)—यूं होय मौसूफ़ बासिफ़ात (इ ना)

२१०. बि, बे (रहित, बिना) बिचारी चीका मार को रोने लगी (क स पा)
(बिचारी<बेचारी)
मैं बिचारा उसमें कोय (इ ना) (बिचारा<बेचारा)

रूच का काम बेरूच होय (इना)
राखे बेगिनत लश्करो पायगाह् (गुल)

२११. ला (न, नहीं)—यूं तूं नूर देक लामकां (इ ना)

२१२. हम (सम, समान, सह) दोनों भी मिला रख तू हमतोल (गुल)
······सो हमदर्द हुई
है उसके तिस सूं मेरा रोज़ हमरंग (फूल)

हर (प्रति)— मदद हरदम अछो तुझ कूं इलाही (फूल)
हरेक दिन-रात तेरे सात था मैं (फूल)

प्रत्यय

२१३. दक्खिनी के प्रत्ययों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है:—(१) संस्कृत के तत्सम प्रत्यय, (२) तद्भव (संस्कृत) प्रत्यय और (३) अ फ़ा प्रत्यय।

दक्खिनी में संस्कृत के जो तत्सम शब्द प्रयुक्त हुए हैं उनमें संस्कृत प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। इन तत्सम प्रत्ययों का परिचय देना आवश्यक नहीं है। तद्भव और देशज शब्दों के साथ जो तद्भव प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं, उनका विवरण दक्खिनी तथा खड़ी बोली के विकास-क्रम को समझने में सहायक हो सकता है। अ फ़ा के तत्सम प्रत्ययों का महत्व हिन्दी भाषा में रुचि रखनेवालों के लिए अधिक है। इन कारणों से यहां तद्भव और अ० फा० के प्रत्ययों की जानकारी दी जाती है। इनमें से कुछ प्रत्यय क्रिया के साथ जुड़ते हैं और कुछ संज्ञाओं के साथ। संस्कृत में ये दोनों प्रकार के प्रत्यय क्रमशः कृत्प्रत्यय और तद्धित प्रत्यय कहाते हैं। कुछ ऐसे प्रत्यय भी हैं जो कृदन्त और तद्धित दोनों में प्रयुक्त होते हैं। आगे जो विवरण प्रस्तुत किया गया है उसमें कृदन्त और तद्धित सम्बन्धी प्रत्ययों को पृथक् न लिखकर अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है।

२१४. तद्भव प्रत्यय : अ (क)

कुछ धातुएं ज्यों की त्यों प्रयुक्त होती हैं और उनकी स्थिति भाववाचक संज्ञा जैसी रहती है। ऐसी धातुओं को अकारान्त लिखा जाता है किन्तु उनका उच्चारण हलन्त की भांति होता है। हिन्दी के कुछ वैयाकरणों ने इस प्रकार की संज्ञार्थक धातुओं के साथ प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय का नाम शून्य प्रत्यय रखा है किन्तु कामताप्रसाद गुरु ने इस शून्य नाम को उचित नहीं समझा और धातु के अन्तिम अकार के लोप को स्वीकार करते हुए संज्ञार्थक 'अ' प्रत्यय का उल्लेख किया है।[1] डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने भी इस प्रकार की धातुज संज्ञाओं को "अ" प्रत्यय युक्त माना है।[2] शून्य प्रत्यय युक्त अथवा अकारयुक्त कुछ धातुएं भाववाची संज्ञा, विशेषण और पूर्वकालिक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती हैं। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने इस प्रकार मूल धातु के साथ "अ" प्रत्यय के योग से बननेवाले किसी विशेषण का उदाहरण नहीं दिया है।

---

१. कामताप्रसाद गुरु—हिं० व्या०, पृ० ४४२।
२. धीरेन्द्र वर्मा—हिं० भा० इ० § १७८, पृ० २२६।

डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी के विचारानुसार यह 'अ' प्रत्यय संस्कृत के पुल्लिगवाची शब्दों के प्रथमा एकवचन में प्रयुक्त अन्तिम 'अः' का प्रतिनिधित्व करता है।[१] बीम्स ने धातु से बननेवाली संज्ञाओं के साथ-साथ अन्य प्रकार की अकारान्त पुल्लिगवाची संज्ञाओं पर भी विचार किया है। उनके विचार में पुल्लिगवाची शब्दों के अन्त में प्रयुक्त अकार संस्कृत के 'घञ्' आदि प्रत्ययों का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृत में यह अकार पुल्लिग में 'अ', स्त्रीलिग में 'आ' और नपुंसकलिंग में 'अम्' का रूप धारण करता है। वररुचि के विचार में पुल्लिगवाची अकारान्त शब्दों में कर्त्ताकारक के एकवचन में 'सु' 'ओ' में परिवर्तित होता है।[२] हेमचन्द्र ने भी इस बात की पुष्टि की है।[३] इससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतों में अकारान्त शब्द ज्यों के त्यों रहते हैं किन्तु कर्ताकारक के एकवचन की विभक्ति 'ओ' का रूप धारण करती है। संस्कृत में भी सन्धि नियम के अनुसार अकारान्त के कर्ताकारक के एकवचन में विसर्ग 'ओ' का रूप धारण करती है। राजस्थानी में इस समय भी कर्ताकारक के एकवचन में अकारान्त संज्ञा 'ओकारान्त' की भांति प्रयुक्त होती है। मागधी में प्रथमा के एकवचन की विभक्ति "एकार" में परिवर्तित होती है, जब कि अपभ्रंश में यह विभक्ति प्रायः 'उ' और कहीं कहीं 'ओ' के रूप में प्रयुक्त होती रही[४]। इस समय सिंधी में उकारान्त शब्दों का प्रचलन विद्यमान है। बीम्स के विचारानुसार सिन्धी को छोड़कर न भा आ में चौदहवीं शती से इस प्रकार की उकारान्त संज्ञाएं अकारान्त बनती रही हैं।[५] वैसे साहित्यिक हिन्दी में उकारान्त शब्दों का बहुत दिनों तक प्रयोग होता रहा। गुजराती तथा सिन्धी के अतिरिक्त अन्य नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में इस प्रकार का अन्तिम 'ओ' अथवा 'उ' 'आ' में परिवर्तित होता रहा है।[६]

धातु से बननेवाली अकारान्त संज्ञा के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

काट—तुज सैफ़ की, पर काट ते ज्यूं मुर्ग़ बिस्मिल (अली)

(काट√काटना)

खेल—दहूं जग माँड्या अपना खेल (इ ना) (खेल√खेलना)

चूक—जे चूक मेरा होए दोस (इ ना) (चूक√चूकना)

जोड़—कपड़े की केतक जो जोड़ नई जिसे (मन) (जोड़√जोड़ना)

तूट—नूरपने में ये है तूट (इ ना) (तूट<तूटना<टूटना)

बोल—ये तो बोल ना होए खाम (इ ना) (बोल√बोलना)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बे० § ३९५, पृ० ६५२।

२. वररुचि—प्रा० प्र० ५.१।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० ३.२।

४. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० ४.३३१, ३३२।

५. बीम्स—कं० ग्रा० आ० द्वितीय भाग § ३, पृ० ५।

६. बीम्स—कं० ग्रा० आ० द्वितीय भाग § ३, पृ० ५।

२१५. आ

पुल्लिंगवाची आकारान्त शब्दों के संबंध में भाषा वैज्ञानिक भिन्न भिन्न विचार रखते हैं। बीम्स के विचार में पुल्लिंगवाची शब्द के अन्तिम आकार की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अः>ओ>आ। पश्चिमी अपभ्रंश में १००० ई० तक पुल्लिंगवाची आकारान्त शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। दसवीं शती के पश्चात् भी इस प्रकार के शब्द अधिक संख्या में नहीं मिलते। पश्चिम-दक्षिणी अपभ्रंश में ५ वीं से १२ वीं शती तक पुल्लिंगवाची अकारान्त शब्दों का प्रयोग मिलता है।[1] पूर्वी अपभ्रंश में भी स्त्रीलिंगवाची शब्दों के अतिरिक्त आकारान्त शब्दों का प्रयोग हुआ है।[1] हेमचन्द्र के समय में कुछ पुल्लिंगवाची शब्दों का आकारान्त रूप विकल्प से प्रचलित था। 'घोड़ा' शब्द का उदाहरण देते हुए अन्तिम आकार का सम्बन्ध कर्ताकारक के बहुवचन की विभक्ति 'जस्' से दिखाया गया है।[2]

आकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों के सम्बन्ध में हार्नली का विचार है कि 'क' प्रत्यय के कारण अपभ्रंश तथा आधुनिक हिन्दी में आकारान्त शब्दों का प्रचलन हुआ। संस्कृत में कुछ शब्दों के साथ 'क' प्रत्यय का प्रयोग होता है किन्तु उसका कोई अर्थ नहीं निकलता। कटुक, कदम्बक आदि शब्द इसके उदाहरण हैं। प्राकृतों में भी पुल्लिंगवाची अकारान्त शब्दों के अन्त में 'क' जोड़ा जाता था। तगारे ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि शब्दान्त का 'अक' ही नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में अ अ>आ बनता है।[3]

बीम्स ने हार्नली का उपर्युक्त मत स्वीकार करते हुए भी प्रश्न किया है कि संस्कृत के अनेक तद्भव अकारान्त पुल्लिंग शब्द इस नियम के अनुसार आकारान्त क्यों नहीं हुए—ओठ, कान, काठ, कांख, गरम, तेल, दांत आदि के साथ प्राकृत में निरर्थक 'क' प्रत्यय क्यों नहीं जोड़ा गया? इन शब्दों की तुलना में हम उन तत्सम शब्दों पर ध्यान दें जिनके अन्तिम वर्ण पर स्वराघात होता है। इन शब्दों के तद्भव रूप को आकारान्त बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। अंडा<अंड, कीडा<कीट, छुरा<क्षुर, चूरा<चूर्ण आदि शब्द इसके उदाहरण हैं।[4]

खड़ी बोली में संज्ञा की अपेक्षा विशेषणों में आकारान्त की प्रवृत्ति अधिक है—अंधा<अंध, आधा<अर्ध, ऊंचा<उच्च, काना<काण आदि।

अकारान्त तथा आकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों का विचार करते समय यह तथ्य भी विचारणीय है कि यह समस्या केवल संज्ञा अथवा विशेषण से ही संबंधित नहीं है। इसका सम्बन्ध क्रिया से भी है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं:—

(१) अकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों के अन्तिम 'अ' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह संस्कृत के घ, अच्, जैसे प्रत्ययों का प्रतिनिधित्व करता है।

---

१. तगारे—हि० ग्रा० अ० § ८०, पृ० १०९।

२. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० ४.३३०।

३. तगारे—हि० ग्रा० अ० § ८०, पृ० ११०।

४. बीम्स—कं० ग्रा० आ० द्वि० भा०, § ३, पृ० ७।

(२) आकारान्त पु० शब्दों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है—

(क) न भा आ के शब्दों में अन्तिम अकार का उच्चारण नहीं किया जाता अतः विशेष स्थलों पर उच्चारण की सुविधा के लिए शब्द को आकारान्त बनाया जाता है। संभवतः इसी उद्देश्य से अकारान्त पुल्लिंगी शब्दों के साथ निरर्थक 'क' प्रत्यय जोड़ा जाता था। कुछ प्राकृतों में व्यंजन के स्थान पर 'स्वर' उच्चारित होता था, अतः अन्तिम अक=अ अ बना और सावर्ण्य के कारण अ अ>आ बनता है।

(ख) संस्कृत के अकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों के अन्त में प्रथमा के एकवचन में 'अः' रहता है। प्राकृतों में अः>ओ बना। अन्तिम 'ओ' का उच्चारण कुछ बोलियों में 'औ' होने लगा। यह 'औ' कुछ नव्य आर्य भारतीय भाषाओं में 'आ' बन गया।

(ग) हिन्दी में 'आ' पुम् प्रत्यय है। संज्ञाओं तथा विशेषणों में ही नहीं क्रिया आदि में भी 'आ' के संयोग से पुल्लिंगवाची शब्द बनते हैं। पुम् प्रत्यय के 'आ' पर किशोरीदासजी वाजपेयी ने अधिक बल दिया है[1]।

इन तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं:—

(१) संस्कृत के निरर्थक 'क' प्रत्यय के कारण 'अक' अ अ में परिवर्तित होता हुआ न-भा आ में 'आ' का रूप धारण करता है। लोहा<लोहक, कोड़ा<कीटक, घोडा<घोटक आदि शब्द इसके उदाहरण हैं।

संस्कृत के जिन तत्सम शब्दों में 'क' प्रत्यय कर्ता का द्योतक है, वहां 'अक' 'आ' में परिवर्तित नहीं होता जैसे लेखक, पाठक।

(२) संस्कृत में अकारान्त शब्दों के प्रथमा के बहुवचन में 'आः' रहता है। कुछ तद्भव शब्दों में संस्कृत का यह बहुवचन वाला 'आ' सुरक्षित रह गया।

(३) प्राकृत में जो शब्द ओकारान्त थे, खड़ी बोली तथा कुछ अन्य नव्य भारतीय भाषाओं में आकारान्त उच्चारित होने लगे। उच्चारण के अतिरिक्त इस प्रकार के शब्दों में आकार का कोई विशेष हेतु नहीं है। पश्चिमी हिन्दी की अपेक्षा पूर्वी हिन्दी में यह प्रवृत्ति पहले विकसित हुई। तगारे ने पूर्वी अपभ्रंश के सम्बन्ध में जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं, वे पूर्वोत्तरीय आर्य भाषाओं पर भी लागू होते हैं।

(४) कुछ शब्दों में 'क' षष्ठी का द्योतक रहा है। यह विभक्ति शब्द का अंश बन गई। पूर्ववर्ती 'अ' तथा इसके मेल से शब्द दीर्घ आकारान्त हो गया। कुछ विशेषणों में दीर्घ 'आ' अपने मूल रूप 'क' (कस्य) का स्मरण कराता है।

(५) बहुत से शब्दों में दीर्घ 'आ' ने पुम् प्रत्यय का रूप धारण कर लिया है।

(६) कुछ शब्दों में वररुचि के मतानुसार 'ओ' अथवा 'आ' कर्ताकारक के एकवचन का द्योतक है।

हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों में पुल्लिंगवाची शब्द के कर्ताकारक के अविकृत रूप में

---

१. किशोरीदास वाजपेयी—हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० १९०।

'ओकार' की प्रवृत्ति रही है और कुछ में 'आकार' की। दक्खिनी द्वितीय वर्ग की भाषा है। इस विषय में खड़ी बोली से पूरा मेल रखती है। साहित्यिक दक्खिनी में केवल तीन शब्द ऐसे मिले हैं जो इस कथन के अपवाद माने जा सकते हैं:—

परचो—सबदासबदी परचो ना है ····(सु स)

(परचो<सं० परिचय, लाक्षणिक अर्थ चमत्कार)

पलो—पलो सात अंजू उसके पोचन लगी (कु मु)

(पलो<हि० पल्ला)

पस्सो—पस्सो उठा को मांटी डालेंगे नाउं पो तेरे (ख़तीब)

(पस्सो<हि० पसे)

दक्खिनी में 'आ' प्रत्यय युक्त पुल्लिंगवाची शब्दों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

आ—(पुल्लिंगवाची) नहीं कुच खूब चाड़ी का है चाला

(स्त्री—चाल<√ चलना, पु० चाल+आ=चाला)

आ—(संबंधसूचक) कर अपना चीर खंटा गल में घाली (फूल)

(खंटा<कंट<कंठ+आ)

आ—(सं० अक, प्रा० अ अ=आ) ग्यान चक अंधे मुश्किल गत (इना)

(अंधा<अन्धक)

,, ,, बाला बूढ़ा अधेड़ तरना ····(मन)

(बाला<बालक, बूढ़ा<वृद्धक, तरना<तरुणक)

,, ,, कभी काटे सूं जा छाती कूं मारे (फूल) (कांटा<कंटक)

२१६. अन्त

भाववाचक कृदन्त प्रत्यय संस्कृत के शतृ से इसका संबंध है। दक्खिनी में इस प्रत्यय के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

रूह में तो कुछ नहीं घटन्त (इ ना) (घट<√घटना+अन्त)

ज कोई यू चलन्त चलता है (सब) (चल<√चलना+अन्त)

२१७. अत

वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय के रूप में 'अत्' का उपयोग होता है। खड़ी बोली में इस प्रत्यय का उपयोग नहीं होता। मराठी के कुछ शब्दों में यह प्रत्यय जुड़ता है। मराठी में इस प्रत्यय के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें प्रत्यय प्रकृति के साथ इतना आत्मसात हो गया है कि उसकी पृथक् सत्ता शेष नहीं रह गई है। दक्खिनी में इस प्रत्यय के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

हज़रत के घर एक दिन गमत था (मन) (गम्+अत=मनोरंजन)

मंजा अहै असमान होर तारे जड़े उसकूं जड़त (कु कु)

(जड़<√जड़ना+अत)

२१८. आँट

खड़ी बोली के कुछ शब्दों में 'आहट' के संक्षिप्त रूप में 'आट' प्रत्यय का प्रयोग होता है— सरसराट=सरसराहट। मराठी में ऐसे स्थलों पर 'आंट' प्रत्यय का उपयोग होता है। हि० सरसराट=सरसराहट–म० सरसरांट। दक्खिनी के कुछ शब्दों में आंट अंटी का रूपान्तर प्रतीत होता है।

उदाहरण:—

कूलांट खेले सरवसर (कु कु) (कूला<कूल्हा+आंट=अंटी)

२१९. आई

इस प्रत्यय का प्रयोग कृत् प्रत्यय और तद्धित प्रत्यय के रूप में होता है।

(१) जब इस प्रत्यय का प्रयोग क्रिया के साथ किया जाता है तो शब्द क्रिया के व्यापार अथवा मेहनताने को प्रकट करता है।

(२) विशेषण के साथ 'आई' जोड़ कर भाववाचक संज्ञा बनाई जाती है।

चटर्जी ने इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है:—

आ भा आ—'आप'+इका>आविआ, आविअ—आवी, आई>आइ। हार्नली के विचार में संस्कृत भाववाचक प्रत्यय ता, प्रा० 'दा' अथवा 'आ' के साथ निरर्थक प्रत्यय 'क' के जोड़ने से 'आई' का उद्भव हुआ। हार्नली ने इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है:—

सं० ता+क=तिका>प्रा० दिआ, अथवा इआ, अथवा अइया>आई। उदाहरण के लिए मिठाई शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है:—

सं० मिष्टता अथवा मिष्टतिका>प्रा० मिट्ठइआ>पू० हि० मिठई और सं० मिष्टक-तिका=प्रा०>मिट्ठअइआ>हि० मिठाई।

कैलाग इस प्रत्यय का संबंध सं० त्व अथवा त्वन से मानते हैं।[१]

विशेषण से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए जिन शब्दों में 'आई' प्रत्यय जोड़ा जाता है, उनके सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि फ़ारसी में भी यह प्रत्यय प्रयुक्त होता है। फ़ारसी के भाववाचक प्रत्यय 'आई' से सम्बन्धित उदाहरण आगे चलकर दिये जायेंगे। दक्खिनी में क्रियार्थक संज्ञा के बनाने के लिए इस प्रत्यय का कम उपयोग हुआ है।

(क) भाववाचक कृत् प्रत्यय का उदाहरण—

··· ना देता कोई तुझे यू बधाई (सब)

(बध<√बधना+आई)

(ख) संज्ञा से भाववाचक—

लड़काई थी मुझ ऊपर मुसल्लम (मन) (लड़का+आई)

---

१. कैलाग—ग्रा० हि० लैं० § ६१२-३, पृ० ३५३।

(ग) विशेषण से भाववाचक—

यू चिकनाई सट – (सब) वि० चिकना+आई

,, बुरे सूँ भलाई करना दुश्मन सूँ सगाई। (सब)

(भला+आई, सगा+आई)

,, मिठाई यूं हुआ। (मे आ) (मीठा+आई)

,, मेरी मिठबोली मिठाई प्याली पिलाती है। (कु कु)

२२०. आऊ

हार्नली ने इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत प्रत्यय 'तृ' के साथ 'क' जोड़ कर दी है। 'ऋ' के 'उ' में परिवर्तित होने के कारण तृक>तुक>ऊ अथवा आऊ। हार्नली ने उदाहरण के लिए दो शब्द दिये है—सं० भर्त्ता>प्रा० भत्तू, सं० पितृ, प्रा० पिऊ।[1] चटर्जी इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति आ भा आ के 'उ' प्रत्यय के साथ 'क' के संयोग से मानते हैं। दक्खिनी में तद्धित प्रत्यय के रूप में 'आऊ' का उदाहरण इस प्रकार है :—

२२१ आट

हार्नली ने 'आवट' अथवा 'आहट' प्रत्यय का संबंध संस्कृत के वृत्ति, वृत्त (नपुं०) वार्त्ता अथवा वार्त्त (न० लिंग) शब्द से बताया है जो प्राकृत में वट्टी, वट्ट अथवा वत्ता में परिवर्तित होता है। इन शब्दों के आरंभ में प्राकृतों के 'अ' अथवा 'आ' के आगम से अवट्ट, अवट्टी आवट अथवा 'औटी' रूप बनता है। हिन्दी में प्रत्यय के मध्य में 'ह' का आगम होता है, किन्तु दक्खिनी में यह प्रत्यय 'आट' ही बना रहता है। कृत प्रत्यय के रूप में इसका उपयोग भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए किया जाता है :—

उदाहरण—तलमलाट हर्गिज नहीं जाता (सब)

(तलमल<√तलमलाना+आट)

२२२. आत (कृ)

हार्नली ने पु०—अत्, स्त्री० अती अथवा पु० आवत और स्त्री० औती का सम्बन्ध सं० वृत्ति, वृत्त अथवा वार्त्ता से माना है।[2] दक्खिनी में यह प्रत्यय 'अत' के रूप में प्रयुक्त होता है। क्रिया के साथ इस प्रत्यय के योग से भाववाचक संज्ञा बनती है :—

उदा०—के अपस के मन म्याने मंगू मनात (कु कु)

(मन<√मनाना+आत)

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गो० § ३३२, पृ० १५६।

२. हार्नली—कं० ग्रा० गो० § २८८, १३३।

२२३. आन (=अन) (कृ)

चटर्जी ने इस प्रत्यय का उल्लेख संज्ञार्थक क्रिया द्योतक प्रत्यय के रूप में किया है।[1] हार्नली इसकी उत्पत्ति संस्कृत 'अनीय' से मानते हैं। सं० अनीय प्रा० अणिअ अथवा अणअ। अपभ्रंश में भी अणिअ अथवा अणअ के रूप में यह प्रयुक्त होता रहा।[2] हिन्दी में यह प्रत्यय पु० अन, अना और स्त्री 'अनी' के रूप में प्रयुक्त होता है। दक्खिनी में यह 'आन' के रूप में विद्यमान है।

ना कीजे कहीं बंधान (इ ना)

(बंधान<बांध, बांधना+आन)

२२४. आयत (त)

आयत=आइत का सम्बन्ध हार्नली तथा बीम्स ने प्रा० इंत अथवा इत्त से जोड़ा है। संस्कृत के वंत या मंत प्रत्ययों से इनका उद्भव हुआ है। उच्चारण की सुविधा के लिए आरंभ में 'अ' का आगम होता है—मंत>अमंत, वंत>अवंत, आगे चलकर अअंत, अयंत, अइंत अथवा इंत। पूर्वी हिन्दी में अत्ता अथवा ऐता, स्त्रीलिंग अइती, ऐती। प० हि० में आइत, आयत और ऐत। दक्खिनी में यह प्रत्यय आयत के रूप में प्रयुक्त होता है। विशेषण से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए इसका उपयोग हुआ है—

उदा०—दुनिया में अपनायत खूब है। (सब)

(अपना+आयत)

२२५. आर (त०)

(क) संभवतः इसका उद्भव संस्कृत शब्द 'आलय' से हुआ है। मराठी में भी यह प्रत्यय प्रयुक्त होता है। हार्नली ने 'आर' का उद्भव संबंधसूचक कर, करा अथवा करो से बताया है। मराठी में 'कर' प्रत्यय का उपयोग 'वासी' के अर्थ में किया जाता है, जैसे गांवकर, सावरकर। 'कार' से 'आर' की उत्पत्ति हुई। दक्खिनी का उदाहरण इस प्रकार है:—

फ़लक यू सो है कोलसे का ढिगार (गुल)

(ढीग<ढेर=आलय)

केते ग्यान भगत वैरागी केते मूर्ख गंवार (खुना)

(गांव+आर<आलय)

(ख) संस्कृत शब्द 'आकार' के संक्षिप्तीकरण से भी इस प्रत्यय का उद्भव हुआ है—

उदा०—केतों कूं धड़ कूं पट ना हैं केतों कू धोलार (खुना)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ३९९, पृ० ६५६।

२. हार्नली—कं० ग्रा० गो० § ३२१, पृ० १५३।

(धोलार<धवल+आकार)

(ग) इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं० कर्तृत्ववाचक तद्धित प्रत्यय 'कार' से भी हुई है। उदाहरण निम्न प्रकार है:—

जूं के सोना होर सुनार (इ ना)

(सुनार<स्वर्ण+कार)

२२६. आरा

उदा०—था पूर जो इक पिटारा (मन)

(सं०√पिट=एकत्रित करना, आरा<कार+आ)

२२७. आरी

सम्बन्धसूचक तद्धित प्रत्यय। हार्नली इसका उद्भव संबन्धसूचक 'कर', 'करा' अथवा 'करी' से बताते हैं।[1] चटर्जी ने संस्कृत के कर्तृवाचक प्रत्यय 'कार' अथवा 'कारी' (कारिन्) से इसकी उत्पत्ति मानी है,[2] जो समुचित प्रतीत होती है। कारी>आरी।

उदा:—पकड़ भिखारी तख्त बिठावे (खुना)

(भिकारी < भीक < भिक्षा, आरी < कारी)

२२८. आलू (त)

हार्नली ने इसकी व्युत्पत्ति प्रा० आल अथवा आलू<सं० आलुच् से बताई है। हेमचन्द्र ने सं० मतुप् से "आलु" का उद्भव बताया है।[3] यह प्रत्यय स्वामित्व का बोध कराता है—

कहे शह डरालू अहै तूं अजब (कु मु) (डर+आलू)

लबरेज़ थे लज में जूं लजालू (मन) (लज<लज्जा+आलू)

२२९. आव (त० कृ०)

हार्नली ने "आव" को विशेषण से भाववाचक संज्ञा बनाने वाला प्रत्यय बताते हुए इसका संबन्ध सं० "त्व" अथवा "त्वन्" से बताया है। प्राकृत में ये दोनों प्रत्यय "त्त" अथवा "त्तण" में परिवर्तित हुए। आधारस्वरूप "अ" के आगम से "अत्त" अथवा "अत्तण" बनता है। "त" के लोप के कारण "अअ" अथवा "अअण" अथवा अअु, अअणु, अथवा अअउ > आउ अथवा आव। अ अ णु से "आन" की उत्पत्ति भी हुई।[4] कैलाग हार्नली का समर्थन करते हैं। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § २७७, पृ० १३०।

२. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ४१२, पृ० ६६८।

३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० २.१५९।

४. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § २२७, पृ० ११३।

(क) एक बूंद पानी ते है सब का जमाव (पंछी) (जमा+आव)

(ख) चटर्जी के कथनानुसार कृत प्रत्यय "आव" का प्रयोग क्रिया के साथ—

कहां उपाव कहां समाव (इना) (उपाव<उपजना+आव। समाव<समाना+आव)।

२३०. आवन<आव+अन

उदा०बंधावन ताफ़ती हरिये · · ·(कु कु) (बांधना+आव+अन)

२३१. आवा (त),<आव+आ

उदा० सितम दो दिन जो गाड्या था गड़ावा। पड़े थे बन्द सब सालिम पड़ावा (फूल)
(गड़ावा<गाड़ना+आव+आ, पड़ावा<पड़ना+आव+आ)
गिलावा कांद पे सारा गोया लीपै है संदल (अली)
(गिलावा<गिल (फा० मिट्टी)+आव+आ)
हैं नूर के दो फिरावे (इ ना) (√फिराना+आव+आ)
मुज उस लग्या हिलावा (फूल) (हिलावा< हिलना+आवा)

२३२. इया (त)

चटर्जी ने इसकी व्युत्पत्ति इस तरह दी है—सं० इक+आ>इ अं+आ। इस प्रत्यय के योग से अधिकार अथवा निवास सूचक विशेषण बनता है।[१]

उदा० : आलिंग बदल रहूं अब बंद खोल अंगिया का (अली) (अंग+इया)।

२३३. ई (त)

(क) संस्कृत के पु० इन् के प्रथमा के एकवचन का रूप, अस्तित्व अथवा "युक्त" सूचक तद्धित प्रत्यय—ये ग्यानी होय सो जाने (इ ना) (ग्यानी<ग्यान+इन्)। क़ुतुबशाह भागी नवे मन्दर चलो (कु कु) (भागी<भाग+इन्)। जनम तुझ दंदी जीवत फिरने का चोर (गुल) (दंदी<द्वन्द्व+इन्)।

भोगी है सो जोड़ हत खड़े हैं (मन) (भोगी=भोग+इन्)
रोगी तो रिया मने पड़े है (मन) (रोगी=रोग+इन्)

(ख) ई<सं० ईय—उदा० सुने की है या पितली देखने गुन (फूल) (पितली<पित्त-लीय)

मुहम्मदी-(मे आ) (मुहम्मद+ईय)
सबें मस्जिदी होर दैरी तुजे (गुल)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ४२१, पृ० ६७४।

(मस्जिदी<मस्जिद+ईय = (ला० अ०) मुसलमान)

(ग) ई<सं० इक-उदा० पन एक अंदेशा भारी है (इ ना) (भार+इक)

(घ) ई<सं० इका,[1] लघुत्वसूचक—

उदा० : ना नाव न टोकरा न होड़ी (मन) (होड=समुद्र में चलनेवाली नौका-वाचस्पत्यम्। होड+ई=होड़ी)।

(ङ) ई.—निरर्थक, दक्खिनी के कुछ शब्दों में निरर्थक "ई" प्रत्यय का उपयोग हुआ है—

उदा० : मिला बेगी सूं उस मछली कूं हाल (फूल) (बेगी<वेग+ई)

२३४. एड़, एर, एरी (त)

हार्नली ने एड़, एर तथा एरी प्रत्ययों का संबंध सं० दृशं (=सदृशं) से माना है)।[2]

जहां तक एरी का सम्बन्ध है हिन्दी में इसकी उत्पत्ति एरी<हरी से प्रतीत होती है। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—बाला बूढ़ा अधेड़ तरना (मन) (अधेड़<अर्ध+एर्=ऐर)। सुहे सीस अंचल धुंवेर ज्यूं गगन पर (कु क़ु) (धुंवेर<धूम्र+एर)। कदीं तुझ पै बूटा सुनैरी धरे (गुल) (सुनैरी<स्वर्ण+एरी<हरी)

२३५. एली (त)

हार्नली ने इस प्रत्यय का सम्बन्ध सं०-दृश से जोड़ा है। उदा० : यो नाजुक छन्द के छब की छबेली (फूल) (छबेली<छब+एली)

२३६. ओई (त)

लघुत्व बोधक, व्युत्पत्ति अज्ञात—उदाहरण : कधीं लेवे कंगोई जो खोलने बाल (फूल) (कंगोई<कंगा (=कंघा)+ओई)

२३७. -टी

इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—स्थ>ट+ई (स्त्रीलिंगवाची प्रत्यय)—उदाहरण : यू दीवटी यू चिराग़ यू चूला (मन) (दीवटी<दीप+स्थ+ई)।

२३८. -ड़ा (त)

चटर्जी ने इस प्रत्यय के सम्बन्ध में लिखा है कि म भा आ काल में उत्तर भारत की बोलियों में इस प्रत्यय का प्रयोग प्रारंभ हुआ। राजस्थानी में इस प्रत्यय का अधिक प्रयोग होता है।

---

१. चटर्जी—ओ० ड० बें० § ४१८, पृ० ६७१।

२. हार्नली—कं० ग्रा० गो० § २५१, पृ० १२१।

आ भा आ के "वृत्त" "से" "ड" (डा) की व्युत्पत्ति हुई।[1] हार्नली ने इस प्रत्यय का उद्भव "दृश्" से माना है, किन्तु चटर्जी का मत अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। दक्खिनी में इस प्रत्यय के उदाहरण:

या गधड़े पर क़ुरान लाद्या (ख़ु ना) (गधड़ा<गधा+ड़ा)
अधर की मद की घर कूं कुलफ़ था सो मुकड़ा (मुकड़ा<मुख+डा)
वह छैल छबीलड़ा छिपा गंज (मन) (छबीलड़ा<छबीला+ड़ा)

२३९. -ड़ी<"ड़ा"

पु० से स्त्रीलिंग—
न फुल सेजड़ी मुंज माती अहै (क़ु मु) (सेज+ड़ी)

२४०. त (कृ० त०)

चटर्जी ने इस प्रत्यय का संबंध संस्कृत के त्व>प्रा० त्त से माना है,[2] किन्तु धीरेन्द्र वर्मा के विचार से इसकी उत्पत्ति किसी अन्य प्रत्यय से हुई है।"त" प्रत्यय युक्त शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग-वाची होते हैं अतः धीरेन्द्रजी वर्मा त<त्व की व्युत्पत्ति स्वीकार नहीं करते।

गिनत करना अपने ठार (इना) (गिनत<√गिनना+त)

२४१. -ता (कृ)

हार्नली वर्तमानकालिक कृदन्त "ता" का सम्बन्ध सं० प्रत्यय "अत्" से बताते हैं—
जे कुच तेरा भावता मन (इना) (भावता<√भाना+ता)

२४२. -ती (कृ)

ता का स्त्रीलिंग—
मैं अपभावती करता कार (इना)

२४३. -न, ना, नी (त)

२४३. -न, ना, नी (त) (क) हार्नली के विचार में इन तीनों प्रत्ययों का उद्भव संस्कृत प्रत्यय अनीय>प्रा अणीय अथवा अणिअ अथवा अणअ से हुआ।[3] संस्कृत के नपुंसकलिंगी "ल्युट्" प्रत्यय से इसकी उत्पत्ति अधिक उचित प्रतीत होती है। "ना" का स्त्रीलिंगवाची रूप "नी" होता है। मराठी में "ना" कर्मकारक की विभक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है और हिन्दी में कुछ शब्दों के साथ

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ४३९, पृ० ४४०, ६८७, ८८।
२. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ४४२, पृ० ६९१।
३. हार्नली—कं० ग्रा० गो० § ३२१, पृ० १५३।

"ना" सम्बन्ध कारक का चिह्न है। हिन्दी की "ने" विभक्ति से भी इस प्रत्यय का सम्बन्ध दिखाई देता है। इस संबंध में विभक्ति सम्बन्धी अध्याय में विस्तार से विचार किया जायगा। हिन्दी के कुछ शब्दों में सम्बन्ध कारक का द्योतक "ना" अथवा "नी" चिह्न शब्द के अंश बन गये हैं, जैसे—चांदना, चांदनी।

"ना" का उपयोग क्रियार्थक संज्ञा के रूप में कृत् प्रत्यय की भांति भी होता है। दक्खिनी में जब कोई अन्य प्रत्यय क्रियार्थक संज्ञा के साथ जुड़ता है तो "ना" का उच्चारण "न" किया जाता है। दक्खिनी के उदाहरण इस प्रकार हैं—

ऐसे यहां के बरतन रीत (इना) (बरतन<बरत<√बरतना+न (<ल्यूट्)।
के उस गरजन थे बादल गरज धरता (कु क़ु)
(गरजन<गरज (ना)+न (ल्यूट्)।
जो देखी वो चलन होर उसकी वो चाल (फूल) (चलन<चल्+न (ल्यूट्)।

(ख) -कुछ स्त्रीलिंगवाची शब्दों में "न' प्रत्यय संस्कृत के "नी" या "आनी" का द्योतक है।[1]

सुनार सोहागन बनाया। (क नौ हा) (सोहागन<सोहाग+इन्)

२४४. -पन्

हार्नली ने इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति सं० त्व, त्वन>प्रा०-प्पं, प्पणं से बताई है।[2] अपभ्रंश में सं० त्व तथा तलुप् प्रत्यय को "प्पण" आदेश होता है।[3]

बालकपन भी तरुना फिर (इ ना) (बालकपन<बालक+पन<त्वन्)।
भेद जुदापन एक है नूर (इना) (जुदापन<जुदा+पन<त्वन्)।
वहां दिसना तेरापन बेगानापन (तेरा+पन<त्वन्। बेगाना+पन<त्वन्)।
सचापन सो नबी पर है मुसल्लिम (फूल) (सचा<सच्चा+पन<त्वन्)।
खुदा का दीदारपना अल्ला कूं नइं देखा सो (मे आ) (दीदार+पना<त्वन्+आ)।
नूरपने में ये हैं तूट (इना) (नूर+पन<त्वन्+आ)

२४५. बार

(कर्तृवाचक कृदन्त)<वाला>वार>बार-जिन तुम कीता करनबार (इना) (करन+बार <वाला)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ४४५, पृ० ६९२।
२. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § २३१, पृ० ११५।
३. हेमचन्द्र—प्रा० व्या० ४.४३७।

२४६. -री (कृ)

इस प्रत्यय की उत्पत्ति चटर्जी ने सं० "वृत्त" से मानी है—उदाहरण बास चुन चुन के चुनरी बंधे (क़ु कु) चुनरी<√चुनना+री)।

२४७. -ल सं० प्रा० "ल"—(त)

उदाहरण—कजल नैनां सहेल्यां के सो प्रेमल स्यार बादामां (क़ु कु) (प्रेम+ल)।

फ़लक ताबदां हो रह्या नित नवल (गुल) (नव+ल) इस प्रत्यय का प्रयोग क्रियाविशेषण के साथ भी किया जाता है। उदाहरण:—

जिसके अगल सब हैं काम (इना) (अगल<अग्रे+ल)।

२४८. -ला (त)

(क) चटर्जी ने इस प्रत्यय का सम्बन्ध संस्कृत के "ल" से जोड़ा है, किन्तु कुछ भारतीय भाष ों में "ला" परसर्ग के रूप में भी प्रयुक्त होता है। मराठी में "ला" द्वितीया और च की विभक्ति है। हिन्दी में "ला" विशेषण बनाने के लिए प्रयुक्त होता है और सम्बन्ध सूचक है। दक्खिनी का उदाहरण इस प्रकार है—

गुसाला भोत है ... (फूल) (गुसाला<गुस्सा+ला)।

रंगीला यू हर यक नजाकत का पात (गुल) (रंगीला<रंग+ला)

(ख) राजस्थानी में लघुत्व प्रदर्शित करने के लिए "ला" का प्रयोग किया जाता है। दक्खिनी में भी "ला" प्रत्यय इस अर्थ का द्योतक है—

पगल्यां ऊपर राख्या सीस (इना) (पगला<पग+ला)।

मेहों के बुंदले पड़ते हैं (सब) (बुंदला<बूंद+ला)

(ग) ली<पु० "ला" का स्त्रीलिंग, लघ्वर्थक—न मछली उसके सम कोई आवे सचली (फूल)

२४९. वन्त (त)

संस्कृत प्रत्यय (मतुप्) के कर्ता कारक में बहुवचन का विसर्ग रहित रूप—

चंचल चतर बुदवन्त फ़नी (कु क़ु) (बुदवन्त<बुध+वन्त<म तप् ब० व०)।

मयावन्त दाता तुज बाज कोय (क़ु मु) (मया+वन्त)। वन्ता<वन्त+आ (पु० वा०)—कुछ शब्दों में "वन्त" वन्ता उच्चारित किया जाता है। उदाहरण—निरगुन गुनवन्ता- (खुना)। वन्ती<पु०-वन्त का स्त्रीलिंग—

उदाहरण—सतवन्ती थी रानी शाह कूं यक सतवन्ती नांव (फूल) (सत+वन्ती)।

२५०. -वा (त)

सम्बन्धवाची त० प्रत्यय। व्युत्पत्ति ज्ञात नहीं। उदाहरण—कहीं चुबते थे उस तलवे में कांटे (फूल) (तलवा<तल+वा)।

२५१. -वाल (त)

हार्नली के विचार में अधिकार अथवा सम्बन्ध सूचित करने के लिए इस प्रत्यय का उपयोग होता है और इसका सम्बन्ध सं० शब्द "पाल" (रक्षक) से है। उदाहरण—आप खुदी सब दुनियावाल (इना) (दुनियां+वाल<पाल)।

अली होर आल दायम तेरे रखवाल (कु कु)

(रखवाल-रख<रक्षा+वाल<पाल) वाला<वाल+आ (पु)

उदाहरण—मैं मतवाली हूं लालन मतवाला (कु कु) (मत+वाल<पाल)।

तुमे ग़ैब के जानने वाले हैं (क नौ हा) (√जानना+वाला<पाल+आ)।—वाली <पु० वाल+ई (स्त्री)

उदाहरण—मैं मतवाली हूं लालन मतवाला (कु कु)

२५२. सा, सी

सादृश्यसूचक प्रत्यय। हार्नली ने इन दोनों की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द "सदृश" से मानी है, किन्तु चटर्जी संस्कृत "श" से इनका उद्‌भव मानते हैं। चटर्जी का मत उपयुक्त प्रतीत होता है। सा—चंद पूनम सा हो बेटा (इना)। सा—पछे सख्त दुश्मन है शैतान सा (न ना)। सी—तरवार जो बिजली-सी झलकाय (मन)

२५३. हरी<स० हर का स्त्रीलिंग (त)

उदाहरण—केता तो मनहरी मुंज आवे बल में (फूल) (मन+हरी)।

२५४. हार (त)

२५४. हार (त) हार्नली ने इसका संबंध संस्कृत के "अनीय" से बताया है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा इस व्युत्पत्ति को सन्तोषजनक नहीं मानते।[1] कुछ शब्दों में इस प्रत्यय के अर्थ को ध्यान में रखते हुए इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति हार<धार मानी जा सकती है—सब वाहिद देखनहार (इना)

पिंजरे हमारे नित ढोनहार (फूल) (ढोन+हार)।—हारा<हार (क) (क्र)। मैं कामिल मुर्शिद नफ़ा बख्शनेहारा (मे आ)।—हारा<हार+ई (स्त्री),

उदाहरण—ये माटी गुजरनहारी है (इना) (गुजरन+हारी)।

२५५. तुलनात्मक प्रत्यय—

दक्खिनी में अ फा के तत्सम शब्दों को छोड़कर तद्‌भव (सं०) शब्दों के साथ तुलनात्मक प्रत्यय नहीं जोड़ा जाता। केवल पंचमी विभक्ति के चिह्न "से" के आगे "अच्छा" अथवा "बहुत अच्छा" लिख कर तुलना की जाती है। इस अर्थ में संस्कृत प्रत्यय "तर" अथवा "तम" का प्रयोग नहीं किया जाता।

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हिं० भा० इ० § २३५, पृ० २४४।

उदाहरण—अथा मशहूर हातिम सूं करम में (फूल) (सूं=से, पंचमी विभक्ति)।

अरबी-फारसी प्रत्यय

२५६. अफ़ा के प्रत्यय प्रायः तत्सम (अफ़ा) शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। ये प्रत्यय साहित्यिक दक्खिनी में प्रयुक्त शब्दों के अभिन्न अंग बन चुके हैं। अफ़ा से अनभिज्ञ लोगों के लिए इनकी सूची लाभदायक सिद्ध होगी। साहित्यिक दक्खिनी में इनका रूप परिवर्तित नहीं हुआ है।

२५७. अंगेज़ (त) संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए—दोनों पीवे शराब इशरतंगेज़ (फूल) (इशरत+अंगेज़)

२५८. अत (त) विशेषण अथवा संज्ञा से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये इस प्रत्यय का उपयोग होता है। "अत" प्रत्यय युक्त शब्द दक्खिनी में स्त्रीलिंगवाची होते हैं—

उदा०—गफलत के कान सूं ···(मे आ) (ग़फ़लत<गाफिल+अत)।

इशारत बिन न खोले जुल्फ़ सुम्बुल (फूल) (इशारत<इशारा+अत)।

२५९. आ (क्र) विशेषणवाची—

तूं दाना और बीना ···(ख़ुना) (दाना<दानिश्तन+आ)

२६०. आइश (क्र), भाववाचक—

जो कूच आराइश बनाये ··· (मे आ) (आराइश<आरास्तन+आइश)।

२६१. आई (त), विशेषण से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये इस प्रत्यय का उपयोग किया जाता है—

उसकी आशनाई किये तो (मे आ) (आशना+आई)।

अवल इल्म अछे दानाई का (मे आ) (दाना+आई)।

कर्या साहब सूं अपने बेवफाई (फूल) (बेवफ़ा+आई)

२६२. आना (त), संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए, कर्तृवाचक—नूर नूराना संचित सार (इना) (नूराना<नूर+आना)।

आनी<पु० "आना" का स्त्रीलिंग—

उसे नूरानी तन मुहम्मद का बोलते हैं (मे आ) (नूर+आनी)।

तू इस नफ़सानी मार्या तूफ़ाँ (इ ना) (नफ़्स+आनी)।

२६३. आमेज़ (त), संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए—तूं रंगामेज़ कीता है चमन कूं (फूल) (रंग+आमेज़)।

२६४. आल (त) सम्बन्धसूचक प्रत्यय—

सारे तुज दुंबाले हैं (इना) (दुंबाला < दुंबाल, दुम+आल)।

२६५. आवत (त), भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए—उदा० सख़ावत (मे आ) (सख़ा+आवत)।

तूं हातिम नइं जो रहे तेरी सख़ावत (फूल)।

२६६. —आवर (युक्त), भावचाचक संज्ञा से विशेषण—

पत्या उस कीनावर कूं शाहज़ादा (फूल)

(कीना+आवर<आवर्दन)।

२६७. —इन्दह, (कृ) कर्तृवाचक—

उदाहरण—चरिन्दे होर परिन्द्यां का देखन रंग (फूल)

(चर+इन्दह) (पर+इन्दह्)।

२६८. —इश (त), भाववाचक—

उदाहरण—सो वो जो के नयन जम परवरिश पाया (फूल)

२६९. —ईयत (त), वस्तुवाचक संज्ञा से भावचाचक संज्ञा वनाने के लिए इस प्रत्यय का उपयोग होता है—

उदा० शरीयत व तरीक़त व ` ` `(मे आ) (शरा+ईयत)।

यहां कुछ आदमीयत नई ` ` `(ता ह) (आदमी+ईयत)।

२७०. —ई (त), (क) विशेषण से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए इस प्रत्यय का उपयोग किया जाता है। हिन्दी के भाववाचक प्रत्यय "ई" से फा० के इस प्रत्यय की बहुत समानता है—

बदबूई ना लेना सो ` ` `(मे आ) (बदबू+ई)

नादानी की बात ना करे ` ` ` (मे आ) (नादान+ई)

हुनरमन्दी में कुदरत के हुनर का (फूल) (हुनरमन्द+ई)

—ई (त) (सम्बन्धसूचक) (ख) उदा० —

ये मुक़ाम उसका शैतानी ` ` ` (मे आ)

(शैतान+ई)

,, ख़ुदी बरते दोय जहां (इ ना) (ख़ुद+ई)

—ई (त) (निरर्थक), (ग) ख़ुदा कहा कोई दर्दमन्दी होकर आये (मे आ) (दर्द-मन्दी=दर्दमन्द)।

२७१. —ई (त) (ईन) गुणवाचक—

उदा० दिया तूं ज़ुल्फ़े शह कूं अंबरी ख़ूब (फूल) (अंबर+ई)

२७२. —ख़ाना (त), स्थानवाची, 'ख़ाना' शब्द प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त होता है—

उदा० जूं के मकतबख़ाना ठार (इना) (मकतब+ख़ाना)

२७३. —ख़ारी (ख़ार+ई—भाव वा०), उदा० नमकख़ारी के अपनी सब धरम छोड़ (फूल) (नमक+ख़ार+ई)

२७४. —ख़ोर (त. भक्षक) चाड़ीख़ोर का मूं जग में काला (फूल) (चाड़ी+ख़ोर)।

२७५. —गर, (त—कर्तृवाचक), इस प्रत्यय से निर्माता का ज्ञान होता है—

बाज़ीगर ज्यूं ` ` `(इब्रा) (बाज़ी+गर)

रहे जल्वागर ताजा इख़लास में (गुल) (जल्वा+गर)

२७६. —गरी (<गर+ई, भाववाचक)

जो सनअतगरी तूं दिखाने पै जाय (गुल)
(सनअत+गरी)।
२७७. —गार (कृ. कर्तृत्ववाचक)।
उदा० हमन ऐस्यां के, ऐ, निस दिन तलबगार (फूल) (तलब+गार)।
तो मुझ से गुनहगार का क्या मजाल (गुल) (गुनह+गार)। गारी (गार का स्त्रीलिंग)
उदा० के सितमगारी कित (इना) (सितम+गारी)
२७८. —गाह (त०, स्थानवाची)—
हुस्न इश्क़ का बारगाह (ता० ह) (बार+गाह)
२७९. —गी (त, भावचावक)—
उतर वां मांदगी सारी उतारी (फूल) (मांदा+गी)
हर पात में ताज़गी जगी है (मन) (ताज़ा+गी)
तुझ उस्तादगी जग पै साबित करी (अना) (उस्ताद+गी)।
२८०. —गीर (त०, विशेषणवाचक)
कया शह बाग़बां सूं हो को दिलगीर (फूल)
२८१. —ज़दा (त०=युक्त)
वई आया दौड़ कर उस ग़मज़दे पर (फूल) (ग़म+ज़दा)
२८२. —ज़ाद (त०, सं. जातः)
उदा० हुई सो मेहरबां आखिर परीज़ाद (फूल) (परी+ज़ाद)
२८३. —तर, तुलनात्मक प्रत्यय (=सं० तर)
इबादत का मुज बाग़ धर ताज़ातर (गुल) (ताज़ा+तर)
२८४. —दां (त० = सं० ज्ञ)
नह हुम नक़ी है नुक्तादां ...(अली) (नुक्ता+दां)
२८५. —दान, (=सं० पात्र)
सागर तूं, न सुरमादान में मागा (मन) (सुरमा+दान)
२८६. —दानी (=दान+ई (स्त्री)।
दिसे याकूत की हो सुरमादान्यां (फूल) (सुरमा=दानी)
२८७. दार (=सं० धार)
उदाहरण—हो अक्ल पर गवाहदार (इना) (गवाह+दार)
—रवाना हुए जंग के नामदार (अली) (नाम+दार)
२८८. दारी (<दार+ई—भाववाचक)
न ताला होर मुज में दोस्तदारी (फल) (दोस्त+दारी)
२८९. नाक, संज्ञा से विशेषण बनाने के लिए इस प्रत्यय का उपयोग किया जाता है—
—ग़ज़बनाक हो ज्यूं ...(कु मु) (ग़ज़ब+नाक)

—अवल जिसकी चक तूं करे ताबनाक (गुल) (ताब+नाक)

—हवसनाकां दिखा कर अपने अन्दाज़ (फूल) (हवस+नाक)

२९०. बन्दी (<बन्द+ई, भाववाचक) इस प्रत्यय के योग से विशेषण भाववाचक संज्ञा बनता है—

गला कर बस किये हैं पेशबन्दी (फूल) (पेश+बन्दी)

२९१. बर (सं वर)

लगे फूल अनन्दां के मुंज नेहबर (कुंकु)

२९२. बां (<बान=रक्षक)

' ' 'होर जगत था बाग़ शह जूं बाग़बां था (फूल) (बाग़+बां)
पांच दरबान हैं (में आ) (दर+बान)

२९३. बाज़ (त० कर्तृवाचक)

किये सो इश्क़बाज़ी इश्क़बाज़ां (फूल) (इश्क़+बाज़)।—बाज़ी (बाज़+ई) कर्या उस ठार मैं चौगान बाज़ी (फूल) (चौगान+बाज़ी)

२९४. बारी (<बार=वर्ष+ई, भाव)

सिफ़तबारी के नमने जग में था पूर (फूल)

२९५. मान (सं० समान)

जो खम दिसता है हल्क़े आसमां का (फूल) (आस+मान)

२९६. वर, विशेषणसूचक=युक्त—

अक़्ल के आकास पर सच नामवर तूं सूर है (अली)

२९७. वा (त) (कर्तृवाचक)

तजम्मुल सूं गया वो पेशवा वां (फूल) (पेश+वा)

२९८. वार (त० कर्तृवाचक, योग्यतमासूचक)

उदाहरण—अदालत के वो मन्सब के सज़ावार (फूल)

२९९. शन (त, स्थानवाचक)

पड्या उस मुख के गुलशन में फिसल कर (फूल) (गुल+शन)

अनुकरणात्मक शब्द

३००. प्रकृति-प्रत्यय युक्त संज्ञाओं के अतिरिक्त दक्खिनी में अनुकरणात्मक संज्ञाओं की संख्या भी पर्याप्त है। ध्वनि के अनुकरण से अधिकांश अनुकरणात्मक संज्ञाओं का निर्माण होता है। ध्वनि, आकार आदि के अनुकरण से संज्ञा ही नहीं कुछ विशेषण और क्रियाविशेषण भी बनते हैं। इस प्रकार के शब्दों में कुछ ध्वनियों को दुहराया जाता है, कुछ शब्दों में अन्त्यानुप्रास रहता है। इस प्रकार के शब्द एक प्रकार से शब्दयुग्म होते हैं। यहां इस प्रकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं:—

ठनाठन खनाखन—	ठनाठन देख होर सुन कर खनाखन	(फूल)
रेलछेल (भीड़)—	...बेनिहायत रेलछेल (सब)	
चरचर (ध्वनि)	चराग में चरचर (सब)	
घुनपुन (कानाफूसी)—	एसियां बातां सुनसुन-घरघर में होती घुनपुन	(सब)
कलकल (कलह)—	जो देखे तो कलकल ... (सब)	
झगमग	जूं वह झगमग केरे ठार	(इ ना)

शब्द द्वित्व

३०१. अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की भांति दक्खिनी में भी शब्द द्वित्व की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस प्रकार की प्रवृत्ति का वर्गीकरण निम्न प्रकार है:—

(१) अर्थ पर बल देने के लिए शब्द बिना परिवर्तन के दुहराया जाता है। इस प्रकार के शब्दयुग्म का अर्थ युग्म के दोनों अंशों को मिला कर उपलब्ध होता है। इस प्रकार के शब्दयुग्म में "प्रति" अथवा "हरेक" का अर्थ उत्पन्न होता है:—

घट घट— सब घट घट नांदू देक (इ ना)
चै चै— कभीं चै चै करे शादी सूं हलहल (फूल)
छिन छिन— जेता उड़ उड़ छिन छिन
धन धन— धन धन यू भाग तेरे तूल (इ ना)
रत्ती रत्ती— ये रूप तेरा रत्ती रत्ती है (न ना)

(२) शब्दयुग्म के दूसरे अंश में कुछ परिवर्तन किया जाता है। ऐसे युग्म में भी दोनों अंशों का भिन्न भिन्न अर्थ नहीं निकलता:—

अटोटी पटोटी—छोटे पाशा अटोटी पटोटी मार को पलंग पो पड़ गये—(क इ पा)
चल विचल — हो चल विचल फौजां सकल (अली)
धूम धड़क्का — वड़े धूमधड़क्के से छोटे पाशा की ... (क इ पा)
फलफलाली — जंगल में जा कइं फलफलाली अछै (कु मु)
बुड़बुड़ा — तेरी बहरे हस्ती का यक बुड़बुडा (गुल)

(३) कुछ शब्दयुग्म दक्खिनी की विशेषता को प्रकट करते हैं। युग्म के प्रथम शब्द को एकारान्त बनाया जाता है और फिर उसी शब्द को युग्म का दूसरा अंश बनाते हैं। प्रथम शब्द का रूप संस्कृत के अकारान्त पुल्लिंगवाची शब्द के सप्तमी के एकवचन के समान होता है। खड़ी बोली में युग्म के प्रथम अंश को 'ओकारान्त' बनाकर प्रयोग किया जाता है। ऐसे शब्दयुग्म क्रिया-विशेषण की भांति प्रयुक्त होते हैं। दक्खिनी के उपर्युक्त शब्दों के साथ विभक्ति नहीं लगाई जाती फिर भी वे अधिकरण कारक को व्यक्त करते हैं और अर्थ में 'प्रत्येक' का बोध होता—

घटेघट — कीता है ग्यान हर घटेघट (मन)
चमने चमन — चमनेचमन लाला हुआ (अली)
घरेघर — घरेघर बजे तबल दौलत के तिस (गुल)

ठारेठार — फिर कूम निकले ठारेठार (इ ना)
ठावें ठावं — उसकी मारिफ़त ठावेंठावं (फूल)
पंत पंत
जंगले जंगल } — पंते पंत जंगले जंगल झाड़े झाड़ (कु मु)
फाड़ फाड़ गव्यां होर झुड़पे झुड़प फाड़े फाड़
पाते पात — पातेपात जीव बहलाता (सब)
बाले बाल — फूंक्या बालेबाल इसमें कैसा पवन (अ ना)
सहजेंसहज—सहजें सहज विकार यहां (इ ना)

(४) (क) कुछ शब्दयुग्मों में द्वितीय अंश का प्रथमाक्षर परिवर्तित हो जाता है और शेष अक्षर ज्यों के त्यों बने रहते हैं। भाषाविज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार के शब्दों का विशेष महत्व है। प्रदेश विशेष के लोग द्वितीय अंश के आरंभिक वर्ण में विशेष परिवर्तन करते हैं। उदाहरण के लिए कन्नड और मराठी भाषियों द्वारा उच्चारित हिन्दी शब्दों को प्रस्तुत किया जा सकता है। हिन्दी भाषी द्वितीय अंश के प्रथमाक्षर के स्थान पर 'वा' 'ओ' अथवा 'ऊ' का प्रयोग करते हैं जब कि मराठी और कन्नड भाषी 'गि' का। दक्खिनी ने मराठी तथा कन्नड़ का प्रभाव स्वीकार किया है—

द० बाजा गीजा (टे० रि० कर्नूल) — हि० बाजावाजा।
द० म्याना गीना (टे० रि० कर्नूल) — हि० म्यानावाना।
द० रोटी गीटी (टे० रि० कर्नूल) — हि० रोटी ओटी।

(ख) कुछ युग्मों में प्रथम वर्ण के स्थान पर 'म' उच्चरित होता है—
उदा०—सिपै की बेटी कू सुके मुके तुकड़े देती (ब सि बे)

(ग) कुछ युग्मों में द्वितीय अंश के प्रथमाक्षर के रूप में 'व' आता है—
उदा०—अंगार वंगार छोड़ सोने की हींट ले को भाग जाती। (क अ भा)
(टे० रि० हैदराबाद)

(५) खड़ी बोली के कुछ शब्दयुग्मों में एक अन्य विशेषता पाई जाती है। मुख्य अंश शब्दयुग्म के द्वितीय अंश के रूप में उच्चरित होता है और प्रथम अंश में मुख्य शब्द के प्रथमाक्षर को परिवर्तित करके रखा जाता है। 'अदल बदल', 'अगल बगल' इस कथन को पुष्ट करते हैं। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

खावें आला पाला (सु स) (पाला<पल्लव)
एगाना बेगाना (मे आ)

(६) अर्थ पर बल देने के लिए एकार्थक दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है:—
खेल खिलाड़ — न खेल खिलाड़ शह न शतरंज (मन)
(खिलाड़<खिलवाड़)
गड़ कोट — गड़ कोट के काफ़िरां कूं मार्या (मन)
(गड़<गढ़)

जान पहचान — जानो क़दीम जान पहचान (सब)
(जान पहचान<√जानना पहचानना)

ठोक पीट — लगावे ठोक पीटां वईं हुई दौड़ (फूल)
(ठोक पीट<√ठोकना पीटना)

मिट्टी धूल — उसपो मिट्टी धूल पड़ो (टे० रि० हैदराबाद)।

पूच विचार — वहां भले होर बुरे का पूच बिचार होवेगा (सब)
(पूच विचार<√पूछना विचारना)

चूम चाट — अंगूटी देख चूम चाट सर चड़ाया (सब)
(चूम चाट<√चूमना चाटना)

जन्नी अम्मा — मैं नैं आती जन्नी अम्मां मैं नैं आती (क चो श)
(जन्नी<√जननी)

लाड़ चाव — इस वास्ते बड़े लाड़ों चावों से ··· (क स पा)

(७) कभी कभी दो विरोधी शब्दों का अन्त्यानुप्रास के आधार पर युग्म बनाया जाता है—

गर यूं जो न जोड़ तोड़ है (मन) जोड़ तोड़<√जोड़ना तोड़ना।

(८) दो भिन्नार्थक शब्दों का युग्म बनता है। इस प्रकार के युग्म का द्वितीय अंश प्रायः निरर्थक होता है—

चूरा चारा — ··बोल्या सो वाले कू चूराचारा (टे० रि० हैदराबाद)

झाडा पाडां — सारे झाड़ां पाड़ां खा गया (क जा फ) (पाड़<पहाड़)

दिवाना धांडां — सोब से छोटा ज़रा दिवाना धांडा था (क स पा)

पूछ पछार — कुछ पूछ पछार ना होसी (सब)

सकाल दुकाल — लाइलाज कूं सकाल दुकाल होता है तो ···(सब)

सैर सपाटा — शहज़ादे कूं सैर सपाटे का भौतिच शौक़ था (क जा फ)

(९) नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में दो भिन्न भिन्न भाषाओं के समानार्थी शब्दों का युग्म के रूप में प्रयोग किया जाता है। डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी ने हिन्दी तथा बंगाली के ऐसे अनेक शब्दयुग्मों की विवेचना की है।[१] दक्खिनी का उदाहरण निम्न प्रकार है—

पावों में छाले आबेले पड़ गये (कला प) (आबेला<आबला, फ़ा)।

---

१. प्रेमी अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ६५–७३।

संज्ञा

अविकृत तथा विकृत रूप

३०२. संस्कृत में लिंग, वचन तथा कारक की जो व्यवस्था प्रचलित थी उसे मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं ने स्वीकार नहीं किया। नवीन भारतीय आर्य भाषाओं ने तत्सम तथा तद्भव संज्ञाओं को स्वीकार करते हुए भी लिंग-वचन सम्बन्धी उस व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया जो म भा आ में प्रचलित रही। इस दृष्टि से नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और वे आ भा आ से बहुत दूर चली गईं। साहित्यिक भाषाओं में जो कुछ पुराने नियम शेष बचे हैं, वे भी बोलचाल की भाषाओं में तीव्रता से लुप्त होते जा रहे हैं। डाक्टर ग्रिअर्सन ने आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए उन्हें अन्तरंग और बहिरंग समूहों में विभक्त किया है। यह विभाजन कुछ कारणों से विद्वानों ने एकमत से स्वीकार नहीं किया है किन्तु इस विषय में कोई मतभेद नहीं कि हिन्दीभाषी क्षेत्र की मध्यवर्ती बोलियों में लिंग तथा वचन की जो स्थिर व्यवस्था विद्यमान है, वह बाह्य क्षेत्र की बोलियों में दिखाई नहीं देती। ये बोलियां सरलता की ओर अग्रसर हो रही हैं। यह प्रवृत्ति प्रगति की सूचक है और इससे पता चलता है कि अपभ्रंश काल में लिंग, वचन तथा कारकों के विषय में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए वे साहित्यिक भाषाओं में गत ८०-९० वर्षों से रुद्ध दिखाई देते हैं, किन्तु उपभाषाओं और बोलियों में, विशेषकर मध्यवर्ती भाषा से दूर बोली जानेवाली बोलियों में वह परिवर्तन अधिक तीव्र दिखाई देता है। दक्खिनी अपने कुल की मध्यवर्ती बोली अथवा भाषा से बहुत दूर है और भिन्न कुल की भाषाओं के बीच विकसित हुई है, अतः उसमें वचन-लिंग संबंधी नियम अत्यधिक शिथिल दिखाई देते हैं।

यह शिथिलता पुराने समय से दिखाई देती है। जहां तक वचन का सम्बन्ध है, दक्खिनी में पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग के रूपों में खड़ी बोली की भांति विशेष अन्तर नहीं पड़ता। खड़ी बोली की भांति दक्खिनी में पुल्लिगवाची शब्दों का अविकृत रूप अपरिवर्तित नहीं रहता। आकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में अन्तिम स्वरों के आधार पर बहुवचन बनाते समय विशेष अन्तर नहीं पड़ता। पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग के कारण भी शब्दों के बहुवचन में अधिक परिवर्तन नहीं होता। इन सब कारणों से दक्खिनी में वचनव्यवस्था अत्यन्त सरल है। आ भा आ तथा म भा आ से प्राप्त शब्दों के बहुवचन ही नहीं अ फ़ा के अधिकांश शब्दों के बहुवचन भी दक्खिनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार बनाती है। साहित्यिक भाषा में ही अ फ़ा शब्दों का बहुवचन बनाते समय कहीं-कहीं अ फ़ा के नियम प्रयोग में लाये जाते हैं।

दक्खिनी विकासशील भाषा रही है। सात सौ वर्षों में लिंग-वचन सम्बन्धी व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। हिन्दी से संबंधित विविध बोलियों की लिंग-व्यवस्था तथा वचन-प्रणाली का प्रभाव उस पर पड़ा है। एक लेखक लिंग तथा वचन के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रभावों को प्रकट

करता है। वचन सम्बन्धी व्यवस्था धीरे-धीरे स्थिर हुई, किन्तु इस व्यवस्था के कारण साहित्यिक भाषा में भी अनेक अपवाद शेष रह गये।

३०३. पुल्लिग : अविकृत रूप

(क) अकारान्त :--इन दिनों पठित लोग अकारान्त पुल्लिगवाची शब्दों के अविकृत रूप का प्रयोग करते समय हिन्दी-उर्दू की भांति बहुवचन में कोई परिवर्तन नहीं करते, किन्तु पुरानी साहित्यिक भाषा और आजकल की सामान्य जनता द्वारा प्रयुक्त भाषा में 'अ' 'को' 'आं' होता है। कुछ उदाहरण यहां बोलचाल की भाषा से दिये जाते हैं:--

बम्मां गिरा गिरा को तोपां चला चला को (खतीव)

(ए० व० बम-ब० व० बमां अथवा बम्मां)

सात तीरां देके बोला ....(क इ पा) (ए० व० तीर--व० ब० तीरां)

हीरे जवाहिरां ले लो ....(क जा फ़)

(ए० व० जवाहिर--ब० व० जवाहिरां)

तमाम सांपां बिच्छुवां भार को फेंकी (क सि वे)

(ए० व० सांप--ब० व० सांपां)

एक वचन से बहुवचन बनाने की यह प्रणाली ख़ाजा बन्देनवाज़ की रचनाओं में भी दिखाई देती है। अ फ़ा के कुछ शब्दों का बहुवचन भी इसी ढंग से बनाया गया है--

चौबीस हज़ार पयम्बरां हुए (मे आ)

(ए० व० पयम्बर--ब० व० पयम्बरां)

पंजाबी तथा राजस्थानी में अकारान्त पुल्लिगवाची शब्दों के बहुचन में इसी प्रकार का परिवर्तन होता है। राजस्थानी में अकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्दों का बहुवचन भी इसी प्रकार बनाया जाता है। राजस्थान के भील लोग जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उसमें भी अ>आं की व्यवस्था प्रचलित है। दक्खिनी में स्त्रीलिंगवाची अकारान्त शब्दों का बहुवचन भी इसी प्रकार बनाया जाता है, जब कि खड़ी बोली में स्त्रीलिंगवाची अकारान्त शब्द को बहुवचन में एकारान्त बनाया जाता है। बीम्स के विचार में अविकृत अवस्था में स्त्रीलिग तथा पुल्लिगवाची शब्दों के बहुवचन बनाते समय हिन्दी से सम्बन्धित जिन उपभाषाओं और बोलियों में अन्तिम 'अ' का बहुवचन एँ, अन अथवा 'आं' से बनाया जाता है, वे सब संस्कृत के अकारान्त नपुंसकलिंगी शब्दों के प्रथमा के बहुवचन में प्रयुक्त होनेवाले 'आनि' प्रत्यय का प्रभाव व्यक्त करती है। राजस्थानी के प्राचीनतम रूपों में 'आन्' के संयोग से बहुवचन बनाने के उदाहरण मिलते हैं, जो 'आनि' का विकृत रूप है। यह 'आन्' आगे चलकर 'आं' में परिवर्तित हुआ[1]। यह बात दक्खिनी के 'आं' पर भी लागू होती है।

(ख) आकारान्त--आकारान्त शब्दों के बहुवचन में लेखकों ने एक निश्चित प्रणाली

---

१. बीम्स--कं० ग्रा० आ०, भाग २, § ४५, पृ० २०५।

(घ) ऊकारान्त—ऊकारान्त पुल्लिगवाची शब्द के अविकृत रूप में बहुवचन बनाते समय 'ऊ' को 'उवां' बनाते हैं—

तमाम साँपाँ—बिच्छुवां मार को फेंकी ··· (क सि बे)
(ए० व० बिच्छू—ब० व० बिच्छुवां)

आं<आनि, और 'व्' श्रुति के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

३०४. स्त्रीलिंग : अविकृत रूप

(क) खड़ी बोली में अकारान्त स्त्रीलिंगी शब्दों के बहुवचन में अन्तिम अकार को 'एं' बनाते हैं किन्तु दक्खिनी में पुल्लिग की भांति 'अ' को आं (<सं० नपुंसकलिंगी प्रथमा के बहुवचन वाला प्रत्यय 'आनि') बनाते हैं। मारवाड़ी तथा मेवाड़ी में भी यह रूप प्रचलित है। दक्खिनी के उदाहरण—

उन बातां का क्या सवाद (इ ना) (बात-बातां)। इन्द्रियां भी नायक मन (इना) (इन्द्रिय-इन्द्रियां)। लगे चश्मे होकर नैनां उबलने (फूल) (नैन-नैनां)। बूंदां मेंह की दिसें तिस दल अँगे कम (फूल) (बूंद-बूंदां)।

मत किसी कू सराप दे जूं राँडाँ (मन) (राँड–राँडाँ)
जिते मेघ धारां ······ (इन्ना) (धार-धाराँ)

(ख) आकारान्त—या>यां जिन शब्दों के अन्त में 'या' होता है उनके बहुवचन में अन्तिम 'आ' को सानुनासिक बना देते हैं। खड़ी बोली में भी ऐसे शब्दों का बहुवचन इसी प्रकार बनाया जाता है। दक्खिनी का उदाहरण—

अजब नइं गर चिड़ियां सब मिल को आवें (फूल)
(ए० व० चिड़िया-ब० व० चिड़ियां)

आं>यां—कुछ आकारान्त शब्दों में अपवाद स्वरूप 'यां' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। यहां भी आं' का सम्बन्ध 'आनि' से है। और 'य्' का आगम श्रुति के रूप में हुआ है—

उदा०—सुने यू बात मायां होर भायां (फूल)

पंजाबी में 'मां' शब्द का बहुवचन में 'मावां' रूप प्रयुक्त होता है। बीम्स के विचार में पंजाबी का मूल शब्द 'मां' न होकर 'माउं' है और वह बहुवचन में 'मावां' बनता है।[1] दक्खिनी का मूल शब्द 'मां' न होकर 'माई' है। हिन्दी की कई बोलियों में यह रूप व्यवहार में लाया जाता है। 'माई' का बहुवचन 'माइयां' बनता है। 'इ' के लोप के कारण दक्खिनी में 'मायां' रूप प्रचलित हुआ।

---

१. बीम्स, कं० ग्रा० आ०, भाग २·§४३, पृ० २०२।

(ग) **ईकारान्त**--ई>यां अथवा ई>इयां। ईकारान्त स्त्रीलिंगवाची शब्दों में पुल्लिंग-वाची शब्दों की भांति बहुवचन में 'ई' के स्थान पर 'यां' प्रयुक्त होता है। परवर्ती दक्खिनी में 'ई' को 'इयां' बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। 'आं' का सम्बन्ध संस्कृत के नपुंसक लिंगी प्रत्यय 'आनि' से है और 'य्' का आगम श्रुति के रूप में हुआ है। मारवाड़ी तथा मेवाड़ी में 'ई>यां' तथा कुमायूंनी में ई<इयाँ के द्वारा बहुवचन बनता है। दक्खिनी के उदाहरण इस प्रकार हैं:—

नार्यां देख मदन क्यां मात्यां मन में रूत उचावा (खु ना)
(नारी–नार्यां)

कुत्यां के दांत थे बल्के दरांत्यां (फूल)
(दरांती-दरांत्याँ)

सुआं होकर गले मछल्यां के टांक्या (फूल)
(सुई–सुयाँ)

हुए दो तरफ़ ते सलामांलक्यां (कु मु)
(सलामांलकी-सलामांलक्यां)

जलेंगे जहन्नम में लकड़्यां नमन (न ना)
(लकड़ी-लकड़्यां)

शहदो लबन की नद्यां ········ (अली)
(नदी–नद्यां)।

सुरज अरस्यां मंगाया है········ (अली)
(अरसी-अरस्यां)

गोप्यां है इनन कूं ओ है जो कान (मन)
(गोपी-गोप्यां)

जा जा, उपल्यां चुन को ला ··· (क अ मा)
(उपली-उपल्यां)

कमल हातां में ले सकियां (कु कु)
(सकी<सखी–सकियां)

ये पातरनियां सोब परियां च हैं (क प श)
(पातरनी–पातरनियां)

(घ) ऊकारान्त—ऊकारान्त शब्दों का बहुवचन बनाते समय 'ऊ' को 'उवां' बनाते हैं। 'व' श्रुति के रूप में और 'आं' 'आनि' का रूपान्तर।

उदाहरण

जरा जुवां तो देक (क सि बे) (जूं–जुवां)

(ङ) ओकारान्त—ओकारान्त शब्दों में 'ओ' को आं<सं० प्रत्यय 'आनि' में परि-वर्तित करके बहुवचन बनाते हैं:—

बाइकां बनेंगी रांडां · · · · (खतीब)

(बाइको-मरा०, बाइकां)

(च) ओकारान्त––ओकारान्त शब्दों में भी 'औ' को 'आं' में परिवर्तित करके बहुवचन बनाते हैं:—

कहा उस धन सूं यूं फिर कर सवां खा (फूल)

(ए० व० सौं––ब० व० सवां)

सवां की झूट खाते हो ? (अली)

३०५. पुल्लिंग : विकृत रूप

(क) अकारान्त––अकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों की विकृत अवस्था में बहुवचन बनाते समय विविध रूपों का प्रयोग किया जाता है। साहित्यिक तथा बोलचाल की भाषा में निम्नलिखित रूप प्रचलित रहे हैं:—

अ > आँ––पुल्लिंगवाची अकारान्त शब्द के साथ जब बहुवचन में विभक्ति लगाई जाती है तब अन्तिम अकार 'आं' में रूपान्तरित होता है। संस्कृत स्वरान्त शब्दों के साथ षष्ठी के बहुवचन में 'आनाम्' कारक-चिन्ह प्रयुक्त होता है। प्राकृत में 'आनाम्' 'आणम्' बनता है। प्राकृतों में षष्ठी विभक्ति का उपयोग अन्य कारकों में भी किया जाता था। अपभ्रंश काल में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग अन्य कारकों में अधिक होने लगा। संस्कृत की षष्ठी के बहुवचन के प्रत्यय को 'न भा आ' के विभक्ति सहित शब्द के बहुवचन में सुरक्षित रखा गया है। पूर्वी हिन्दी में इस नियम के अपवाद मिलते हैं।[१] दक्खिनी में कर्त्ताकारक के अतिरिक्त अन्य कारकों में विभक्तिसहित शब्द के बहुवचन में षष्ठी के बहुवचन वाले रूप को आधार बनाया जाता है। सं० आम् अथवा आनाम् प्रा० में आणम् बनता है और हिन्दी में यह आणस् औं अथवा 'ओं' का रूप धारण करता है। कुछ बोलियों में यह 'आणम्' 'आं' में परिवर्तित होता है। संस्कृत नपुंसकलिंग में प्रथमा के बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले 'आनि' से रूपान्तरित 'आं' से यह आं<आणम्<आनाम् भिन्न प्रतीत होता है। दक्खिनी में आं<आणम्<आनाम् के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

पांच अनासिरां का · · · · · · (मे आ)

(अनासिर का-अनासिरां का)

मेरे दोस्तां कू तूं नित दे जनत (कु कु)

(दोस्त कूं–दोस्तां कूं)

मेरे दुश्मनाँ कूं अगिन या समी (कु कु)

(दुश्मन कं–दुश्मनां कूं)

· · · कमल हातां में ले सकियां (कु कु)

(हात में–हातां में)

---

१. चटर्जी––ओ० डे० बें० § ४८६, पृ० ७२५।

वो मुलक परियां–देवां का है (क इ पा)

(देव का—देवां का–देवानाम् का)

अ>औं—परवर्ती दक्खिनी में खड़ी बोली की भांति अकारान्त पुलिंग शब्द के बहुवचन में 'अ' को 'औं' (=ओं) बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बीम्स के विचार में विकारी रूप में प्रयुक्त होनेवाला यह 'ओं' अथवा 'औं' सं० षष्ठी के ब० व० के प्रत्यय आनाम्>प्रा० आणं का रूपान्तर है। 'न्' अथवा 'ण्' की क्षतिपूर्ति के लिए 'अ' अथवा 'आ' का उच्चारण 'ओं' होने लगा[1] और अनुस्वार शेष रह गया। दक्खिनी का उदाहरण इस प्रकार है:—

भोत दिनों के बाद (क नौ हा)

(दिन के–दिनों के)

अ<अन्—कुछ पुल्लिगवाची अकारान्त शब्दों के सविभक्तिक प्रयोग में अन्तिम अकार के साथ 'न' और जोड़ते हैं। भोजपुरी में खड़ी बोली की भांति सविभक्तिक रूप अ>ओं से बनता है किन्तु षष्ठी में अन्तिम अकार के साथ 'न' जोड़ते हैं। कन्नौजी तथा मागधी में बहुवचन के लिए 'न' और मैथिली में 'नि' का प्रयोग होता है। यह रूप भी षष्ठी के बहुवचन 'आनाम्' अथवा प्रा० आणं से बना हुआ है। दक्खिनी में षष्ठी के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में भी अन्तिम अकार के साथ 'न' का प्रयोग होता है—

तो होवे तिस रुखन ते यू ज़र्रे कूं नावं (गुल)

(ए० व० रुखते—ब० व० रुखन ते)।

है कड़ोरन केरा हीरा (खु ना)

(कड़ोर केरा–कड़ोरन केरा)

दो जनन के चित (मन)

(जन के–जननन के)

हर वक़्त बुदन के बुद में अछ (मन)

(बुद<बुध के–बुदन के)

(ख) **आकारान्त**—जहां तक एकवचन का सम्बन्ध है, हिन्दी में केवल आकारान्त शब्द ही ऐसे हैं जिनके विकारी और अविकारी रूप में परिवर्तन होता है। दक्खिनी में आकारान्त सविभक्तिक शब्द के एकवचन में 'आ' 'ए' में परिवर्तित होता है। आ<ए को भाषावैज्ञानिक पुल्लिगी सर्वनाम के कर्त्ताकारक के बहुवचन से प्रभावित मानते हैं।

उदा०—दरवाज़े पर........ (मे आ)

आ<ओं—खड़ी बोली में विकारी बहुवचन बनाते समय अन्तिम 'आ' को 'ओं' में परिवर्तित कर विभक्ति लगाते हैं। हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों में 'ओं' के स्थान पर 'औं' का

---

१. **बीम्स—कं० ग्रा०, आ०, भाग २. § ४७, पृ० २०९।**

प्रयोग होता है। भाषावैज्ञानिक संस्कृत में सम्बन्ध कारक के बहुवचन के लिए प्रयुक्त होनेवाले प्रत्यय आनाम् (आम्)>प्रा० आणम् से इसका संबन्ध जोड़ते हैं। सम्बन्ध कारक के अन्य वचनों में भी इसका उपयोग होता है। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

छह बेटौं के तीर मिले...... (क इ पा)

(बेटे के—बेटों के)

छेवों शहज़ादौं कू करके लाये (क इ पा)

(शहज़ादे कू—शहज़ादौं कू)

आ<यां—राजस्थानी में स्त्रीलिंगवाची शब्दों के सविभक्ति बहुवचन में ईकारान्त शब्दों में 'ई' के स्थान पर 'यां' आता है। कुछ पुल्लिंगवाची शब्दों में भी यह परिवर्तन देखा जाता है, जैसे—'माल्यां रो=मालियों का'। दक्खिनी में ईकारान्त ही नहीं आकारान्त शब्दों में भी यह परिवर्तन होता है। 'यां' में 'आं' सं० ष० बहुवचन 'आनाम्'>प्रा० आणं का विकृत रूप है और 'य्' का आगम श्रुति के रूप में हुआ है। दक्खिनी में इस प्रकार के परिवर्तन के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

मेरे बन्द्यां कूं......... (मे आ)

(बन्दे कूं—बन्द्यां कूं)

निछल प्याले जो हीर्यां के....... (कु कु)

(हीरे के—हीर्यां के)

जुहल छिप रह्या सात पद्र्यां के आड़ (गुल)

(पर्दा के—पद्र्यां के)

मगर तिस पै तार्यां का अफ़शान है (गुल)

(तारे का—तार्यां का)

फ़रिश्त्यां का न था फेरा...... (अली)

(फरिश्ते का—फरिश्त्यां का)

खांद्यां पै उसके अपने दस्त (मन)

(खांदा (<स्कंध) पै—खाद्यां पै)

(ग) **ईकारान्त**—ई>यां—अविकारी ईकारान्त शब्द की भांति सविभक्तिक ईकारान्त शब्द के बहुवचन में भी 'ई' को 'यां' में परिवर्तित करके कारक चिन्ह जोड़ा जाता है। 'य्' श्रुति के रूप में और 'आं' 'आनाम्' का परिवर्तित रूप है:—

इत्ते आदम्यां में एक भी नईं दिस्या (बोली—टे० रि० करनूल)

(आदमी में—आदम्यां में)

ई<इयां—अविकारी स्थिति के समान विकारी स्थिति में भी बहुवचन बनाते समय 'ई' को 'इयां' आदेश होता है:—

हिरदै के जोसियां का (अली)

(जोसी का—जोसियां का)

(घ) ऊ<उवां—

'वां' में 'व्' श्रुति के रूप में और 'आं'<आनाम्<प्रा० आणम्।

कुछ कुछ दारवां का मोप दरकार है (सब)

(दारू का—दारवां का)

३०६. स्त्रीलिंग : सविभक्ति बहुवचन

स्त्रीलिंगवाची अकारान्त शब्दों का बहुवचन बनाते समय 'अ' को 'आं' में परिवर्तित करके कारक चिन्ह लगाया जाता है।

उदाहरणः—

उन बातां का क्या सवाद (इ ना)

(बात का—बातां का)

अन्नूं बन में तिस बुलबुलां का है शोर (गुल)

(बुलबुल का—बुलबुलां का)

अ<अन—कुछ शब्दों में अन्तिम अकार के पश्चात् 'न' जोड़ कर कारक चिन्ह लगाया जाता है। इस विषय में दक्खिनी का ब्रज भाषा, नैपाली, भोजपुरी, मागधी और मैथिली से साम्य है। 'अन' का सम्बन्ध षष्ठी के बहुवचन वाचक चिन्ह आनाम् (आम्) से है।

सौकन की झल (सब)

(सौक की—सौकन की)

सौतन में पीव मुंज कूं...... (अली)

(सौत में-सौतन में)

(ख) ईकारान्त—ई>इयाँ—इस परिवर्तन का सम्बन्ध भी षष्ठी के बहुवचनवाचक चिन्ह 'आनाम्' से है। क्षतिपूर्ति के लिए 'आ' का उच्चारण 'औ' होने लगा। 'य्' का आगम श्रुति के रूप में हुआ।

उदाहरण—

पुरियौं का चल गया...... (क नौ हा)

(पुरी<पूरी का-पुरियों का)

ई<इन—यहाँ भी 'न' का सम्बन्ध सं० 'आनां से जोड़ा जाता है। उच्चारण की सुविधा के लिए दीर्घ ई 'इ' में परिवर्तित होती है।

तन के मदन पुरिन में...... (अली)

(पुरी में—पुरिन में)

दुतिन के दिल सब हुआ अवारा (अली)

(दुती<दूती के—दुतिन के)

ई<यां—पुल्लिगवाची ईकारान्त शब्दों की भांति स्त्रीलिंग के ईकारान्त शब्दों का विकारी बहुवचन बनाते समय 'ई' को 'यां' आदेश होता है। 'य्' श्रुति के रूप में और आं<आनाम्।

खोयां आ कुंवार्यां की...... (कु क़ु)

(कुंवारी की—कुंवार्यां की)

(ग) ऊ<वौं—स्त्रीलिंगी ऊकारान्त शब्दों के विकारी बहुवचन में 'ऊ' वौं में रूपान्तरित होता है। खड़ी बोली में 'ओं' का आगम और 'ऊ' 'उ' में परिवर्तित होता है—

भवौं कू दूसरी सवारी पौ जाना था (क इ पा)

(भऊ कू—भवौं कू)।

३०७. अ फ़ा बहुवचन

दक्खिनी में अ फ़ा शब्दों की वचन व्यवस्था सामान्यतया हिन्दी की वचन-व्यवस्था के अनुसार होती है। कुछ स्थलों पर साहित्यिक भाषा में अ फ़ा शब्दों का बहुवचन अ फ़ा व्याकरण के नियमानुसार बनाया जाता है।

(क) कुछ शब्दों के आरंभ में 'अ' का आगम होता है और मध्य में स्वर परिवर्तन करके बहुवचन बनाया जाता है—

अवल सिद्दीक़ अबाबकर है असहाब (फूल)

(साहब—असहाब)

सोंहार नित करे तूं अफ़वाज अश्क़िया का (अली)

(फ़ौज—अफ़वाज)

तेरे अह्काम मह्शर लग (अली)

(हुक्म—अह्काम)

तो अक़्ल अगे पस्त अफ़लाक अछे (अ ना)

(फ़लक—अफ़लाक)

रंगारंग तुज ह्त की अशकाल है (गुल)

(शक्ल—अशकाल)

उसका क्या मुंज कहो अख़बार (इ ना)

(ख़बर—अख़बार)

अरवाह् केरा चंदव जा (इ ना)

(रूह—अरवाह्)

(ख) कुछ शब्दों में आरंभिक वर्ण में परिवर्तन करके बहुवचन बनाया जाता है—

उश्शाक़ सूं हिलजे है तेरे लट के सर दाम (कु कु)

(आशिक़–उश्शाक़)

(ग) कुछ शब्दों के मध्य में वर्णागम होता है अथवा मध्य के किसी वर्ण को परिवर्तित करके बहुवचन बनता है—

मलायक नूर दरसन के........ (कु कु)

(मलक–मलायक)

पूरे बँधा क़वायद (अली)

(क़ायदा–क़वायद)

क़ुलूब मोमिन का आता है (इ ना)

(क़ल्ब–क़ुलूब)

जे कुच नवा करे शआर (इ ना)

(शेर–शआर)

(घ) कुछ शब्दों में प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया जाता है—

आत तिसरा यू ताल्लुक़ात तोड़े (मन)

(ताल्लुक़+आत)

,, मुरादात का जम तुरंग सारा (कुतुब)

(मुराद–मुरादात)

,, कीता उन सब मख़लूकात (इ ना)

(मख़लूक–मख़लूकात)

ऐन तेरी नालेन का साया...... (अली)

(नाल+ऐन)

लिंग और विभक्ति

३०८. पश्चिमी हिन्दी और अन्य बोलियां

पश्चिमी हिन्दी में संज्ञा और क्रिया में लिंग-भेद का ध्यान विशेष रूप से रखा जाता है, किन्तु मध्यवर्ती हिन्दी (खड़ी बोली) के क्षेत्र से जो बोलियां जितनी दूर पड़ती हैं उनमें लिंगभेद उतना ही कम होता जाता है। खड़ी बोली तथा जिन आर्य भाषाओं में लिंग व्यवस्था का अधिक पालन किया जाता है उनके सम्बन्ध में डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का विचार है कि लिंगभेद के सम्बन्ध में ये भाषाएं कोल भाषाओं से प्रभावित हुई हैं। मराठी तथा गुजराती द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क में रही हैं अतः इन दोनों में आज भी नपुंसक लिंग विद्यमान है, जब कि खड़ी बोली तथा अन्य भाषाओं में केवल स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग ही हैं।[१]

दक्खिनी ख़ड़ी बोली, मराठी तथा गुजराती से प्रभावित हुई है, किन्तु उसने खड़ी बोली की लिंग-व्यवस्था स्वीकार की। दक्खिनी में नपुंसक लिंग नहीं है।

३०९ लिंग परिवर्तन

दक्खिनी में कुछ शब्द मूलतः स्त्रीलिंगवाची अथवा पुल्लिंगवाची हैं। अधिकांश शब्दों में प्रत्यय लगाकर अथवा वर्ण-परिवर्तन के द्वारा लिंग परिवर्तन किया जाता है। शब्द-निर्माण का विवेचन करते हुए प्रत्ययों का परिचय दिया जा चुका है। यहां कुछ ऐसे प्रत्ययों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है जो मुख्यतः लिंग-परिवर्तन के लिए प्रयुक्त होते हैं—

(१) **अन**—इस प्रत्यय का उपयोग पुल्लिंगवाची शब्दों को स्त्रीलिंगी बनाने के लिए किया जाता है—

····उस मालन सूं नादानी (फूल)
(माली—मालन)

अपनी दुलन को ले को.... (लो गी)
(दूला—दुलन)

मैं समजी कोई गौलन है मेरी गल्ली (लो गी)
(गौली—गौलन)

(२) **ई**—संस्कृत में कुछ पुल्लिंगी शब्दों को स्त्रीलिंगी बनाने के लिए ई (<ङीप् अथवा ङीष्) प्रत्यय लगाया जाता है।[२] हिन्दी में इस प्रत्यय का उपयोग अकारान्त पुल्लिंगी शब्दों

---

१. **सुनीतिकुमार चटर्जी—ओ० डें० बें** § ४८३, पृ० ७२२

२. **पाणिनि-अष्टाध्यायी**, ४. १०५-८, ४. १० १५-१६०

के साथ किया जाता है। कुछ शब्दों में इस प्रत्यय का उपयोग लघुता-सूचन के लिए होता है। दक्खिनी में इसके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

पंछी कूं मछी के त्यूं तैराने (म न)

(मछी—मछ<मत्स्य+ई)

यक हौज कने करें ढिगारी (मन)

(ढिगारी—ढिगार+ई)

देख ख्याल मोहन्यां के ······(कु कु)

(मोहनी—मोहन+ई)

उस बहमनी हिन्दू का ······(कु कु)

(बहमनी—बहमन+ई)

(३) आ>ई—आकारान्त पुल्लिंगी शब्दों को ईकारान्त बनाकर स्त्रीलिंगवाची बनाया जाता है। विशेषणों में भी आ>ई से लिंग-परिवर्तन होता है। भाषा वैज्ञानिक इस 'ई' को प्रत्यय मान कर उसका सम्बन्ध संस्कृत के 'इका' प्रत्यय से जोड़ते हैं—

दंडी सो कहकशां की कर ······ (अली)

(दंडी—दंडा+ई)

(४) नी—हार्नली इस प्रत्यय का उद्भव संस्कृत प्रत्यय अनीय>प्रा० अणीअ अथवा अणअ से मानते हैं।

उदाहरण—

मुलम्मा सूं चंदनी के रोशन दिया (अ ना)

(चंदनी—चांद+नी)

सो कुतुबशह पिव भोगनी (कु कु)

(भोगनी—भोग+नी)

अपै बी यारनी उस यार की हुई (फूल)

(यारनी—यार+नी)

चली बन बनवास ले बैरागनी हो (फूल)

(वैरागनी—वैराग+नी)

येक बन्दरनी बैठी हुयी है (क इ पा)

(बन्दरनी—बन्दर+नी)

३१०. स्त्रीलिंग से पुल्लिंग

कुछ स्त्रीलिंगवाची शब्दों से पुल्लिंगी शब्द बनाये जाते हैं। ऐसा करते समय अकारान्त तथा ईकारान्त शब्दों को आकारान्त बनाते हैं—

सुख़न का सट तूं आलम में आवाज़ा (फूल)

(आवाज़ा—आवाज़+आ)

हरम की इस परी की तिस परे सूं (फूल)

(परा—परी, ई>आ)

परा जो मुवा है तेरे हात सूं (कु मु)

अब बिल्ला दिसने लग्या (क चो रा)

(बिल्ला—बिल्ली, आ>ई)

नज़र का वहां चाला कहां (इ ना)

(चाला—चाल+आ)

३११. लिंग अव्यवस्था

आरंभिक काल से दक्खिनी में लिंग व्यवस्था शिथिल रही है। जो लोग विदेश से यहां आये और जिनकी मातृभाषा अरबी,'फ़ारसी, तुर्की आदि में से कोई एक थी, वे दक्खिनी (=हिन्दी) की लिंग व्यवस्था को ठीक ठीक हृदयंगम नहीं कर सकते थे। आ भा आ तथा म भा आ से प्राप्त तत्सम तथा तद्भव शब्दावली के लिंग-निर्धारण में समूचे हिन्दी भाषी क्षेत्र में समान नियम प्रचलित नहीं थे। आज भी लिंग के सम्बन्ध में अनियमितता विद्यमान है। हिन्दीभाषी लिंग व्यवस्था को बहुत कुछ परम्परा तथा प्रयोग से अपनाते हैं। दक्खिनी बोलने वाले भी लिंग के सम्बन्ध में एकमत नहीं थे। अरबी तथा फ़ारसी में हिन्दी की भांति लिंग व्यवस्था नहीं है। जब अ फ़ा के शब्दों का प्रयोग दक्खिनी में होने लगा तो क्रिया में लिंग भेद के कारण यह आवश्यक था कि अ फ़ा से प्राप्त शब्दों को दक्खिनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग में विभक्त करती। इस प्रकार के विभाजन का कोई उपयुक्त आधार नहीं था। अतः बहुत से शब्दों के सम्बन्ध में लेखक का विवेक प्रमाण माना गया। ज्यों ज्यों समय बीतता गया यह अनियमितता बहुत कुछ समाप्त हो गई, किन्तु आज भी कुछ शब्दों के सम्बन्ध में लिंग संबंधी सन्देह बना हुआ है। म भा आ से प्राप्त शब्दावली के लिंग के सम्बन्ध में कम किन्तु अ फ़ा शब्दावली के सम्बन्ध में लिंग सम्बन्धी अव्यवस्था अधिक पाई जाती है। एक लेखक दो-दो रूपों का प्रयोग करता है।

(क) म भा आ से प्राप्त शब्दों में लिंग-व्यवस्था—

सुरज का आंच भोतीच तेज़ होगा (फूल)
(आंच सं० अर्चि–अर्च+इन्, स्त्रीलिंग। हि० आंच स्त्रीलिंग)
यू आंच है सांचा (मन)
या के देखें जैसा धूल (इ ना)
(धूल<सं० धूलि, हि० धूल, स्त्रीलिंग)
दे तेरे सना का सब किस कूं शकर (फल)

(शकर<सं० शर्करा, स्त्रीलिंग)

पालती है, जासूस है, भेदी है, चोर है, इसका है। माया (सब)
दाल्या है तोड़ सकला मतगत सो जोगिया का (अली)
(मतगत पु०<सं० मतिगति, स्त्रीलिंग)

(ख) संस्कृत के कुछ नपुंसक लिंगी शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंगी होते हैं। इस प्रकार के कुछ शब्द दक्खिनी में पुल्लिगवाची हैं—

जूं भड़का देक अंगार (इ ना)
(द० अंगार पु०, सं० अंगार नपुं०, हिं० अंगार-स्त्री०)
मुमतना के आंक सूं.... (मे आ)
(द० आंक–पु०<सं० अक्षि नपुं०, हिं० आंख-स्त्री०)

(ग) कुछ सं० तत्सम शब्द विपरीत लिंग में प्रयुक्त होते हैं—

विलास—हो यूं शेर मजलिस वचन की विलास (इब्रा)
चित्र—गगन नई तेरी चित्र की शान का (गुल)
उपमा—उसमें उपमा पकड़्या जाय (इ ना)

३१२. अ. फ़ा. शब्दावली में लिंग अव्यवस्था

तो मुझ से गुनाहगार का क्या मजाल (गुल)
तेरा याद रख मुझ हरेक बात में (गुल)
(द० याद पु०, हिं० याद–स्त्री०)
फ़लक तुझ हुई नौगजी तास तूर (गुल)
(हि० फ़लक पु०)
क़यामत-में देखेगा अपना सज़ा (मन)
होर फ़ारसी इसते अत रसीला (मन)
एक आवाज़ आया (मे आ)
तेरा तारीफ़ करना एक साअत (फूल)
सफ़ा कर राह मेरा (फूल)
अजब तासीर था वां की हवा का (फूल)
अक़्ल किया वां गमन (अली)
यते चलते थे किश्त्यां होर खड़े थे (फूल)
तमाम का रूह (मे आ)
ये कौन बरजे उसके मौज (इ ना)

अ फ़ा के जिन शब्दों में 'अत' प्रत्यय जुड़ता है, हिन्दी में वे सब स्त्रीलिंगवाची माने जाते हैं, किन्तु दक्खिनी में ऐसे कुछ शब्द पुल्लिंगवाची होते हैं—

जिसते जो यू सल्तनत है सारा (मन)
खुदा का मारिफ़त तुझ सूं है पैदा (फूल)

३१३. दक्खिनी में कुछ हिन्दी शब्दों का लिंग-परिवर्तन होता है—

सोगन्द तेरा जो बाज तेरे (मन)
बेहतर यू तन की ठाट टूट जाय (मन)
हर आन सुधन के सुद में अछ (मन)
ऐसा उनमें पड्या फूट (इ ना)
दाड़ी मूंछ्यां आया तो क्या मर्द हुए (सब)
सब हीरों के रे खान (खु ना)
हमें क्या होर क्या हमारा समझ (अ ना)
चली तार तम्बूर की कालवे (गुल)

विभक्ति

३१४. म भा आ के अन्त तक कारक तथा कारक चिन्हों में बहुत अन्तर हो चुका था। संस्कृत में बिना सुप् तथा तिङ् प्रत्ययों के किसी संज्ञा अथवा क्रिया की पद संज्ञा नहीं होती थी। म भा आ में सुप् प्रत्ययों अर्थात् कारक चिन्हों के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग होने लगा था। संस्कृत में कारक चिन्ह संज्ञा का अंग बन कर प्रयुक्त होता था। अपभ्रंश काल में इस प्रकार की व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो गई। अपभ्रंश काल में कारकचिन्ह संज्ञा के अंग न बन कर स्वतंत्र रूप से वाक्य विन्यास में सहायता देते थे। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कारकचिह्न संज्ञा से भिन्न हैं। भाषा वैज्ञानिकों के विचार से वाक्य में प्रयुक्त संज्ञाओं को तथा संज्ञाओं से क्रिया को सम्बद्ध करने के लिए संज्ञा के अतिरिक्त जो शब्द प्रयुक्त होते हैं, वे सब आरंभ में संज्ञा अथवा अव्यय के रूप में प्रयुक्त होते थे। अधिक व्यवहार के कारण इस प्रकार के शब्दों तथा अव्ययों में बहुत परिवर्तन हुआ।

नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में कारक-चिन्ह अथवा परसर्ग के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। ब्रज, अवधी आदि में यह प्रवृत्ति प्राचीन समय से है। दक्खिनी में भी कारक-चिन्हों के सम्बन्ध में वक्ता अधिक ध्यान नहीं देता। बोलचाल की भाषा में कारक चिन्हों की उपेक्षा की जाती है। दक्खिनी के कारक-चिन्हों पर हिन्दी से सम्बन्धित अनेक बोलियों का प्रभाव पड़ा है, फिर भी वह खड़ी बोली से अधिक समानता रखती है।

३१५. ने—पूर्वी तथा पश्चिमी नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में समान रूप से विभक्तियों का ह्रास हुआ है। जहां तक कर्ताकारक के चिन्ह का प्रश्न है पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी को दो भागों में विभक्त किया जाता है। पूर्वी बोलियों में कर्ताकारक की विभक्ति का सर्वथा अभाव है। पश्चिमी हिन्दी में भी कर्ताकारक के साथ विभक्ति का सर्वत्र प्रयोग नहीं किया जाता। सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक प्रयोग में 'ने' का उपयोग होता है। कर्ताकारक के चिन्ह के सम्बन्ध में दक्खिनी पूर्वी बोलियों से अधिक समानता रखती है। साहित्यिक दक्खिनी में कुछ

स्थलों पर 'ने' का प्रयोग मिलता है किन्तु सामान्यतया विभक्ति रहित संज्ञा का प्रयोग ही किया जाता है। बोलचाल की भाषा में इस चिन्ह का प्रयोग कम मिलता है।

कैलाग के विचार में आज से तीन सौ वर्ष पूर्वी हिन्दी में 'ने' का प्रयोग नहीं होता था,[१] किन्तु दक्खिनी साहित्य के प्रकाशन के पश्चात् यह तथ्य सामने आया है कि आज से छः सौ वर्ष पहले इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता था, यद्यपि उसके प्रयोग के लिए नियम स्थिर नहीं हुआ था। हिन्दी से सम्बन्धित उपभाषाओं अथवा बोलियों में केवल राजस्थानी में 'ने' का प्रयोग प्राचीन काल से होता है, किन्तु वहां यह कर्मकारक का चिन्ह है। कैलॉग 'ने' की उत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं— सं<लग्, प्रा० लग्गिओ, हि० लगि, लइ, ले, ने। इस कारक चिन्ह की स्थिति इस प्रकार है— खड़ी बोली —ने, कन्नौजी—ने, गढवाली—ने, कुमायुनी—ले, नेपाली—ले। राजस्थानी, पुरानी बैसवाड़ी, अवधी, भोजपुरी, मागधी और मैथिली में कर्ताकारक के चिह्न का अभाव है। यह अनुमान लगाया जाता है कि नेपाली का कारक चिन्ह 'लें' 'ने' में परिवर्तित हुआ। 'ल' तथा 'न' परस्पर रूपान्तरित होते हैं अतः कैलाग के विचार से नेपाली का 'ले' राजस्थानी के कर्मकारक में 'ने' बना।[१] इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि नेपाली तथा कुछ पहाड़ी बोलियां राजस्थानी से सम्बन्धित हैं, अतः यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि राजस्थानी का 'ने' नेपाली में 'ले' बना। राजस्थानी में पुराने समय से 'ने' कर्मकारक के चिह्न स्वरूप प्रयुक्त होता है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

आयो कहि कहि नाम अम्हींणी जा सुख दे स्यामा नै जिम[२]

राजस्थानी तथा ब्रज से सम्बन्धित बोलियों में भी "ने" का प्रयोग द्वितीया अथवा चतुर्थी में होता है—

मेवाती— सो जा लाला सो जा
मा गई है पानी ने
तू ने दे ना मू ने दे ना.... (लोरी)

रासो में कुछ स्थलों पर नै (=ने) का उपयोग कर्त्ता कारक में हुआ है—

वर वस्तर सजि बाल नै सैसव मिस सग डारि
अवभूखन नव ग्रहह कर जोवन चढ़त सवारि।[३]

पूरब की अवधी, भोजपुरी आदि में आजकल अथवा प्राचीन साहित्य में "ने" का प्रयोग नहीं मिलता—

---

१. कैलाग ग्रा. हि. लैं. § १९६, पृ० १३१
२. बेलि किसन रुकमणी री, पृ० ६९
३. पृथ्वीराज रासो, समय १८, दो० २९, पृ० ३८२

थापणि पाई थिति भई सतगुर दीन्हीं धीर
कबीर हीरा बणजिया मानसरोवर तीर।[1]
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा
सो अति बड अबिबेक तुम्हारा[2]
देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज
जनवासे गवने मुदित सकल भूत सिरताज।[3]

बीम्स ने "ने" की उत्पत्ति के विषय में कैलाग का समर्थन किया है।

मराठी में तृतीया विभक्ति के एकवचन में ने, एं, ई और शीं का प्रयोग होता है। मराठी में तृतीया विभक्ति के रूप में "ने" का प्रयोग होता है, अतः यह अनुमान लगाया गया है कि सं० पुल्लिगवाची शब्द के तृतीया में प्रयुक्त "एन" से "ने" की उत्पत्ति हुई, किन्तु यह बात उचित प्रतीत नहीं होती। बीम्स तथा कैलॉग द्वारा प्रतिपादित 'ने'<सं० लग् की व्युत्पत्ति मराठी की दृष्टि से भी उचित प्रतीत होती है। मराठी में द्वितीया के लिए "ला" का प्रयोग होता है,[4] जिस का सम्बन्ध स्पष्टतः "लग्" धातु से है। इस बात की संभावना है कि जब "ल" "न" में रूपान्तरित हुआ तो "ने" तृतीया में और "ला" द्वितीया में प्रयुक्त होने लगा। गुजराती में "ने" का प्रयोग द्वितीया में और "ना" तथा "नी नुं" का प्रयोग षष्ठी में होता है।[5] हिन्दी में भी "अपना" का "ना" षष्ठी का द्योतक है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय आर्यभाषाओं में राजस्थानी, गुजराती और मराठी में पुराने समय से "ने" का प्रयोग द्वितीया में होता रहा है और उसकी उत्पत्ति "लग्" से हुई। अपभ्रंशकाल में एक ही कारक-चिह्न का प्रयोग अनेक कारकों में होता था। विशेष कर सम्बन्ध, सम्प्रदान और कर्म कारकों के चिह्नों में अन्तर नहीं रह गया था। यही कारण है कि "ने" तथा उससे सम्बन्धित अन्य रूप द्वितीया ही नहीं चतुर्थी तथा षष्ठी में भी प्रयुक्त होते हैं। खड़ी बोली में राजस्थानी के प्रभाव से सकर्मक क्रिया के भूतकालिक रूप के साथ कर्ताकारक में "ने" का उपयोग होने लगा, इसका एक कारण यह हो सकता है कि खड़ी बोली में द्वितीया तथा चतुर्थी में पहले से "को" का प्रयोग होता था। "ने" का प्रयोग प्रथमा के लिए सुरक्षित कर दिया गया।

दक्खिनी पर गुजराती, मराठी तथा राजस्थानी का प्रभाव है किन्तु कारक चिह्न के रूप में वह "ने" को सामान्यतया अस्वीकार करती है। केवल साहित्यिक दक्खिनी में ही कहीं कहीं "ने" का प्रयोग मिलता है। इस संबंध में तीन तथ्य उल्लेखनीय हैं—

---

१. कबीर—कबीर ग्रन्थावली, गुरुदेव कौ अंग, दो० २९, पृ० ४
२. तुलसीदास—रामचरितमानस, बालकांड, पृ० ११९
३. तुलसीदास-रामचरितमानस, बालकांड, पृ० ३५९
४. कृ० पां० कुलकर्णी—मराठी भाषा—उद्गम व विकास, पृ० ३३१
५. मध्य गुजराती व्याकरण ने साहित्य रचना.

(१) दक्खिनी में "ने" का प्रयोग कम हुआ है। पुराने समय में एक दो स्थानों पर कर्म-कारक में "ने" का उपयोग हुआ है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के साथ कर्ताकारक में इस चिह्न का कहीं कहीं प्रयोग होता है।

(२) दक्खिनी के पुराने साहित्य में कहीं कहीं "ने" का प्रयोग होता था, किन्तु उसके प्रयोग के लिए कोई नियम निर्धारित नहीं हुआ था।

(३) कुछ लेखकों ने सकर्मक भूतकालिक क्रिया के साथ ही नहीं अकर्मक क्रिया के साथ भी कर्त्ता कारक में कहीं कहीं 'ने' का प्रयोग किया है और काल के सम्बन्ध में अपनी इच्छा से काम लिया है।

ख़ाजा बन्देनवाज़ की रचनाओं में हम "ने" का प्रयोग देखते हैं। उनके परवर्ती लेखक बुरहानुद्दीन जानम की रचनाओं में "ने" का प्रयोग अधिक नहीं है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि ख़ाजा बन्देनवाज़ का अधिकांश समय दिल्ली में बीता था। उस समय तक दिल्ली के आसपास की खड़ी बोली में "ने" का प्रयोग होने लगा होगा। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(क) उन्ने नइँ देता...(मे आ)

इस उदाहरण में "वह" सर्वनाम के विकारी रूप के साथ प्रथमा के बहुवचन में "ने" का प्रयोग किया गया है। आजकल की खड़ी बोली के नियम से "देना" क्रिया के संकेतार्थ काल में "ने" का प्रयोग नहीं होता। खड़ी बोली में इस वाक्य का प्रयोग होगा "वह नहीं देता।"

(ख) "..ताला ने हदीसे क़ुदसी में फ़रमाये हैं (में आ)

यहां फ़रमाना का प्रयोग आसन्न भूत में हुआ है। फ़रमाने का प्रयोग आदर के लिए बहुवचन में किया गया है। इस प्रकार का प्रयोग दक्खिनी की विशेषता है। खड़ी बोली में इस वाक्य का रूप होगा—"ताला ने हदीसे क़ुदसी में फरमाया है।" खड़ी बोली के विपरीत दक्खिनी में इस प्रकार का आदरार्थक प्रयोग होता है—

"तुमने दूध पिये सो खूब किया" (मे आ)।

खड़ी बोली में यह वाक्य इस प्रकार होगा "तुमने दूध पिया सो खूब किया।" ख़ाजा बन्दे-नवाज़ ने कुछ वाक्यों में भूतकालिक क्रिया के साथ "ने" का प्रयोग नहीं किया है। उदाहरण—"ख़ुदा कहा" (में आ)। "ने" से सम्बन्धित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

इश्क़ भेद बूझा उन्हीं ने तमाम (इब्रा)

इसी लेखक ने कुछ स्थलों पर "ने" का प्रयोग नहीं किया है—

उन्हीं सांच बूझ्या है माशूक नाज़ (इब्रा)

गुलाबी गुल ने दिखाया अछे मुख खोल अपै (अली)

धर्या है चांद ने ज्यूं टीका अपस मुक के अगल (अली)

अली ने कई स्थानों पर "ने" का प्रयोग नहीं किया है—

पर्यां अचरिज हो खयाँ देख के इस हौज के तइं (अली)

अली ने अकर्मक क्रिया के साथ भी "ने" का प्रयोग किया है—

उसी के टुक ते चली रात नें होलर ते ढलक (अली)

सामान्य बोलचाल में "ने" का प्रयोग कम होता है। कुछ स्थलों पर "ने" का प्रयोग होता है, किन्तु उसके लिए नियम निर्धारित नहीं है—

गुल शाहज़ादे ने अपने दिल की आरज़ू पाशा कू सुनाया। (कजाफ)

सास बीबी ने कलेजे से लगाये सेरा (लो गी)

भविष्यकालिक क्रिया के साथ भी ने का प्रयोग होता है—

तेरी सस्या ने लेंगी बलैया (लो गी)

बोलचाल अथवा साहित्य की भाषा में "ने" का प्रयोग प्रायः नहीं होता। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

तूं रंगामेज़ कीता है चमन कूं (फूल)
ख़ुदा क़ुरआन में तुज कूं सराया (फूल)
दिखा कर तू नक़्शे बदीउज्जमाल (गुल)
हमन जीव वले हम पछाने न उस (गुल)
सजदा किये इस ठान सभी (सब)
काज़ी सुनार से पुतली की शादी कर दिये (क जा फ)
रक्कासनी सोव कैफ़त सुनाई (क जा फ)

३१६. द्वितीया—कूं-कू-एं-ओं—

(क) कूं, कू—खड़ी बोली में द्वितीया की विभक्ति "को" है, दक्खिनी में सामान्यतया "कूं" अथवा 'कू' का प्रयोग होता है। दक्खिनी के कूं, कू अथवा हिन्दी के 'को' का पुराना रूप 'कौं' है। द्रविड़ भाषाओं में द्वितीया और चतुर्थी में "कि" और 'कु' का प्रयोग होता है। कुछ भाषावैज्ञानिकों के विचार में हिन्दी का 'को' द्रविड़ भाषाओं से ग्रहण किया गया है, किन्तु यह विचार अधिक प्रामाणिक नहीं माना जाता। दक्खिनी का 'कूं' ब्रज के कहँ, कहुं अथवा कहँ से सम्बन्धित है। बीम्स इस कारक-चिन्ह की उत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं—कक्ष>कक्खं>काहुं>कौं>को। पुरानी पंजाबी में इसका रूप कहु, कउ, को, कू और कूं रहा है। उड़िया में 'कु' प्रयुक्त होता है।[1] उड़िया और द्रविड़ भाषाओं का जो सम्बन्ध रहा है, उसे ध्यान में रखकर उडिया की कर्मकारक की विभक्ति 'कु' पर विचार किया जा सकता है। दक्खिनी में 'कूँ' का प्रयोग अधिक प्राचीन है। आज कल भी 'कू' का प्रयोग होता है। पठित लोग बोलचाल में 'को' का प्रयोग करते हैं। दक्खिनी में इस कारक-चिन्ह के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

ख़ालिक़ में ते ख़ल्क़ कूं. . . (मे आ)
अकारां कूं ना हैं कुच (इना)
कदीं पाड़ उजरा कूं वामक सूं दूर (गुल)

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० भाग २, § ५६, पृ० २५८

...मुल्क कूं रानता (इब्रा०)
अक़ल कूं औसाफ़ का...(अली)
बाज्यां कू इस जा का यूं सवाल है (सब)
नामे हक़ सूं कर ज़बां कूं सर बसर (तह)
....घाट कूं जाती हूं मैं (ख़तीब)

(ख) 'एं'—संस्कृत की भांति नवीन भारतीय आर्यभाषाओं में कारक-चिन्ह शब्द के साथ नहीं जुड़ता। कुछ प्रयोग आज भी पुरानी व्यवस्था का स्मरण दिलाते हैं। इस प्रकार का प्रयोग कभी कभी कर्म, करण और सम्प्रदान कारक में होता है जब कि शब्द को एकारान्त अथवा एँकारान्त बना कर प्रयोग करते हैं। हिन्दी से सम्बन्धित कई उपभाषाओं में यह प्रत्यय 'अहि' के रूप में शब्द के साथ जुड़ता है। पश्चिमी हिन्दी का, विभक्ति से सम्बन्धित 'ऐकारान्त' अथवा 'एँकारान्त' रूप इसी 'अहि' से संभूत है। चटर्जी के विचार से संस्कृत के अधिकरण कारक के एकवचन में पुल्लिगी शब्द के साथ जो 'ए' चिन्ह लगता है उसी से ए, ऐ अथवा एं का सम्बन्ध है। अधिकरण कारक का चिन्ह-ए कर्म, करण तथा सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त होने लगा।[१] हार्नली और भंडारकर ए, एँ, ऐ<अहि अथवा अहि का सम्बन्ध संस्कृत के सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'स्य' से जोड़ते हैं, जब कि डाक्टर बाबूराम सक्सेना अथवा टेस्सिटोरी इसका सम्बन्ध करणकारक के बहुवचन की विभक्ति 'भिः>ऐः से बताते है। दक्खिनी उदाहरण—

कोई यक हजें तुरतैं जाय (इना) (हजें>हज+एं)।

(ग) ओं—द्वितीया के बहुवचन में बिना किसी विभक्ति का प्रयोग किये शब्द के साथ 'ओं' जोड़ते हैं। इस 'ओं' का सम्बन्ध संस्कृत की षष्ठी विभक्ति के बहुवचन से है। 'ओं' का प्रयोग करण कारक में भी होता है—

एक छोड़ जे भूतों लागे (ख़ुनां) (भूतों<भूत+ओं<आम्)।

(घ) दक्खिनी में कर्मकारक सामान्यतया बिना किसी विभक्ति के प्रयुक्त होता है—

जे कोई तेरी मुहब्बत मान्यां सो... (इना)
सनीना दन्त सूं दुर्जन सीख करता (क़ुमु)

३१७. तृतीया—ते-तें-थें-सात-सेती-से-सूं-आ-ओं-ओं

(क) ते, तें, थें-ते अथवा तें का प्रयोग ब्रज और अन्य भाषाओं में तृतीया तथा पंचमी में किया जाता है। कुछ बोलियों में थे अथवा थी का प्रयोग भी होता है। पंजाबी में 'तें' तथा गुजराती में 'थी' का प्रचलन है। बीम्स ने ते, तें, थे, थी अथवा थीं का सम्बन्ध संस्कृत के क्रिया विशेषण सूचक 'तस्=तः प्रत्यय से जोड़ा है। हार्नली इसका निर्माण निम्न प्रकार मानते हैं— सं+तृ धातु, तरित रूप>प्रा० तरिए>तइए>ते। अनुस्वार यों ही आ गया। कुछ लोग ते,

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० §४९९, पृ० ७४७

तें, थें का उद्भव सं० शब्द 'स्थान' से मानते हैं। कन्नौजी, ब्रज और गढ़वाली में यह कारक-चिन्ह मिलता है। तः से 'तों' बनने पर 'ओ' पहले 'आ' बना, और फिर 'आ' 'ए' में परिवर्तित हुआ।[1] उदाहरण :—

हुआ जिसते मंडान वह एक है (न ना)
सो तिस कँदूरी लोन तें (कु क़ु)
के ज्यूं सांत (स्वाति) मेहों थे जग सब अघाया (कु कु)
नेह के शराब थें हुई. . . (अली)
बचन के फूल कानां ते चुन्यां हूं (फूल)

(ख) सुं, सूं, से, दक्खिनी में तृतीया के लिए मुख्यतया सूं का उपयोग होता है। परवर्ती दक्खिनी में 'से' का प्रयोग भी होने लगा। बीम्स यह मानते हैं कि खड़ी बोली का 'से' 'सों' से रूपान्तरित हुआ है और सों 'सम्' का विकृत रूप है। हार्नली ने 'से' की उत्पत्ति प्रा० संतो, सुंतो तथा सं०√अस् से मानी है। बीम्स का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है। हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियों में आज भी 'सूं' तथा 'सों' का उपयोग होता है, जो 'सम्' के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। मारवाड़ी में तृतीया तथा पंचमी में 'सूं' का उपयोग होता है। इस सम्बन्ध में मारवाड़ी तथा दक्खिनी में साम्य है। साहित्यिक तथा बोलचाल की दक्खिनी में इस कारक-चिह्न के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

आंक सूं ग़ैर न देखना. . . (मे आ)
ग़फ़लत के कान सूं ग़ैर न सुना सो. . . (मे आ)
मेरा नांव रोन्सों सूं लेसे न भी (कु मु)
वही अद्ल सूं मुल्क कूं रानता (इब्रा)
दिलो जां सूं कहूं. . . . (फूल)
तूं रक ताज़ा क़ुबूलियत के मेहों सूं. . . (फूल)
दुक अपने दिल के लहू सूं वां निकारूं (फूल)
नामे हक़ सूं कर ज़बां कूं सर बलन्द (त ह)
फिरा कर वचन रूप चाबुक सू मार (इब्रा)
तू क़ुदरत से पैदा किया यक रतन (नना)
कुंजी से महल का दरवाजा खुलिगा (क इ पा)
. . . .पंजों से खिकरी। (क जा फ)

(३) सात-सात (=साथ) का प्रयोग भी तृतीया विभक्ति के रूप में किया जाता है—

पलो सात अंजू उसके पोंचन लगी (क़ु मु)

(४) सेती—हार्नली ने 'से' की व्युत्पत्ति प्रा० संतों अथवा सुंतो से की है। दक्खिनी तथा हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों में तृतीया के रूप में 'सेती' का प्रयोग मिलता है। संभवतः

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० भाग २ § ५८, पृ० २७३

इस 'सेती' का उद्भव, संतों अथवा सुतों से हुआ हो। मागधी में 'सती' का प्रयोग होता है। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

भौतेक मया सेती अपन... (कु क़ु)
लगे सटने गले चुंगल सेती चांप (फूल)

(५) आ—सं० तृतीया के एकवचन की विभक्ति "आ" (टा) का प्रयोग दक्खिनी के कुछ शब्दों में मिलता है—

...बड़बागल की रीता (सु स) (रीता<रीत्या)

(६) ओ, ओं-सं० षष्ठी के बहुवचनवाची प्रत्यय 'आम्' अथवा आनाम् से ओं अथवा 'ओ' का उद्भव हुआ। हिन्दी में इस कारक चिह्न को शब्द के साथ जोड़ देते हैं और कोई अन्य कारक चिह्न नहीं लगाया जाता—

किस मुखों करूं उचार (ख़ुना)
चंदर महर अंगे तिसकी शरमों गले (गुल)
अनेक छन्दों अपस बनाई (अली)
अपस की लताफ़तां भुलाना (मन)
गई भाग रैन अपस के भागों (मन)

३१८. चतुर्थी—तइं, ताईं, कूं, को, काज, ख़ातिर, बदल, वास्ते—

(क) तइं, ताइं—बीम्स के विचार से इन दोनों परसर्गों की उत्पत्ति संस्कृत के "स्थान" से हुई है। दक्खिनी में दोनों का प्रयोग सम्प्रदान कारक के चिह्न के रूप में होता है। उदा०—

मिलने के तइं... (मे आ)
परियां अचरिज हो खयां देख के इस हौज के तइं (अली)
खड़ा है दोल हो दायम मंजा कर बाग के ताईं (अली)
दिया तूं शमा के तइं नूर होर ताब (फूल)
फ़लक हर किसके तइं जो भार लाया (फूल)

(ख) कूं, को—(व्युत्पत्ति के लिए देखिए—३१६. क)।

हार्नली ने इसकी उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'कृते' से मानी है। हो सकता है कर्म तथा सम्प्रदान कारक में प्रयुक्त 'को' अथवा 'कूं' पृथक पृथक शब्दों से सम्बन्ध रखते हों। अर्थ की दृष्टि से कर्म कारक का को 'कक्ष' शब्द से और सम्प्रदान कारक का 'को' 'कृते' से सम्बन्ध रखता है। कूं अथवा कों से खड़ी बोली के 'को' का उद्भव हुआ। दक्खिनी में इस कारक-चिह्न का प्रयोग निम्न उदाहरणों में देखा जा सकता है—

कहे इन्साफ के बूजने कूं... (मे आ)
जिते मारिफ़त का दिख्याने कूं धन (गुल)

पवन कूं दिया उम्र पायन्दगी (न ना)
देवे जिसमें उपमा नहीं जोड़ को (इब्रा)

(ग) सम्प्रदान कारक के लिए निम्नलिखित शब्द भी प्रयुक्त होते हैं——

(१) काज<कार्य। उदाहरण :——

सब कीता इसके काज (इ ना)
मैं तेरे काज जलवे राग पाया (कुकु)

(२) बदल<अफा√बदलना——

दुनिया के बदल दीन तूं खो नको (न ना)
इशरत बदल अमृत फुई छिड़क्या (कु क़ु)
अक़्ल कसौटी तबा के कसने बदल (अली)

(३) ख़ातिर (अफ़ा)

यक ख़ातिर करें करार (इ ना)
पियाला ज्यूं के आया मद की ख़ातिर (फूल)

(४) वास्ते (अफ़ा)

क्या वास्ते...... (मे आ)

(घ) ए——क्रियार्थक संज्ञा को एकारान्त बनाकर सम्प्रदान कारक में प्रयोग करते हैं। यह 'एकार' पुल्लिगवाची अकारान्त शब्द में प्रयुक्त होनेवाली सप्तमी विभक्ति के एकवचन के ए(ङि) को व्यक्त करता है। अधिकरण का रूप सम्प्रदान में प्रयुक्त होता है।

चंदर तारे बुलाने घर... (अली)
मंगता होने ले नांवं एलिया का (अली)
हवस है दिल में मेरे भोत रोने (फूल)

३१८. पंचमी——ते-तैं-थें-थे-सती-सेती-सूं-से-सें।

(क) ते, तैं, थें, थे——व्युत्पत्ति के लिए देखिए (३१७. क)। करण कारक के अतिरिक्त इन कारक चिह्नों का उपयोग अपादान में भी होता है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं——

मुरीद इस्लाम ते जाता है (मे आ)
सुहागां का गलसर अज़ल थे बंदे है (कु क़ु)
चक ते अंजवां की पूरा (गुल)
अकास ते धरत पर उतार्या (मन)
मिरग जंगल ते ल्याया है (अली)
बुरे काम ते मुंह अपस का मड़ोड़ (न ना)
ज़मीं तैं नैशकर जब भार आया (फूल)

इस थे अपसें अलिप्त गिन	(इना)
तब लग तन थे ना होवे फ़ौत	(इना)
जिस मारग थें जीव संचरे	(खुना)
कधीं चांद कांसे थें बिस निस झड़े	(इब्रा)
सरग थे बरसात पाड़	(अली)

(ख) सती, सेंती, सूं, से, सैं—इन पांचों की व्युत्पत्ति तृतीया विभक्ति के विवरण में दी जा चुकी है। करण के अतिरिक्त अपादान कारक में भी इनका उपयोग होता है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

यहां तो खुले **सती** लिया	(इना)
गुलाबी फूल पर दावा लग्या करने समन **सेंती**	(गुल)
सफेदी **सूं** भर चांद दावात कर...	(इब्रा)
कदीं पाड़ उजरा **सूं** वामक कूं दूर	(गुल)
दुकान **सें** पानी के उल्मां कू देव	(मे आ)
पिदर सैं सो तेरे बहादुर कहे	(गुल)

३२०. षष्ठी का-की-कियां-के-केरा-केरी-केरे-कर-ए।

(क) का, की, के—खड़ी बोली में सम्बन्ध कारक के इन तीनों चिह्नों की स्थिति अन्य कारक चिह्नों से भिन्न है। ये तीनों तथा सम्बन्ध कारक के अन्य चिह्न केरा, केरी और केरे, विशेषण के अंश के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिनका अर्थ होता है—सम्बन्धित, अधिकृत, सम्पर्कित। यही कारण है कि संज्ञा के लिंग-वचन का प्रभाव 'का' तथा 'केरा' पर भी आकारान्त शब्द की भांति पड़ता है। पुल्लिगवाची शब्द के साथ एकवचन में 'का' का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग में 'का' के स्थान पर 'की' और 'केरा' के स्थान पर केरी चिह्न का प्रयोग होता है। खड़ी बोली में स्त्रीलिंग के बहुवचन में 'की' में कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु दक्खिनी में स्त्रीलिंग पर भी वचन का प्रभाव पड़ता है। कई लेखकों ने बहुवचन में 'की' के स्थान पर 'कियां' का प्रयोग किया हैं। 'का' की व्युत्पत्ति बीम्स ने निम्न प्रकार दी है—सं० कृतस्>प्रा० केरिओ>केरो और केरको>केरओ और केरा>करा>हि का।[1] दक्खिनी के निम्न उदाहरण:—

पांच अनासिरां का...	(मे आ)
...बुलबुलां का है शोर	(गुल)
लेवे नाक ते जीव बासों का सुख	(गल)
थंड नाक सूं खुद की बदबूई ना लेना सो	(मे आ)
लजा कर दिखा आरिफ़ा की नजर	(इब्रा)

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ०, भाग २, § ५९, पृ० ३८५

चक ते अँजुवाँ की पूर (गुल)
दिया चांद-तारां कूं हीर्यां की ताव (अना)
अपै मेराज कियां निशान्यां (मे आ)
अंखियां जैसे मन कियां निधान (इ ना)
उनो के दिलां, उनो कियां अंखियां... (सब)
पड़ियां रस कियां बेलां सो जन्तर के तार (गुल)
.....जूं गुड़ कियां भेल्यां (मन)
दुकान से पानी के उल्मां कू देव (मे आ)

कहीं कहीं स्त्रीलिंगवाची शब्दों के साथ भी 'के' का प्रयोग हुआ है—

बुर्ज के ज़बां सूं.... (मे आ)
मीकाईल के मदद के पानी सूं... (मे आ)
हिये के नैनों देखूं ऐन (इ ना)
बीस के बीस पुरियां मेरे कू खिला डाली (कनौहा)
जोरू के जूतियां खाता (क अ मा)
उसके गोद में छोड़ को (अ अ मा)

(ख) करा, केरा, केरी, केरे—चटर्जी इन कारक-चिह्नों का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'कार्य' से मानते हैं।[1] ये सभी चिन्ह विशेषण के अंश के रूप में प्रयुक्त होते हैं अतः आकारान्त संज्ञा अथवा विशेषण के अनुसार लिंग और वचन के कारण इनमें परिवर्तन होता है। पुरानी पूर्वी हिन्दी में पुल्लिग में 'केर' अथवा 'केरा' और स्त्रीलिंग में 'केरी' तथा पुरानी पश्चिमी हिन्दी में 'केरो' अथवा 'केरौ' का प्रयोग होता था। गुजराती में पुल्लिग एकवचन में 'केर' और स्त्रीलिंग के एकवचन में 'केरि' आता है। पुरानी हिन्दी में पुल्लिगवाची शब्द के साथ 'कर' भी प्रयुक्त होता था। हार्नली इन सब का उद्भव सं० 'कृत' से मानते हैं।[2] अवधी में 'कर' का तथा मागधी में केरा तथा केरे का प्रयोग होता है। दक्खिनी में इन चिह्नों का अधिक प्रयोग हुआ है। इस विषय में दक्खिनी और पूर्वी हिन्दी में बहुत समानता है। उदाहरण—

भोग-बिलास कर सुख लेने.... (ख़ुना)
सो उस पीव कर सत जगत तो मरे (इब्रा)
धरत कर ढेर सूं ढेर यक निपाता (फूल)
आबिद केरा पकड़्या भाव (इना)
निदा केरा आसन मारे (सुस)
ऐस्यां केरा गरब न राखे (ख़ुना)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ५०३, पृ० ७५३
२. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ३७७, पृ० २३७

है कड़ोरन केरा हीरा	(ख़ुना)
नहीं तो मर्कट केरी घात	(इना)
सिफ़त करूं मैं अल्ला केरी	(ख़ुना)
ग़फलत केरे भूलों पड़े	(इना)
नूर निरंजन केरे नूर	(इना)
सब हीरों केरे खान	(ख़ुना)
सो लामकां केरे मकां	(कु क़ु)
जो तुझ अम्र केरे सबा खास में	(गुल)

(ग) सं० सप्तमी विभक्ति के एक वचन के 'ए' (डि.) को शब्द के साथ जोड़ कर षष्ठी का रूप बनाया जाता है—

न काज अंधारे पासा	(इना)

३२१. सप्तमी—पे-पै-पो, पर, उपर, मने, माने, म्याने, मंह, मांहीं, मझार, ए-एं।

(क) पे, पै, पो, पर, उपर—इन सब का सम्बन्ध सं० 'उपरि' अथवा 'परे' से है। पंजाबी में 'परों' रूप प्रचलित है। ब्रज में 'पै' का प्रयोग होता है। दक्खिनी में 'पो' का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है:—

संभाल्या सो कान पे	(मे आ)
अक़्ल का जासूस हो मुक **पे** अछे यू किरन	(अली)
जूं लाल फूल डाल्यां **पर** त्यूं दण्डां पै अपने	(कु क़ु)
अंगूटी **पै** जूं है नगीं या समी	(कु क़ु)
जो सनअतगरी तूं दिखाने **पै** आय	(गुल)
निशानी दिसे किस कई **पो** फुटे	(गुल)
हुआ दिल **पो** यूं......	(च म)
बंद्या नैनां **पो**....	(फूल)
....होटां **पो** छले आये	(फूल)
यहां **पो** छुपती वां निकलती...	(ख़तीब)
वक़्त **पो** मरद का काम करती थी	(क इ पा)
हवा ज़ोरो **पो** थी	(क प श)
चल **पो** चल गइ तो एक रक्कासनी का घर मिल्या	(क सा भा)
ख़ुदा के दरवाज़े **पर**	(मे आ)
सकल तख़्त **पर** मेरा यू तख़्त कर	(कु क़ु)
सो ओ फूल झड़ कर पड़्या गगन **पर**	(इब्रा)

(ख) मने, माने, म्याने, मंह, मझार, में—हार्नली ने सं० 'मध्ये' अथवा 'मध्यम्' से इनका सम्बन्ध जोड़ा है। मध्य<मधि<महि<माहि<मह या महं। ह>य और य>ई—माहिं>

>महं >में, मों। इस प्रकार मज्झम, मझार आदि 'मध्यम्' के रूपान्तर हैं।[1] मने, माने, म्याने भी 'मध्य' अथवा इससे मिलते-जुलते शब्द से रूपान्तरित हुए हैं।

उदाहरण :—

अक़्ल की ख़िलवत **मने** (अली)
ना सब **मने** तूं न तुज **मने** सब (मन)
डुलते चमन **म्याने**... (अली)
जूं जल के **मझार** कच है मच है (मन)
अक़्ल नज़र **मंह** आवे ना (इना)
दो के बीच **मंह** लोप्या होय (इना)
दहू जग **मांही** अहै अज़ल (इना)
अक़्ल की ख़िलत **मने**.... (अली)
धन तुज चरनों **में** खड़ी (इना)
तन के क़िले **में** सदा... (अली)

(ग) ए, एं-कर्म, करण तथा सम्प्रदान की भांति अधिकरण में भी संस्कृत की सप्तमी विभक्ति का प्रत्यय ए (ङि) शब्द का अंश बन कर प्रयुक्त होता है और किसी अन्य कारक चिह्न का प्रयोग नहीं होता—

समज आज तेरे च **बांटे** दिसे (गुल)
हमवार हो रहे सुम **तले** (अली)
इस थे जान किनारे वह (इना)
जूं के देखों **जंगले** बीज (इना)
सूरज चांद **कांसे** अमृत-बिस मिलाय (इब्रा)

कुछ वाक्यों में अधिकरण कारक की विभक्ति का प्रयोग नहीं होता—

क्या उस माता बालक रोस (इना)
...शेर कह किस ज़बान (इब्रा)
गगन के सीस छाया है (अली)
सिर छतर छाया (सब)

३२२. सम्बोधन—रे, अरे, भइ, या, ऐ, अजी, गे, अगे। ये चिह्न अन्य कारक चिह्नों के विपरीत शब्द के आरंभ में लगते हैं। 'ऐ' तथा 'या' का सम्बन्ध अफ़ा की विभक्तियों से है। दक्खिनी में इनके उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ३७८, पृ० २४१

(रे) — बूझे रे तूं अपना हाल (इना)
,, — यूं क्या समझा रे अनजल (इना)
(अरे) — अरे ईताल यक बिचार (इना)
,, — अरे, नुसरती है यह (गुल)
(भइ) — सवाल देता भइ उन यूं (इना) (भई<भाई)
(या) — यू है हुस्न किस खुम का या रब शराब (गुल)
,, — मेरे दुश्मनां कूं अगिन या समी (कु कु)
(ऐ) — के ऐ बन कूं देवनहारे सदा नीर (फूल)
(अगे) — अगे, क्या गे अम्मां (क नौ हा)
(गे) — नक्को रो गे बेटी (क मा व)
(अजी) — अजी, छोटी शहज़ादी... (क इ पा)

कारक चिह्न के बिना भी सम्बोधन होता है—

इलाही, ज़बां गंज सूं खोल मुज (इब्रा)

३२३. दक्खिनी में अधिकरण कारक के चिह्न के साथ कुछ स्थलों पर दूसरे कारक चिह्नों का प्रयोग किया जाता है—

अधिकरण+अपादान— करनी **पर थे** करना बूज (इना)
खसा जोबन कसन **में थे** (कु कु)
छिप कर देखते पातां **में ते** झांक (फूल)
सिफ़त उसकी अपने **पर ते** करना

अधिकरण+सम्बन्ध— पानी **पर का** पन्त चले तो मछी की रे घात (सु स)
अली सारे वल्यां **में का** है सरदार (फूल)
आरिफुल वजूद **में का** जान पना बूज्या तो (मे आ)
हंसा बहर्यां के घुंघर **में के** दाने (फूल)

सर्वनाम

३२४. खड़ी बोली और दक्खिनी के सर्वनामों में बहुत कुछ साम्य है। खड़ी बोली में प्रयुक्त सभी मूल सर्वनाम तथा उनके विकारी रूप दक्खिनी में आरंभिक काल से प्रयुक्त होते रहे हैं, साथ ही दक्खिनी में कुछ ऐसे रूप भी प्रचलित हैं जो खड़ीबोली में प्रयुक्त नहीं होते, किन्तु हिन्दी से सम्बन्धित अन्य बोलियों में, विशेषकर पूरबी बोलियों में प्रयुक्त होते हैं। दक्खिनी के सर्वनामों की सूची इस प्रकार है—

(१) पुरुषवाचक सर्वनाम—मैं, तू—तूं, आप
(आदर वाचक), आप, अपन। अपस (निजवाचक), अपन (प्रथम, मध्यम पुरुषवाचक)।

(२) निश्चयवाचक सर्वनाम—यह-ए-यू, वह, वो-ओ-ऊ-सो।

(३) अनिश्चय वाचक सर्वनाम—कोई, कुछ-कुच, कूच।

(४) सम्बन्धवाचक—जो, सो।

(५) प्रश्नवाचक—कौन, क्या-की।

३२५. पुरुषवाचक सर्वनाम मैं—चटर्जी "मैं" की व्युत्पत्ति संस्कृत के उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम "अस्मद्" के तृतीया के एकवचन "मया" से मानते हैं। सं० मया>मए>अप०मई > हिं० पं- मैं। "मइ" के "इ" के अनुनासिकत्व के सम्बन्ध में चटर्जी का विचार है कि यह तृतीया के एक वचन के प्रत्यय "एन" (टा) का अवशिष्ट भाग है।[१] हिन्दी "मैं" का अनुनासिकत्व "एन" का द्योतक है। दक्खिनी में कुछ स्थलों पर अनुप्रास के लिए पंक्ति के अन्त में "मइँ" का प्रयोग हुआ है—

हूं तो आरिफ़ आक़िल मइँ (इ ना)

(१) मैं—अविकारी एकवचन में "मैं" का प्रयोग होता है—

मैं तुझे देता हूं (मे आ)
मैं इतना समझता हूं (न ना)

(२) हम—उत्तम पुरुषवाची "मैं" के अविकारी तथा विकारी बहुवचन में "हम" का प्रयोग होता है। हार्नली "हम" की उत्पत्ति इस प्रकार मानते हैं—वैदिक संस्कृत अस्मे>प्रा० अम्मे, अम्हे, अम्हाणं, अम्माणं, अम्ह, अम्हि पश्चिमी तथा पूर्वी हिन्दी 'हम'।[२] हेमचन्द्र ने उत्तम

---

१ चटर्जी ओ० डे० बें० § ५३९, पृ० ८०८
२. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ४३०, पृ० २७९

पुरुषवाची सर्वनाम के बहुवचन में "अम्ह" को आधार के रूप में स्वीकार किया गया है।[1] दक्खिनी में कुछ स्थलों पर "हमन" का प्रयोग मिलता है। हमन की भांति जिन, किन, उन आदि रूपों में विद्यमान "न" के लिए संस्कृत षष्ठी के बहुवचन में इनके मूल रूपों से सम्बन्धित कल्पित रूप-कानाम्, यानाम् आदि की कल्पना की गई है। हिन्दी में बहुवचन के लिए "न" प्रत्यय जोड़ने की परम्परा रही है जो सं० नपुंसक लिंग के कर्ता तथा कर्मकारक के बहुवचन में प्रयुक्त "आनि" से सम्बन्धित माना जाता है (ब्रज में "न" जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है)। "हमन" जैसे प्रयोग में "न" बहुवचन का सूचक है। अन्य शब्दों के अनुकरण से बहुवचनवाची "हम" के साथ "न" का प्रयोग किया गया है—

उदा०—हमन जीव वले हम पछाने न उस (गुल)

(३) मुझ—मुज, मेरा—"मैं" का एकवचन में विकारी रूप "मुझ" तथा "मेरा" बनता है। अल्पप्राण की प्रवृत्ति के कारण "मुझ" के स्थान पर मुज का प्रयोग भी होता है। खड़ीबोली में षष्ठी में "मुझ" का प्रयोग नहीं होता। इसी प्रकार साहित्यिक भाषा में "मेरा" का प्रयोग षष्ठी के अतिरिक्त अन्य किसी विभक्ति में नहीं होता, किन्तु दक्खिनी में 'मुझ" तथा मेरा का ऐसा प्रयोग मिलता है। मुझ की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हार्नली का मत इस प्रकार है—सं० मह्यम्<प्रा० मज्झ<अप०<मज्झु।[2] हार्नली इस मत को सर्वथा उपयुक्त नहीं मानते अतः उन्होंने सं० "मदीय" से भी "मुझ" के विकास की संभावना प्रकट की है।[3] चटर्जी के विचार से सं० मह्यम्<प्रा० मज्झु>मझ से मुझ की उत्पत्ति हुई। मराठी में "मझ" से सम्बन्धित माझा, माझि आदि रूप प्रचलित हैं। संस्कृत के तुह्यम् से उद्भूत "तुझ" के अनुकरण से हिन्दी में "मुझ" के स्थान पर "तुझ" का प्रचलन हुआ। "मेरा" के सम्बन्ध में चटर्जी का विचार है कि षष्ठी के चिह्न "केर" के योग से यह रूप बना है। "मेरा" का प्रयोग खड़ीबोली में केवल षष्ठी में होता है किन्तु पूरबी बोलियों में अन्य कारकों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में दक्खिनी पूरबी बोलियों के प्रभाव को सूचित करती है। "मुझ" तथा "मेरा" के प्रयोग विविध कारकों में निम्न प्रकार हैं—

कर्म तथा सम्प्रदान—मुझे बहुत हुआ (मे आ) (मुझ+ए)।
समझने का यारब मुझे ज्ञान दे (न ना)

ए के सम्बन्ध में भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि संस्कृत में अधिकरण के एकवचन में "ए" का उपयोग होता है। हिन्दी कर्म तथा सम्प्रदान में भी इस "ए" का प्रयोग किया जाता है।

मुंज उसकी देव खबर (इना)
मेरे कू खिला डाली (क नौ हा)

---

१. हे० चं०—प्रा० व्या ३।११४
२. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० §४३०, पृ० २८२
३. चटर्जी—ओ० डे० बें० §५४३, पृ० ८१३

करण तथा अपादान—ओ मेरे सूं बैत करेगा (मे आ)
उनो मेरे से तीन रुपये ले को गया (बोली)
मुझ से ये काम होने का नइ (बोली)
उनो तीन किताबां मुझ से ले गया (बोली)

सम्बन्ध— है यू मेरा मेरीच पास (इना)
तो ये तोडें मेरी रुच (इना)
मुंज हिरदे का क्या कारी है (इना)
के मुझ रूप थे हो अधिक शह् दकन (इब्रा)

अधिकरण— मेरे पर ईमान. . . (मे आ)
यही मुझ मने इश्क़ होर शौक़ था (गुल)

(४) हम, हमन, हमना—"मैं" के विकारी बहुवचन में हम तथा हमन के अतिरिक्त "हमना" का प्रयोग भी किया जाता है। कर्म तथा सम्प्रदान में "हमना" के साथ कोई विभक्ति नहीं लगाई जाती। हमना में "ना" का सम्बन्ध षष्ठी के कारक चिह्न "ना" से जोड़ा जा सकता है। 'हमारा' का प्रयोग भी अन्य कारकों में किया जाता है। 'हमारा' में "आर" अथवा "आरा" षष्ठी के "केरा" अथवा "कर" से सम्बन्धित हैं।

अविकारी— हम पड़े तुज ते दूर (गुल)
हम क्या तो बी करके पेट पाल लेंगे।

विकारी-कर्म तथा
सम्प्रदान— हमारे गुन कूं देखे सो हमना देखे (सब)
हक़ की हक़ायक की बूज सब तो हमन कूं कहां (अली)
हमें गरीब निपाये. . . . (खुना)
हमें क्या जो हमना ते कुछ होय बात (गुल)

अविभक्तिक कर्ता कारक के बहुवचन में भी "हमें" का प्रयोग होता है—
हमें का अर्थ. . . . (न ना)

(हार्नली का विचार है कि प्रा० अम्हहं अथवा अम्हइ से "हमें" की उत्पत्ति हुई। अपभ्रंश में कर्म तथा सम्बन्ध कारक में है, हिं का प्रयोग होता है। "अम्हहिं से "ह" के लुप्त होने पर अम्हइ शेष बचा।

अम्हइ>पु० हि० हमहिं>ख बो० हमें, मार० म्हें।[१]

करण तथा अपादान—हमें क्या जो हमना तें कुछ खैर होय (गुल)
हमना ते बी अंगे थे। (सब)

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ४३०, पृ० २७९

सम्बन्ध कारक—	हमन जीव वले हम पछाने न उस	(गुल)
	हमारे गुनकूं देखो सो हमना देखो	(सब)
	चूक हमरा च है. .	(कुमु)

'हमरा' भोजपुरी तथा मैथिली में प्रयुक्त होता है। दक्खिनी ने यह प्रयोग पूरबी बोलियों के प्रभाव से स्वीकार किया है।

अधिकरण कारक—	हमन में तो नइ नेको वद की तमीज़	(गुल)
	मुरक्क़ब है पन जहल हमनां में ओ	(अना)
	...करम हमन पर करो पियारी	(अली)
	हमारे पो क्या क्या फिराया है देक	(न ना)
	बचपने से हमारे पो मया करताय	(क प श)

३२६. (१) मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम—तू, तूं। तैं, मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम के अविकारी रूप में तू, तूं तथा तैं का प्रयोग होता है। संस्कृत के "त्वम्" से "तूं" की उत्पत्ति हुई है। अनुनासिकत्व के लोप के कारक "तू" का प्रचलन हुआ। मराठी, गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में "तू" का प्रयोग होता है। कुछ भाषा वैज्ञानिक मैं<मया की भांति "तू" की उत्पत्ति त्वया "से मानते हैं, किन्तु "तूँ" की उपस्थिति में "त्वम्" को ही आधार मानना अधिक उचित है। "तैं के सम्बन्ध में बीम्स का मत है कि अपभ्रंश के मध्यम पुरुषवाची "तइँ" से इसका उद्भव हुआ है और हिन्दी की कुछ बोलियों में मैं के अनुकरण पर "तैं" का प्रयोग होने लगा।[1] दक्खिनी में मध्यम पुरुष के अविकारी एक वचन के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

....तूं देक अयां	(इ ना)
जे तूं होसी सूरा	(खुना)
तूं कौन है क्या सो तूं च जाने	(मन)
खुदा कूं समज दिल मने एक तूं	(न ना)
इलाही जुबां गंज तूं खोल मुज	(इब्रा)
अथा फिर तूं माशूक़ बी....	(गुल)

पुराने समय में "तू" का प्रयोग कम होता था। आजकल बातचीत में "तू" का उपयोग होता है—

तू कौन सो तू पछनता है	(मन)
तू क़ुदरत से पैदा किया यक रतन	(न ना)

(२) तुम—मध्यम पुरुष के अविकारी तथा विकारी बहुवचन में "तुम" का प्रयोग होता है। "तुम" की उत्पत्ति संस्कृत के "त्वम्" से मानी जाती है। आदर के लिए एक वचन में भी "तुम" का प्रयोग होता है—

---

१. बीम्स—कं० ग्रा० आ० भाग २, § ५९, पृ० ३१०

उदा०—जिन तुम कीता करन बार (इना)

(३) तुझ, तेरा, तो—मध्यम पुरुष के विकारी रूप में "तुझ" का प्रयोग होता है। "तुझ" की उत्पत्ति सं० तुह्यम् से मानी जाती है। कुछ स्थलों पर "तो" का प्रयोग भी होता है, जो अवधी, भोजपुरी तथा मैथिली के प्रभाव का द्योतक है। "तो" की उत्पत्ति "त्वम्" से मानी जाती है। तुझ तथा तो के अतिरिक्त "तेरा" का उपयोग भी होता है। "त्वम्" के साथ षष्ठी सूचक "केर" अथवा "केरा" के योग से "तेरा" का विकास हुआ। खड़ीबोली की भांति दक्खिनी में भी "तेरा" का प्रयोग मुख्य रूप से षष्ठी में होता है, किन्तु कुछ अन्य कारकों में कारक-चिन्ह लगाकर इसका उपयोग किया जाता है। कुछ स्थलों पर बिना कारक-चिन्ह के भी षष्ठी के अतिरिक्त अन्य विभक्तियों में इसका प्रयोग होता है।

कर्म तथा संप्रदान— अब **तुज** कहसूं तेरा कथन (इना)
जो कोई भारी दिये हैं **तुझ** कूं यारी (फूल)
करण तथा अपादान— सब जग कूं **तुझ** सूं काम हैं (कु कु)
तो सूं हिम्मत मछर गर टुक जो पागा (फूल)
सम्बन्ध— चंदा क़तरा है तुझ समदूर का यक (कु कु)
हुमा तुझ तुरंग के जो सर पर दिसे (गुल)
तेरे नूर सूं पैदा किया है (मे आ)
समज आज तेरे च बांटे दिसे (गुल)
जे कोई तेरी मुहब्बत.... (मे आ)
तेरी सिफ़्त किन कर सके.... (कु कु)
तोर अंधारा तेरे ताब (इना)
('तोर' पूरबी बोलियों के प्रभाव का परिचायक है)।

कुछ स्थलों पर पुल्लिगी "तेरा" के बहुवचन "तेरे" के समान स्त्रीलिंगी "तेरी" का प्रयोग "तेरियां" होता है—

तेरियां हिकमतां देखना है बिचार (अ ना)
अधिकरण— ता के करम तुज पै होय (अली)
कदीं तुझ पै बूट सुनैरी धरी (गुल)
फ़िदा अपै करें जी तुझ पो यारां (फूल)
ना सब मने तूं न तुज मने सब (मन)

(४) तुम्ह, तुमन—दक्खिनी में विकारी बहुवचन में सामान्यतया "तुम" का प्रयोग होता है किन्तु खड़ी बोली की भांति "तुम्ह" का उपयोग भी होता है। "तुम्ह" की उत्पत्ति प्राकृत के तुम्ह, तुम्म तथा अपभ्रंश के तुम्ह, तुम्हें, तुम्हाण, तुम्हहीं या तुम्हइं या तुम्हही से मानी जाती है। कुछ स्थलों पर "तुम" के साथ बहुवचन सूचक "न" और जोड़ा जाता है। इस प्रकार का प्रयोग ब्रज में भी प्रचलित है। अविभक्तिक कर्ताकारक में आदरार्थ "तुमें" का प्रयोग होता है जो "तुमन" से उद्भूत है—

	तुमें है चांद मैं हूं जूं सितारा	(कु क़ु)
	संगाती हैं तुमें मेरे जिवन के	(कु क़ु)
	तुमें ग़ैब के जाननेवाले हैं	(क नौ हा)
कर्म तथा सम्प्रदान—	शेरे ख़ुदा तुम हैं ककर बरहक़ तुमना मान कर	(अली)
	तुमना सुहाता बोलना....	(अली)

'ना' का प्रयोग षष्ठी में होता है। सम्बन्ध कारक का रूप द्वितीया तथा चतुर्थी में भी प्रयुक्त होता है, अतः यहां कर्मकारक में "तुमना" का प्रयोग हुआ है।

	तुम्हें क्या हुआ....	(न ना)
	तुमकूं दस रुपये देतूं	(बोली)
करण-अपादान—	जिस दिन से तुमन सात लग्या मनड़ा हमारा	(अली)
	जो कोई तुमारे सूं बैत करेगा	(इना)
	तुमारे से हम कूं क्या लेना है	(बोली)
	तूबा तुमारे सूं बैत करेगा	(इना)
सम्बन्ध—तुम्हारी उम्मत को भी....		(मे आ)
	मामूर है अम्र के तुमारे	(मन)
	....जब थे हुआ जग तुमारा	(कु कु)
अधिकरण—	तुम्हारे में कोई तो बात होना	(बोली)

३२७. आदर वाचक तथा निजवाचक—आप, अपन, अपस। हार्नली के विचार में निजवाचक अथवा आदरवाचक सर्वनाम "आप" की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—सं० आत्मा (आत्मन्), प्रा० अप्पा अथवा अत्ता (हे०चं०, प्रां० व्या०, २. ५१, वर० प्रा० प्र० ३.४८) अथवा अप्पो (हे० चं०–प्रा० व्या० ३.५६), ब्रज–आपु, ख० बो० आप।[1] चटर्जी के विचारानुसार सं० आत्मन् उदीच्य, मध्यदेशीय तथा प्राच्य प्राकृतों में अत्त माग० काल्पनिक रूप आता है। शौरसेनी, मागधी तथा अर्धमागधी का "अत्ता" दक्षिण-पश्चिमी प्राकृतों के "अप्पा" के कारण विलीन हो गया। "अप्पा" अथवा "अप्प" से "आप" का उद्भव हुआ। मध्यदेशीय भाषा के प्रभाव से ही अन्य बोलियों में निजवाचक सर्वनाम का प्रचलन हुआ।[2] दक्खिनी में कुछ स्थलों पर ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति के कारण "आप" के स्थान पर "अप" का प्रयोग होता है। विकारी तथा अविकारी एकवचन और बहुवचन में कोई अन्तर नहीं होता। बहुवचन बनाते समय "आप" के साथ "लोग" शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। अन्य सर्वनामों की भांति दक्खिनी में "आप" के साथ निश्चयवाचक अव्यय "ही" का प्रयोग होता है। प्रायः "ह्" का लोप हो जाता है और ईकार अथवा ऐकार सर्वनाम के साथ जुड़ जाता है।

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ४४५, पृ० ३०२
२. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ५९१, पृ० ८४६

आप के स्थान पर "अपै" (आप+ही) का प्रयोग भी होता है—

कर्ता—अपै मेराज कियां निशान्यां...... (मे आ)

...तूं आप निराल (इना)

...आप जिस मारग लासी मीरां मैं जाऊं तिधर (खुना)

झूटें क्या आप करे बखान (इ ना)

अपे बी मिलता (क प श)

...के वह अपैं मिसाल (इ ना)

सम्बन्ध—यूं बूज तूं अपनी रीत (इ ना)

अपना नायब करको....(मे आ) ("अपना" में "ना" षष्ठी का द्योतक हैं)।

अधिकरण—यूं आप में अपस देक (इना)

३२८. निजवाचक "अपस"—निजवाचक सर्वनाम के रूप में "अपस" का उपयोग भी होता है। काल्पनिक रूप आत्मस्य (=आत्मनः)<अप्पस्य<अपस। दक्खिनी में इस रूप का अधिक प्रयोग हुआ है—

कर्म—	देक अपस, अपना लेवे चुन	(इ ना)
	पलास अपसैं फ़ना करता है अव्वल	(फूल)
	इसथे अपसें अलिप्त गिन	(इना)
	यूं आप में अपस देक	(इना)
सम्बन्ध—	अपस की जात में ऐसा तूं यक है	(फूल)
अधिकरण—	कहा दरवेश अपस में आप सुनू यूं	(फूल)

सम्बन्ध कारक में बिना किसी विभक्ति के "अपस" का प्रयोग होता है, जो इसकी आत्मस्य <अप्पस्य वाली व्युत्पत्ति को प्रमाणित करता है।

अपस हुस्न दिखला.... (गुल)

अपस फ़ेल पर क्यूं वो बावल हुए (गुल)

३२९. निजवाचक तथा उत्तम-मध्यम पुरुषवाचक—"अपन"—

निजवाचक तथा उत्तम-मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम "अपन" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। खड़ी बोली में "अपन" का प्रयोग नहीं होता। चटर्जी का विचार है कि मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में "अप्पण" सर्वनाम का प्रचलन था। इसका परिवर्तित रूप "अपन" है। कोल भाषाओं में उत्तम तथा मध्यम पुरुष को एक साथ व्यक्त करनेवाला सर्वनाम विद्यमान है। आर्य भाषाओं में इस प्रकार का सर्वनाम प्रचलित नहीं रहा। द्रविड़ भाषाओं में उत्तम पुरुष के लिए दो सर्वनाम प्रयुक्त होते हैं। तेलुगु महाभारत में उत्तम पुरुष के बहुवचन में "एमु—नेमु" का प्रयोग मिलता है। "मेमु" का प्रयोग कम हुआ है। "मनमु" का प्रयोग कहीं कहीं हुआ है।[1] मनमु उत्तम

---

१. बी० वी० सुब्बैया—द्रविडिक स्टडीज, भाग २, पृ० ७

तथा मध्यम पुरुष दोनों का बोध कराता है। कोल तथा द्राविड़ी भाषाओं के प्रभाव से हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों, विशेष कर पूरबी बोलियों में प्रथम-मध्यम पुरुषवाची सर्वनाम "अपन" का प्रयोग प्रारंभ हुआ। पूरबी बोलियों में 'अपन' का उदाहरण—

"भाई अपन से क्या मतलब"।

दक्खिनी में इसका प्रयोग निजवाचक तथा उत्तम-मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम के रूप में होता है—

भौतेक मया सेती अपन. . . . (कु कु)
अपन मिल को घर जाएंगे. . . . (बोली)
अपन उसकूं बड़ा करको झटका चलाइंगे (क स पा)

३३०. निजवाचक सर्वनाम—अपना। निजवाचक सर्वनाम "आप" के साथ षष्ठी का "ना" प्रत्यय जोड़कर निजवाचक सर्वनाम "अपना" का उद्भव होता है। सभी कारकों में इसका प्रयोग पाया जाता है।

अपने को क्या समजता ऐं (बोली)
अपनों से दूरी च रैना अच्छा (बोली)
अपने में आप डूब को रैता (बोली)
पिव संग काज करने देखे सगुन अपन में (अली)

३३१. निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—यह—ई, ए-यू-ये।

(१) चटर्जी ने निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की उत्पत्ति संस्कृत के 'एतत्" से मानी है। "तत्" के लुप्त होने पर "ए" शेष रह जाता है।[१] लंहदा और गुजराती में कर्ताकारक के अविभक्तिक रूप में "ए" का प्रयोग होता है। दक्खिनी में भी "ए" का उपयोग होता है। अवधी तथा गुजराती के सविभक्तिक कर्ताकारक में "एं" प्रयुक्त होता है। इस "ए" से अथवा "एतत्" के बिना सविभक्तिक रूप से "यह" अथवा "ये" का उद्भव हुआ। अवधी के अविभक्तिक कर्ताकारक में "यू" का प्रयोग होता है। दक्खिनी में भी "यू" प्रयुक्त हुआ है। बिहारी में अविभक्तिक कर्ताकारक में "ई" अथवा "इ" का प्रयोग होता है। दक्खिनी साहित्य तथा बोलचाल में इसका उपयोग हुआ है। इन तथ्यों से यह प्रकट होता है कि निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के प्रयोग में दक्खिनी एक ओर पूरब की बोलियों और दूसरी ओर लंहदा से प्रभावित है। एक ही लेखक अथवा वक्ता कई रूपों का प्रयोग करता है—

ई — ई नफ़्स अगर न चुलबुलाता (मन)
ए — ए दूध मुहब्बत (मे आ)
,, — यू बूद ओ ए केतक बार (इना)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ५६६, पृ० ८२९.

ए —	ए दो दिसते एक ही हात	(इना)
यू —	गफ़लत करता सो यू कौन	(इना)
,, —	न हो समझ किसको यू अहवाल हाल	(इब्रा)
,, —	धर्या जिसने यू गुलशने इश्क़ नाउं	(गुल)
ये —	जूं इसीच का ये ठस्सा है	(इना)

(२) ये—निश्चयवाचक निकटवर्ती सर्वनाम "यह" अविकारी बहुवचन में "ये" के रूप में प्रयुक्त होता है। संस्कृत सर्वनामों के पुंल्लिगी रूप के प्रथमा के बहुवचन के अन्तिम "ए" का इस रूप पर प्रभाव लक्षित होता है—

ये दूक उसकूं मान (इना)

(३) इस—विकारी एकवचन में "यह" "इस" में परिवर्तित होता है। चटर्जी के विचारानुसार सं० "एतत्" के पुंल्लिगवाची सम्बन्ध कारक के एकवचन एतस्य से इसकी उत्पत्ति हुई है—

कर्म-सम्प्रदान—	इस बिन इसकूं सारा अड़	(इना)
	इसकूं कुछ खाने को तो दो	(बोली)
करण-अपादान—	पन इससूं दायम यारी है	(इना)
	इससे बच को जाते कां है	(बोली)
सम्बन्ध—	इसका माने....	(मे आ)
अधिकरण —	यूं इसमें अछतें जीवा	(इना)

(४) इन—इनन-इनो—विकारी बहुवचन में "इन" का उपयोग होता है। इसकी उत्पत्ति सं० इदम् के कल्पित रूप "एनाम्" से मानी जाती है। ब्रजभाषा की भांति कहीं कहीं बहुवचन सूचक "न" जोड़ कर 'इनन" के साथ विभक्ति लगाई जाती है। "इनो" "इनन" का परिवर्तित रूप है। अविभक्तिक कर्ता कारक के बहुवचन में भी "इनो" अथवा "इनों" का प्रयोग होता है—

इनों दोनों, अम्मा—बेटे खा-पी को....		(क स पा)
कर्म-सम्प्रदान—	इनकूं काइ कू सताते	(बोली)
	गोप्यां में इनन कूं ओ है जो कान	(इना)
करण-अपादान—	इनसे कुच होता बी है?	(बोली)
	इनसे कइँ दूर जाना पडेगा	(बोली)
सम्बन्ध—	इनका तुम बाल बिंगा नइं कर सकते	(बोली)
अधिकरण—	इनो पै गुस्सा आया तो....	(बोली)

३३२. निश्चयवाचक दूरवर्ती तथा अन्य पुरुष वाचक : वह, वो, ओ।

१. अविकारी एक वचन में वह, वो तथा ओ का प्रयोग होता है। चटर्जी काल्पनिक

रूप "अव" से "ओ" की उत्पत्ति मानते हैं।[1] हिन्दी से सम्बन्धित कई बोलियों में अन्य पुरुषवाची तथा दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के रूप में ओ तथा ऊ तथा इससे मिलता-जुलता रूप प्रचलित है। "ओ" अथवा सं० अदस् के किसी सविभक्ति रूप से "वह" का विकास हुआ। आधुनिक उर्दू में एकवचन तथा बहुवचन में "वो" का प्रयोग होता है। "वो" में "व्" श्रुति के रूप में आया होगा। दक्खिनी में वह तथा 'वो' के अतिरिक्त 'ओ' का प्रयोग भी होता है। इस सम्बन्ध में दक्खिनी और लंहदा में साम्य है। मैथिली में भी 'ओ' प्रयुक्त होता है। दक्खिनी के उदाहरण निम्न प्रकार हैं।

ओ —	ये सब करनी ओ ले बूज	(इना)
—	न कर सक ओ वां....	(इब्रा)
	पर्दा ओ जो बीच था गया फट	(मन)

विशेषण के रूप में भी 'ओ' का प्रयोग हुआ है—

	यह निदा सुन ओ दिवाना चुप रहा	(पंछी)
वह —	वह पहाड़ के पिच्छे गया	(क नौ हा)
—	......वह है अहद	(न ना)
	हक़ कूं वही पा अवल	(अली)
वो—	वो पहाड़ के पिच्छे गया	(क नौ हा)

(२) वे—अविकारी बहुवचन में 'वे' प्रयुक्त होता है:—

सके देखने वे तेरी जात पाक (गुल)

(३) उस—उन। विकारी एकवचन में 'वह' के स्थान पर 'उस' का प्रयोग होता है। सं० सर्वनाम 'अदस्' के कल्पित रूप 'अव' के षष्ठी के एकवचन अवस्य>अवुस्स से इसका उद्भव माना जाता है। विकारी बहुवचन का रूप उन-अदस् के कल्पित रूप 'अव' के षष्ठी के बहुवचन वाले रूप 'अवानाम्' से उद्भूत है। खड़ी बोली में विकल्प से 'उन्ह' अथवा 'उन्हों' के साथ विभक्ति जोड़ी जाती है। दक्खिनी में इस प्रकार का प्रयोग कम मिलता है। कुछ स्थलों पर 'उन' के साथ बहुवचन सूचक 'न' और जोड़ा जाता है। 'उनन' से 'उनो' अथवा 'उनों' का विकास हुआ होगा। अविभक्तिक कर्ताकारक में भी 'उन' अथवा 'उनो' का प्रयोग पाया जाता है—

उन इसमें जवाब दीता	(इना)
दिन रात उन और न सोचे	(खुना)
के आधार है उन निराधार कूं	(गुल)
उनो गुनाहगार होते हैं, हो	(न ना)

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ८७२, पृ० ८३५

'उस' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

कर्म तथा सम्प्रदान — जिसका है ये उसी च पूच (इ ना)

(उसीच<उस+हीच)

वह क्या उसकूं जाने (खु ना)

अछो जम हक़ सूं उसको पेशबाजी (फूल)

जिसे ज्यूं मंगता उसे वों रकता (सब)

संबंध— उसी के नज़ार्यां में नित शौक़ था (गुल)

(उसी के< उस+ही के)

अधिकरण— तेरा एक वज़ीर उस पै भारी अछै (अ ना)

किया उस उपर यक जलाली नज़र (न ना)

बम्मन का दिल उस पो आ गया (क नौ हा)

(४) जब 'वह' सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है तो कई स्थलों पर विकारी विशेष्य के साथ इसका प्रयोग अविकारी एकवचन में किया जाता है—

वो मुहल्ले में एक धोबी था (क नौ हा)

(वो मुहल्ले में=उस मुहल्ले में)

वो घर की वेटी तुमारे से शादी कर को लाऊंगा। (क इ प)

(वो घर की=उस घर की)

विकारी बहुवचन 'उन' अथवा 'उनन' के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

कर्ता— इश्क़ भेद बूझा उन्हींने तमाम (इब्रा)

कर्म-सम्प्रदान— जो कोइ चोर है दे उन्होंकूं सजा (न ना)

शहंशा उनन कूं लगे काटने (अली)

है कुछ पन उनन कूं बूज्या कुछ (मन)

......जाना उन्हें किधर (खु ना)

सम्बन्ध (अविभक्तिक) उनन नूर थे हूर जन्नत की लाजे। (कु मु)

चंदर सूरज उनन दोनों...... (कु कु)

कुछ शब्दों में सम्बन्ध कारक में 'उन' के स्थान पर 'विन' के साथ विभक्ति जोड़ी जाती है। इस प्रकार का रूप ब्रजभाषा में भी मिलता है—

करें भोग विनके...... (कु कु)

अधिकरण-उन्होंमें यहूदी अथा एक कलां (अली)

अन्य पुरुषवाचक-उनों में बी यूं आया है। (सब)

३३३. निश्चयवाचक तथा सम्बन्ध सूचक—सो

'सो' का प्रयोग दक्खिनी में निश्चयवाचक तथा अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम की तरह

होता है। कुछ स्थलों पर 'जो' के साथ इसका प्रयोग संबंध सूचक सर्वनाम के रूप में होता है। 'वह' तथा 'सो' का प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में होता है। संस्कृत के अन्य पुरुषवाची सर्वनाम 'तत्' के प्रथमा के एकवचन 'सः' से इसका विकास हुआ है। संस्कृत में प्रथमा के एकवचन को छोड़-कर 'तत्' का शेष 'त' रहता है और उसके साथ विभक्ति लगाई जाती है। दक्खिनी तथा हिन्दी से संबंधित अन्य बोलियों में अविकारी एकवचन और बहुवचन में 'सो' का तथा विकारी एकवचन 'तिस' का प्रयोग होता है। 'तिस' संस्कृत 'तत्' का पुंल्लिग में षष्ठी के एकवचन 'तस्य' का रूपान्तर है। विकारी बहुवचन में प्रयुक्त 'तिन'-कल्पित रूप 'तानाम्' (तेषाम्) से रूपान्तरित हुआ है। दक्खिनी में 'सो' के विकृत बहुवचन में 'तिन' के स्थान पर 'उन' का प्रयोग होता है।

अविकारी कर्त्ता	— वाजिब का मुमकिन सो नफ़्स...	(मे आ)
	सो है सगट जात क़दीम	(इ ना)
	सो यता कुछ बड़ा	(गुल)
कर्म-सम्प्रदान	— पल तिसकूं ना होवे फ़ाम	(इ ना)
	पकड़ डोरी कहकश सो तिसको हिला	(इब्रा०)
	न बिन जौहरी तिस पछाने तो कोय	(इब्रा०)
करण-अपादान	— क्या लिक लिक कहो तिससूं	(अली)
	मार डाले हैं मुझे तिसते हनोज़ (पंछी)	
सम्बन्ध	— के यक अम्र तोड़्या सो तिसका यू हाल	(गुल)
	फल तिसके ना हात चड़े रे	(सु स)
	तिस नांव सो अली है	(अली)
अधिकरण	— सितार्यां का तगट तिस पर	(अली)
	....तिस पर देवे सान	(फूल)
	सके कां फ़लक तिसपै दीदे फिरा	
	कदी तिसमें ल्या गुल रूपहरी धरे	(गुल)

संबंध सूचक 'सो' का उदाहरण निम्न प्रकार है—

जो तुमारा जी बोल्या सो करो (क जा फ़)

३३४. (१) सम्बन्ध वाचक—जो-जे। चटर्जी 'जो' की उत्पत्ति सं० 'यत्' के प्रथमा के एक वचन—यः से मानते हैं। अवधी तथा छत्तीसगढ़ी में प्रथमा के बहुवचन—"ये" के विकृत रूप 'जे' का प्रचलन एकवचन में भी हुआ है। दक्खिनी में पश्चिमी हिन्दी का 'जो' तथा पूर्वी हिन्दी का 'जे' दोनों प्रयुक्त हुए हैं। अविकारी बहुवचन में भी 'जो' तथा 'जे' ज्यों के त्यों रहते हैं। कभी कभी बहुवचन में 'लोग' शब्द जोड़ देते हैं। मैथिली तथा गुजराती में भी 'जे' का प्रचलन है—

जे कोई तुमारा रूप जो मन में चितारे हैं अली (कु कु)
फ़लक यू **जो** हैं...... (गुल)

राह अछे **जो** कुमल.... (अली)
जे ना काया धूल मिलावें.... (खुना)
जे काम केरे...... (मन)

(२) कुछ अन्य सर्वनामों के साथ 'जो' के अविकारी रूप का प्रयोग होता है—

जे कुच बोल मुज...... (इब्रा)
जो कुच मंगूं तुज पास थे (कु क़ु)
जु **कुछ** तूं करे बुद की तदबीर सूं (अ ना)
जु कुच कहने का था सो मैं तो कह्या (कु क़ु)
जो कोई चोर हैं दे उन्हों कू सजा (न ना)

जब 'जो' किसी विकारी विशेषण के साथ प्रयुक्त होता है; तो कुछ स्थानों पर उसके अविकारी रूप का प्रयोग किया जाता है—

जो घर में तीर गिरिंगी.... (कइ पा)
(जो घर में=जिस घर में)

(३) जिस—विकारी एक वचन में 'जो' 'जिस' में रूपान्तरित होता है। सं० 'यत्' के पु० सम्बन्धकारक एकवचन 'यस्य' से इसकी उत्पत्ति हुई है।

कर्म-सम्प्रदान	— **जिसे** पाल पोस कर बड़ा किया	(बोली)
करण-अपादान	— **जिसते** यू चंद रहे सैर में जम	(मन)
	जिससे पाया, उसी च का गाया	(कहा)
सम्बन्ध	— ये **जिसका जे जे** हाल	(इ ना)
	जिसका नांव खुदा है	(सब)
अधिकरण	— **जिसपो** अल्ला रहम करता	(बो)

(४) विकारी बहुवचन में 'जिन' का प्रयोग होता है। इसका सम्बन्ध काल्पनिक रूप 'यानाम्' से है। कहीं-कहीं ब्रज की भांति बहुवचन सूचक' 'न' और जोड़ा जाता है। षष्ठी के लिए भी 'न' प्रत्यय लगता है —

जिन तुम कीता करनवार (इ ना)
जिन जोत में ग्यान कूं उपाया (मन)
जिनके अगे चान-सूरज.... (खतीब)
जिनन नावं...... (गुल)

अविभक्तिक बहुवचन में भी जिने अथवा जिनों का प्रयोग होता है—

बैठा है जिने अपस के तइं हार (मन)

३२५. अनिश्चयवाचक—कोई। 'कोई' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

सं० कोऽपि>शौ० कौवि>ख० बो० कोई। अविकारी एकवचन तथा बहुवचन में कोई

अन्तर नहीं होता ; विकारी एकवचन में 'किसी' का प्रयोग होता है। किसी की उत्पत्ति सं० 'कस्यापि' से मानी जाती है। विकारी बहुवचन में 'किन' अथवा 'किनी' का प्रयोग होता है। किन की उत्पत्ति काल्पनिक रूप 'कानाम्' से हुई। कहीं कहीं 'कोई' के स्थान पर अविकारी रूप 'को' का प्रयोग होता। इस 'को' का सम्बन्ध सं० 'कः' से है। 'कोई' के स्थान पर पादान्त में 'कोय' का प्रयोग भी होता है—

अविकारी एक व०	— अंधारे की **कोई** ले दारू पिलाय	(इब्रा०)
	जो हर **कोई** लेवे....	(गुल)
	ना उस शाह-सा शह विलायत है **कोय**	(इब्रा)
	न मुझ शाह उस्ताद-सा होर **को**	(इब्रा)
अविकारी बहु व०	— **कोई** सगट मिला देखेंगे	(सु सु)
विकारी रूप	— अब लग तो **किसे** न राय पूछ्या	(मन)
	किन साफ़ हुआ नहीं बिन इन्साफ	(मन)

३३६. अनिश्चय वाचक—'कुछ'। सं० 'किंचित्' से 'कुछ' की उत्पत्ति मानी जाती है। अविकारी तथा विकारी वचनों में कोई परिवर्तन नहीं होता। अल्पप्राण की प्रवृत्ति के कारण 'कुछ' के स्थान पर 'कुच' का प्रयोग होता है।

....जो **कुच** आरायश..	(मे आ)
वह तू खाली **कुच** ना **कुच**	(इ ना)
न था **कुच** सो रोशन....	(इब्रा)
कुच का **कुच** हो गया ना....	(बोली)

३३७. प्रश्नवाचक—कौन

(१) 'कौन' की व्युत्पत्ति सन्दिग्ध है। पश्चिमी अपभ्रंश के 'कवनु' अथवा 'कवन' से इसका सम्बन्ध माना जाता है। हार्नली इसकी उत्पत्ति अपभ्रंश के परिमाण वाचक 'केवड्डु' से मानते हैं।[1] चटर्जी इसका उद्भव 'कः पुनः' से स्वीकार करते हैं।[2] अविकारी एक वचन तथा बहुवचन में 'कौन' का प्रयोग होता है—

गफ़लत करता सो यू **कौन**	(इ ना)
तू **कौन** सो तूं पछानता है	(मन)
घर में **कौन** थे **कौन** नइं हमना मालूम नई	(बो)

(२) विकारी एकवचन में 'किस' और बहुवचन में 'किन' का प्रयोग होता है। 'किस'

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ४३८, पृ० २९१

२. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ५८३, पृ० ८४२

की उत्पत्ति सं० कस्य>प्रा० किस्स से मानी जाती है। बहुवचनवाची 'किन' का सम्बन्ध सं० किम् के पु० षष्ठी के काल्पनिक रूप 'कानाम्' से है।—

अविभक्तिक प्रयोग में भी 'किन' आता है —

काँसे में **किसे** देऊं	(मे आ)
उसथे ज़ालिम कहना **किस**	(इ ना)
तेरी सिफ़त **किन** कर सके	(कु क़ु)
किने कह सके हम्द तुझ बेशुमार	(अ ना)

३३८. प्रश्नवाचक—क्या

दक्खिनी में 'क्या' तथा 'क्यों' के लिए मागधी के 'कि' से मिलता जुलता रूप 'की' का प्रयोग होता है। पुरानी दक्खिनी में 'क्या' के स्थान पर 'की' के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक रही—

पुछाया के तुम **क्या** सबब आय हो	(कु मु)
हरेक ठार कुदरत के **क्या क्या** है काम	(न ना)
तूं कौन है **क्या** सो तूं च जाने	(मन)
की गत होए देक अमास	(इ ना)

३३९. बाज़े

अ फ़ा के सर्वनाम 'बाज़' का प्रयोग दक्खिनी में होता है—

बाज़ें कहें के जायज़ हक़	(इ ना)

विशेषण

३४०. दक्खिनी के विशेषणवाची शब्दों को निम्न भागों में विभक्त किया जाता है—

(१) संस्कृत से प्राप्त तत्सम विशेषण।

(२) अरबी तथा फ़ारसी से प्राप्त तत्सम विशेषण।

(३) म भा आ से प्राप्त तद्भव विशेषण।

(४) संज्ञा, सर्वनाम, अव्यय तथा क्रिया से बनाये गये विशेषण

(५) मराठी से प्राप्त विशेषण।

(६) क्षेत्रीय बोलियों से प्राप्त विशेषण।

३४१. संस्कृत से प्राप्त तत्सम विशेषण—दक्खिनी में ऐसे बहुत कम विशेषणवाची शब्द हैं जो सीधे संस्कृत से प्राप्त किये गये हैं। बहुत से संस्कृत तत्सम, भारतीय दर्शन शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

....**संचित** सार	(इ ना)
इसथे अपसें **अलिप्त** गिन	(इ ना)
जैसा—वैसा कल्पित है	(इ ना)
तो उस बोले **खंडित** ग्यान	(इ ना)
फ़लक ताबदां हो रह्या नित **नवल**	(गुल)
गौर बदन के बना स्याम **सलोने** निपा	
चौसार **चंचल** नार करे प्यार अपारा	(अली)
ओ टुकड़े यू **अखंड** सारा	(म न)
सभी ईदां में **उत्तम** ईद...	(कु कु)

३४२. अ फ़ा से प्राप्त विशेषण

(१) अ फ़ा से प्राप्त विशेषणों की संख्या सं० तत्सम विशेषणों से अधिक है। अ फ़ा के नकारार्थक शब्द अनेक प्रत्ययों से युक्त होकर विशेषणवाची बन जाते हैं। धार्मिक तथा शृंगारिक भावों को व्यक्त करने के लिए इस प्रकार के विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे विशेषणों की संख्या बहुत कम है जो खड़ी बोली में प्रयुक्त नहीं होते।

तू इस नफ़सानी मार्या तूफ़ां (इ ना)

(नफ़्स-नफ़्स ानी)

ग्यान चक अंधे मुश्किल गत (इ ना)
पाक दीठा मुनज़्ज़ा नूर (इ ना)
ये तो बोलना होए ख़ाम (इ ना)
ज़ात कदीमी अहै असल (इ ना)
नेक आपैं कर्ता भी (इ ना)
फ़ानी जगत में देक सिफ़ात (इ ना)
अथा रूप मख़फ़ी जो सुभान का (इब्रा)
गुनी लोक लुक़मान बुध बेशुमार (इब्रा)
...माशूक़ बी बेमिसाल (गुल)
ककर पास तेरे च बेखुद है मन (गुल)
...होवे दिल ख़िजिल (गुल)
हुआ है अमलनामा मेरा सियाह (गुल)
दिसे किस्ब अमलानामा मेरा सियाह (गुल)
दिसे किस्ब मौरूसी है तुज में जम (गुल)
कवाया दुगन नामवर नेकबख़्त (गुल)
शुजाअत सो नामी बहादुर तुहीं (गुल)
...येती नाजुक नवेली है (अली)
तेरे बचन शीरीं अगे शक्कर देखों खारी लगे. (अली)
मुतव्विल कर तूं मेरी जिन्दगानी (फूल)
करम सूं है तेरे तूबा मुसम्मर (फूल)

(२) अ फ़ा के विशेषणवाची शब्द प्रायः ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं किन्तु कुछ स्थानों पर ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तनों के साथ उनका प्रयोग हुआ है—

गूंद्या ख़याल भौंरा कूना बास (इब्रा) (कूना<कुहना)
करूं इस गुंग्यां सात क्या बात मैं (कु मु) (गुंगा<गुंग)
येक खबसुरत लकड़ी मिली (क नौ हा) (ख़बसुरत<खूबसूरत)
ऊंची माड़ी बिलन दरोजा (गी) (बिलन<बलन्द)

(३) कुछ स्थानों पर अ फ़ा के विशेषणवाची शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होता है—

उदा०—एक देव है पादशाह रूसियाह, गुमराह, बदकार, उसका नांवं रक़ीब ना बरखुरदार, दिल आज़ार, पुश्तमुरदार, हेचकार, बेबहार...। (सब)

३४३. संस्कृत तथा अ फ़ा के तत्सम विशेषणों की अपेक्षा म भा आ से प्राप्त विशेषणों की संख्या अधिक है। ये विशेषण संस्कृत से मध्यकालीन प्राकृतों में पहुंचे और वहां से अपभ्रंशों से होते हुए अन्य नव्य भारतीय भाषाओं के समान दक्खिनी में आये—

सं० विशेषण 'निराला' से सम्बन्धित 'निराल' तथा 'निरवाल' का प्रयोग दक्खिनी के कवियों ने बहुत किया है—

बूजत है तूं आप निराल		(इ ना)
...कर अपस कूं निरवाल		(मन)
जे कुच नवा करे शआर		(इ ना)
		(नवा<नव)
नवा रूप परगट हो...		(इब्रा)
नवी बात मज़मून कर इक किताब		(इब्रा)
या के चन्द सीतल सात	(इ ना)	(सीतल<शीतल)
...जिसे है ग्यान सपूरा	(खु ना)	(सपूरा<सम्पूर्ण)
गुनी लोक लुक़मान बुध बेशुमार	(इब्रा)	(गुनी<गुणी)
गुपत तूं च हो तूं च परघट अछे	(गुल)	(परघट<प्रकट)
के जिसका ख़लफ़ तूं सुलक्खन अहे	(गुल)	(सुलक्खन<सुलक्षण)
...राह अछे जो कुमल	(अली)	(कुमल<कोमल)
यू अम्र यू तूं रूप अपूरब	(मन)	(अपूरब<अपूर्व)
दिसै मुज नयन इस हौंज पै यू चंदना निझल	(अली)	(निझल<निश्छल)
निछल पानी सूं सब्ज़ धोये...	(फूल)	(निछल<निश्छल)
अज़ल थें किये हैं मुजे महबली	(अली)	(महबली<महाबली)
देखे तो ओ बन सुका है बिल्कुल	(मन)	(सुका<शुष्क)
या चींवटी लड़ निसंक न्हासे	(मन)	(निसंक<निःशंक)
ना थीर रहे दृष्ट तब लग	(मन)	(थीर<स्थिर)
चितारा हो अतारिद आ चितर हर यक बिचित्तर...		(बिचित्तर<विचित्र)
मैं यक बन की कली कंवली हूँ मक़बूल	(फूल)	(कंवली<कोमला, कोमली)
चतर चौसार राजा उस नगर का	(फूल)	(चतर<चतुर)
...पिया नीठुर हुए हैं अब	(अली)	(नीठुर<निष्ठुर)
अछते तो जो बिंगे बिंगे च अछते	(मन)	(बिंगा<वंक)
कूड आदमी ऊपर चिकना दिसता दरूनी सब रूखा।	(सब)	(रूखा<रूक्ष+आ)

३४४. (१) खड़ी बोली की भांति दक्खिनी में भी संज्ञा, अव्यय तथा क्रिया के साथ उपसर्ग-प्रत्यय जोड़ कर विशेषणवाची शब्द बनाये जाते हैं। कुछ स्थलों पर उपसर्ग अथवा अव्यय+संज्ञा और अव्यय+क्रिया, संज्ञा+क्रिया के योग से विशेषणवाची शब्द बनते हैं—

नकारार्थक अव्यय और संज्ञा के योग से बनने वाले शब्द विशेषणवाचक होते हैं—

अगर लक अमोलक रतन जोत होय (इब्रा) (अ<न+मोलक)

अटल अक्ल का गरचे गज मस्त है (गुल) (अ<न+टलना)

गर आवे अछूता च जा ना सके (अ ना) (अ<न+छूना)

गौर बदन के बना स्याम सलोने निपा (अली) (स+लोना<लवण (क)

चंदा सो हाथ का नख हो लग्या छाती पे कुबल (अली) (कु+बल)

अथा शह के नैनों कूं औकल अज़ार (अली) (अव+कल)

अचुक तीर लाग्या... (अली) (अ<न+चूकना)

क्यूं पा सके ये सुघड़ सुलच्छन (मन) (सु+घड़ना)

ना हम से अबूजे होर अधूरे (मन) ((अ<न+बूजना)

बींध्या अनबींधा मोती का दाना (सब) (अन<न+बींधना)

(२) कुछ संज्ञाओं के साथ प्रत्यय जोड़ कर विशेषणवाची शब्द बनाये जाते हैं। संज्ञा के साथ 'आ' जोड़ कर पुल्लिगवाची और "ई" जोड़ कर स्त्रीलिंगवाची विशेषण बनते हैं। 'आ' के संबंध में प्रत्यय सम्बन्धी अध्याय में विस्तार से लिखा जा चुका है। कुछ विशेषणवाची शब्द मूलतः आकारान्त होते हैं। स्त्रीलिंगी विशेष्य के साथ जब उनका प्रयोग किया जाता है, तो वे ईकारान्त बन जाते हैं। विशेषणवाची शब्दों में अन्तिम आकार प्रायः पुल्लिग का द्योतक होता है।

झूटा हलाक है— (मे आ) (झूट+आ)

या खारे वीर पानी ज्यूं (इ ना) (खार<क्षर+आ)

जे मग्ज़ मीठा लागे (खु ना) (मीठ<मिष्ट+आ)

वही आशिक़ों में सचा इश्कबाज़ (इब्रा) (सच<सत्य+आ)

दिया यूं मिठे लब सूं कडवा जवाब (गुल) (कडवा<कटु+क, कड़ुवा, 'व' श्रुति)

किया जीव जलती अगन का थंडा (अ ना) (द० 'थंड,=ख०' ठंड+आ)

देखे तों ओ बन सुका है बिल्कुल (म न) (सुक<शुष्क+आ)

गुन तुझ में जो है कनिष्ट खोटे (मन) (खोट+आ)

मछर ते न्हना घना है गज ते (म न) (घन+आ)

तेरी तारीफ़ का ऊंचा है पाया (फूल) (उच्च+आ<ऊँचा)

कूड आदमी ऊपर चिकना दिसता दरूनी में सब रूखा (सब)
(रूखा<रूक्ष+आ, चिकना<चिक्कण)

इन विशेषणों का स्त्रीलिंग रूप इस प्रकार होगा—

झूटी, खारी, मीठी, सची, मिठी, कडवी, थंडी, सुकी, खोटी, घनी और ऊंची।

(३) संस्कृत के तत्सम विशेषणों का प्रयोग करते समय भी पुल्लिगवाची अकारान्त शब्द को आकारान्त बनाने की प्रवृत्ति पाई जाती है—

जे कुच नवा करे शआर (इ ना) (नव+आ>नवा)
सकला बिकार रहे समान (इ ना) (सकल+आ>सकला)

(४) षष्ठी सूचक चिन्हों के संयोग से विशेषणवाची शब्द बनते हैं:—

— एरा<केरा। चचेरे मायां बी हंस को . . . (क स पा)
(चचेरा<चाचा+एरा<केरा)

इला, ईला, एला, ला, केरा, कर, प्रा० इल्ल आदि।

उदा०—

शाह अली खुदा के लाडिले. . . . . . (सब)
(लाड+इला)

रसीले कंठ सूं आलाप. . . . . . (कु कु)
(रस+ईला)

भोत छबीला कडा हटीला. . . . (सब)
(छबीला<छवि+ईला, हटीला=हट+ईला)।

मेरी सौतेली मां मुजे रोज़ाना. . . . (क सि बे)
(सौत+एली)

पहले मैं मझली बेगम कू पूछता ऊँ. . . . . (क इ पा)
(मझ<मध्य+ली, स्त्री०)

—की, उदा०—सटे भारां **बंगाले की** शकर की (फूल)

(५) कुछ शब्दों के साथ 'ई' के योग से पुल्लिगवाची विशेषण बनाये जाते हैं। यह ईकार सं० इन् अथवा इक का प्रतिनिधित्व करता है:—

ऐसा है वह ग़ैबी थान (इ ना)
(ग़ैब+ई)

यूं बहु भेक लिबेसी होय (इ ना)
(लिबेस<लिबास+ई)

३४५. संज्ञा और क्रिया के योग से कुछ विशेषणवाची शब्द बनते हैं:—

आला सकी, आला दिसे जोबन, खड़ी दूदां भरी (कु कु)
(दूद<दुग्ध+√भरना+ई. स्त्री०)

३४६. भूतकालिक कृदन्त का उपयोग कई स्थलों पर विशेषण के रूप में किया जाता है। इस प्रकार के विशेषण पुल्लिग में आकारान्त और स्त्रीलिंग में ईकारान्त रहते हैं:—

भून्या— भून्या बीज क्यूं कर उगवे (सु सु)

(√भूनना+इया<सं० इतः=भून्या)

फाटी— फाटी टूटी कंबली नीकी कलमा जपनहार (खु ना)

(√फटना—भूत० कृद० पु० "फटा", स्त्री० फटी, फाटी।
√टूटना—भूत० कृद० पु० टूटा, स्त्री टूटी)।

भरी— भरी नदी में जैसे नाव (इ ना)

(√भरना, भूत० कृद० पु० भरा, स्त्री० भरी)।

या धान छड्या होय सारा (सु स)

(√छडना—भूत० कृ० छड्या)।

३४७. वर्त्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है:—

नद्यां भैत्यां सुखाया है (अली)

(√बहना, वर्त्त० कृ० भैता<बहता पु०, स्त्री० बहु० व० भैत्यां)।

मैं अपभावता करता कार (इ ना)

(अप=आप+√भाना, कृ० पु० भावता=अपभावता)।

३४८. खड़ी बोली तथा हिन्दी से संबंधित अन्य बोलियों में प्रचलित कुछ विशेषणवाची शब्द दक्खिनी में भी प्रयुक्त होते हैं:—

ऐसा ग्यान यू खाली फोक (इ ना)

(फोक—पुरा० हि०, गुज०, मरा० फोकट, पं० फोक, फोग, फुक्का=मिथ्या)

वह तो **चोखे** बूझनहार (इ ना)
फ़लक **यू जो है सो यता** कुछ बड़ा (गुल)
निपट अड़ रह्यां का मददगार तूं च (गुल)
यूं आंक **नहनी** थी या बड़ी थी (मन)
तेड़ा है इसे ठिकान पर ल्या (मन)
नीके नीके नुकात बोले (मन)
जब चाल चली अपस **अनूटी** (मन)
यक जान ते नरम होर **कड़ाड़ा** (मन)

(कड़ाडा<करड़ा<कड़ा)

ऐ 'मआनी' तेरी मानी सब में **स्यानी** नार है (कु क़ु)
अजब जान **मैमन्त** माता है वो (क़ु मु)

३४९. दक्खिनी में कुछ विशेषण विशेष रूप से प्रयुक्त होते हैं—

तेरे **जम** दोस्तां सूं यार हूं मैं (फूल)

(जम=स्थायी)

पाच के तख्ते बड़े बाग़ के दिसते जमन (अली)

(जमन, जम=स्थायी, बहु व०)

इन्साफ़ है साफ़ गदगड़ा जुल्म (मन)

(गदगड़ा, हि० बो० गदगला)

यू रात गड़द, यू दीस, यू धूल (मन)

(गड़द<गर्द)

उस पलिष्ट ठार में...... (मन)

(पलिष्ट=अपवित्र)

ऐसे मर्द औरतां के निबतर रासकरास (सब)

(निबतर=निकृष्टतर, रासकरास (राशिकी राशि ? अथवा फ़ा रास=रास्ता, अर्थ= ठीक ठीक, यथेष्ट, उचित)।

........कुफ़र **तलपट** हुआ (क़ु मु)
खैर बिचारा **हिरास** है कको जवें बोले.... (क नौ हा)
तू मेरे **कौंले** बच्चे की पीठ पो बैठको.... (क स पा)

(कौंला<सं० कोमल)

३५०. मराठी के कुछ विशेषणवाचक शब्द दक्खिनी में ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं:—

गूदड़े **जूने-नवे** थिगले लगा (पंछी)

(जूना=पुराना)

अंख्यां डोंग्यां ज्यूं खुडी सार के (कु मु)

(डोंगी=गहरी)

अर्श के धीर था रुख नीट उसका (फूल)

(नीट=ठीक, स्वच्छ, उचित, (गुजराती में 'नीठ' रूप प्रचलित है, जिसका अर्थ है स्थिर, पक्का। नीठ <प्रा० णिट्ठिय <सं० निष्ठित)।

यता वो **डाट** था जंगल जो खोल आंक (फूल)
थे घर पर घर यते उस शहर में **डाट** (फूल)

(डाट<मरा० दाट=घना)

तुज पर लइ लइ क़िस्से घड़ेंगे इस ठार (सब)

(लइ=बहुत)

३५१. सर्वनाम विशेषण

(१) कुछ मूल सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं:—

फ़लक **यू जो** है.... (गुल)
ये दूक उसकूं शान (इ ना)

के **यू** लैला अहै होर **वो सो** मजनूं (फूल)

(२) सविभक्तिक विशेष्य के साथ कुछ सर्वनामों का विकारी रूप प्रयुक्त होता है—

दिया इश्क़ का **तिस** जुलेखा कूं दाग़ (गुल)

(३) यह, वह, जो तथा कौन से परिमाणवाचक विशेषण बनते हैं :—

(क) निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम "यह">इता, यता, यथी, इतना। हार्नली 'इतनी' की उत्पत्ति सं० इयत् से मानते हैं।[1] दक्खिनी में इता, यता पुल्लिंगवाची और इती, यती, यथी स्त्रीलिंगवाची रूप हैं। दक्खिनी में खड़ीबोली का 'इतना' विशेषण कम प्रयुक्त हुआ है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इतना की अपेक्षा 'इता' 'यता' 'इयत' से अधिक निकट हैं। अपभ्रंश के निश्चयवाचक सर्व० विशेषण एवड् तथा प्रा० एव, एम आदि से इता-यता का संबंध नहीं है। कहीं स्त्रीलिंगी विशेष्य के लिए भी 'यता' का प्रयोग हुआ है। बहुवचन में एते का प्रयोग होता है—

यते ऊचे थे उस घर के दिवारां (फूल)
यथी अराइश हुई...... (अली)
मैं **इतना** समझता हूं वह है अहद (न ना)
एक इश्क़ उसके **एते** रंगां **एते** सूरतां, एक आपै **एतां एतां** मूरतां.... (सब)

(ख) दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—वह>उत्ता, वते, विते। सं० 'तावत्' से उद्भूत। सं० तावत>प्रा० तेत्तिउ अथवा तेत्तिओ>ख० बो० तित्ता अथवा उत्ता>साहित्यिक ख० बो० उतना। सं० तत् के एक वचन के रूप 'सः' से हिन्दी के ओ, वो अथवा वह का सम्बन्ध माना जाता है। ओ अथवा वह के रूप से ही 'उत' आदि का सम्बन्ध है :—

तुमकूं कल **उत्ता** समझाए पन तुम माने नईं (बोली)
ऊता लेख्या लेखन हार (इ ना)
........जेते सिलह् बांदे **वते** (अली)
जिते जीवां हैं आलम के **विते** जीवदान पा सिर थे (कु कु)

(ग) संबंधवाचक—जो>जिता, जेता, जिते, जेते। जिता आदि की उत्पत्ति सं० यावत् से मानी जाती है। सं० यावत्>प्रा० जेतिउ>ख० बो० जित्ता, साहित्यिक ख० बो० जितना। दक्खिनी के 'जेता' का 'यावत्' से निकट सम्बन्ध है। जेता का बहुवचन जिते तथा जेते होता है।

उदा०— **जिता** जीव तिरलोक हो लखनहार (इब्रा)
जेता उड़ उड़ छिन छिन जाए (इ ना)
जेता सब जग करतबवार (इ ना)

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ४३८, ७, पृ० २८९, § ४५२, पृ० ३०५

जिते मेघ धारां हो बरसे जो बूंद (इना)

जेते जेते मखलूक़ के करतब..... (इना)

(घ) प्रश्नवाचक—कौन>किता, कित्ता, किते, केती, केतक। 'किता' आदि की उत्पत्ति सं० कियत्>प्रा० केत्तिअ से हुई। खड़ी बोली में कित्ता का प्रचलन है। साहित्यिक हिन्दी में 'कितना' का प्रयोग होता है। दक्खिनी में पुंल्लिग के एकवचन में किता, बहुवचन में किते तथा स्त्रीलिंग में केती<सं० कियती प्रयुक्त होती है। कुछ स्थानों पर कितेक<किता+एक का प्रयोग भी किया जाता है।

उदा०—**किता** बोलूं नहीं सरते सो बाताँ (फूल)

......नेम धरम होर **किते** (अली)

केती शकल दिखाव...... (अली)

जंवे **किता** हुशार है (क नौ हा)

हल्लक में कित्ते ज़माने से फोड़ा था (कइ पा)

(४) गुणवाचक सर्वनाम-विशेषण—यह, वह, जो तथा कौन से दक्खिनी में गुण-वाचक सर्वनाम-विशेषण बनते हैं। साहित्यिक हिन्दी में ये विशेषण क्रमशः इस प्रकार हैं—**ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा।**

दक्खिनी में सम्बन्धवाचक सर्व० सो से उद्भूत "तैसा" का प्रयोग नहीं होता।

(क) निश्चयवाचक निकटवर्ती सर्वनाम 'यह' से एकवचन पु० ऐसा, बहुवचन—ऐसे। स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन ऐसी। हार्नली ने 'ऐसा' तथा उसके अन्य रूपों की उत्पत्ति इस प्रकार मानी है—सं० ईदृश>अप० अइसो>ख० बो० तथा द० ऐसा। चटर्जी भी इस विचार से सहमत हैं।

उदा०— जे ऐसा ग्यान मुंज फूटा (इना)

(ख) निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनाम 'वह'>वैसा। सं० तत् के प्रथमा के एकवचन 'सः' से जिस तरह ओ अथवा वह की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार 'वैसा' का सम्बन्ध 'तादृश' से है।

उदा०— जैसा तू अब वैसा जान (इना)

ख़ाकी रच्या व वैसा मूस (इना)

(ग) सम्बन्धवाचक सर्वनाम जो>जैसा। इसकी उत्पत्ति 'यादृश' से मानी जाती है।

उदा०— है 'जैसा' वही विकार (इना)

(घ) प्रश्नवाचक सर्वनाम कौन>कैसा। सं० 'कीदृश' से 'कैसा' की उत्पत्ति हुई।

उदा०— तूं क्या पकड्या कैसा गुन (इना)

३५२. संख्यावाचक विशेषण

दक्खिनी के अधिकांश संख्यावाचक विशेषण संस्कृत से संबंधित हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश के परिवर्तन सभी संख्यावाचक विशेषणों पर लक्षित होते हैं। कुछ संख्यावाचक विशेषण ऐसे भी

हैं जो किसी प्राकृत अथवा अपभ्रंश से साम्य नहीं रखते। इस प्रकार के विशेषणों के सम्बन्ध में भाषावैज्ञानिकों का विचार है कि किसी ऐसी प्राकृत से इनका सम्बन्ध रहा होगा, जिसके उदाहरण शेष नहीं रह गये। दक्खिनी में बहुत थोड़े संख्यावाचक विशेषण हैं जो अ फ़ा तथा किसी अन्य भाषा से सम्बन्ध रखते हैं।

३५३. निश्चित संख्यावाचक विशेषण

दक्खिनी और खड़ी बोली के निश्चित संख्यावाचक विशेषणों में बहुत साम्य है।

एक—एक के लिए मुख्य रूप से सं० तत्सम 'एक' का प्रयोग होता है। 'य' तथा 'व' श्रुति के कारण इसका उच्चारण कहीं कहीं येक अथवा वेक किया जाता है। संयुक्त संख्या के प्रारंभ में तथा कहीं-कहीं स्वतंत्र रूप से भी 'इक'<एक का प्रयोग होता है।

एकादश>ग्यारह प्राकृत से संबंधित है।

कुछ स्थानों पर फ़ा 'यक' का प्रयोग भी होता है। एक अथवा उसके अन्य रूपों के अन्त में कहीं-कहीं निश्चयार्थ ई>ही जोड़ते हैं।

उदा०—

एक जागा मीलाना (मे आ)
दोन्हो देखत एक ही **एक** (इ ना)
चारों भेक का देखना **येक** (इ ना)
तू कुदरत से पैदा किया **यक** रतन (न ना)
शाही लगा **यक** ध्यान सूं (अली)
यक-सा रहे रास होर रत्ती में (म न)
उन दोनों की **यकी** धात (इ ना)
(यकी<यक+ही)।
अन्तर दीसे यक्की जान (इ ना)

दो—सामान्यतया दो के लिए दो<सं द्वि का प्रयोग होता है। कहीं कहीं दोय का प्रयोग भी होता है। गुजराती तथा मराठी में सं० तत्सम शब्दों के प्रारंभिक संयुक्ताक्षर का प्रथम अंश लुप्त होता है जब कि खड़ी बोली में द्वितीय स्वर युक्त अंश।

उदा०—हि० खेत, मरा शेत<सं० क्षेत्र। हि० दो, मरा०, गुज० ब<सं द्वि।

संयुक्त संख्या में हिन्दी भी "दो" के स्थान पर "ब"=मरा० बे का प्रयोग करती है—बयालीस, बयासी। समासित शब्दों में तथा कभी स्वतंत्र रूप से भी सं० द्विर>द० दुर् का प्रयोग होता है।

उदा०—

इन **दो** बिना ना है रुच (इ ना)
खुदा बरते **दोय** जहां (इ ना)

तो वह जिन्दा **दोय** जहां (इ ना)
न लेता हात में गर मैं **दुधारा** (फल)
.....**दुर** चक दुर्र अदन (अली)

तीन—सामान्यतया "तीन" के लिए "तीन" का प्रयोग होता है। समासित शब्दों में तथा स्वतंत्र रूप में भी कहीं कहीं तीन के स्थान पर तिर का प्रयोग मिलता है जिसका सम्बन्ध संस्कृत पु० त्रय से है। कुछ स्थलों पर "तिर" का केवल "ति" शेष रह जाता है—

तीस सिपारे में **तीन** क़िस्म किये (मे आ)
घरे घर ईद होवे सारे **तिरभवन** म्याने (कु क़ु)
दुगन **तिरगुन** उसका तूं वां पाएगा (क़ु मु)

चार—"चार" के लिए सामान्यतया "चार" का प्रयोग किया जाता है। बोलचाल में, "चियार" उच्चरित होता है। चार की उत्पत्ति सं० चत्वारि>प्रा० चत्तारि से हुई। समासित शब्दों में "चार" का परिवर्तित रूप "चौ"<सं० चतुर<प्रा० चउरो का प्रयोग होता है। उदा०—

चार चीज़ां छिपा कर.... (मे आ)
चार वजूद में पकड्या **बंधान** (इ ना)
अछे **चौबीना** यू दालान पे तूबा का सकल (अली)

कुछ स्थलों पर "चार" के स्थान पर फ़ा "चहार" का प्रयोग किया जाता है—

ऐस्या बाटां देक **चहार** (इ ना)
यू मिलकर अथे **चहार** यार ओ (म न)

पांच—पांच के लिए दक्खिनी में पांच<सं० पंच प्रयुक्त होता है। पुरानी दक्खिनी में पांचा<पंचक का प्रयोग भी मिलता है—

हर एक तन कूं **पाँच** दरवाज़े हैं (मे आ)
तुज थिर आखूं जिक्रां पांच (इ ना)
...कहे इन्सान के बूजने कूं पांचा तन (मे आ)

कहीं कहीं पांच के स्थान पर फ़ा "पंज" का प्रयोग भी किया जाता है—

पंच भूत के पांच यू रतन ग्यान (मन)

छै-द०छै=ख० बो०, छ: का सम्बन्ध प्राकृत 'छ' से माना जाता है—

अंगे छे मास कूं होगा सो बोले (फूल)

सात-सात<सं०-सप्त—

सात ईमान के ऊपर लाये (मे आ)
सात ज़मीन **सात** आसमान... (सब)

आठ-आट=ख० बो० आठ<सं० अष्ट

एक राजा के **आट** बेटे बी दो बेटियां थे (बो)

नौ-नौ<सं० नव-

सो उसमें हुआ रूप **नौरस** अता... (इब्रा)
यू सात धरत ये **नौ** गगन ग्यान (मन)
तेरी हिम्मत के दरिया पर **नौ** अंबर (फूल)

दस—सं० दश>प्रा० दस=द०, हि० दस–

दुनिया में **दस** आखिर कूं सत्तर (सब)

ग्यारह से अठारह तक के संख्यावाचक विशेषण सामान्यतया इस प्रकार प्रयुक्त होते हैं—ग्यारा, बारा, तेरा, चौदा, पंद्रा, सोला, सत्रा, अठारा। खड़ी बोली के प्रभाव से साहित्यिक दक्खिनी में कहीं कहीं ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह का प्रयोग किया जाता है। इन संख्यावाचक शब्दों और सं० के एकादश, द्वादश आदि में आंशिक समानता है। भाषा वैज्ञानिकों के विचार से हिन्दी (दक्खिनी) में ये संख्यावाचक शब्द ऐसी प्राकृत से आये हैं जिसके उदाहरण सुरक्षित नहीं हैं। उदाहरण :—

बारा इमामां बिन कहीं (अली)
सूरज जोत **बारह** कला लागते (इब्रा)
बड़ाई **चौदह** इमामां नांवं सूं... (कु क़ु)
दूजें चांद **सोला** कला जागते (इब्रा)

वन्नीस—द० वन्नीस, ख० बो० उन्नीस<एकोनविंशति।

उदाहरण :—वो लड़की **वन्नीस** बरस की हुई (बो)

बीस—द० बीस, ख० बो० बीस<प्रा० बीसइ<सं० विंशति।

उदाहरण :—जवानी के बरस सो **बीस** लग है (फूल)

जब बीस, तीस आदि के साथ 'एक' जुड़ता है तो उसका रूपान्तर 'इक' में होता है—इक्कीस, इकतीस आदि। कहीं कहीं फ़ा० के 'यक' से भी संयुक्त संख्यावाचक शब्द बनते हैं—

उदाहरण :—**यक्कीस** बच्चे हुए (क चो श)

बीस, तीस आदि के साथ जब दो की संख्या जुड़ती है तो 'दो' के स्थान पर 'ब'< सं० द्वि का प्रयोग किया जाता है—

बत्तिस लछन में जम जम (अली)

तीस—द० तीस, ख० बो० तीस<सं० त्रिंशत्।

उदाहरण :—वां पो **तीस** हज़ार आदम्यां जमा हुए (बो)

चालीस—द० चालीस, ख बो चालीस<प्रा० चत्तालीस<सं० चत्वारिंशत्। अन्य संख्यावाचक शब्द के योग से चालीस के आरंभिक 'च' में उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं—

लगालग इसी धात **चालीस** दिन (कु मु)

पचास—द० पचास, ख बो पचास<प्रा० पंचासा<सं०-पंचाशत्।

उदाहरण :—सभी ग़र्क़ हो जाके यारां **पचास** (कु मु)

साट—द० साट, ख० बो० साठ<प्रा० सट्ठि<सं० षष्टि (संयुक्त संख्या में साट<सट)

तुकड़े जो है तन के तीन सौ **साट** (मन)

सत्तर—द० सत्तर, ख० बो० सत्तर<प्रा० सत्तरि<सं० सप्तति। चटर्जी के विचारानुसार 'सप्तति' का अन्तिम 'त'>ट>ड़>र।

उदाहरण :—दुनिया में दस, आखिर कूं सत्तर (सब)

संयुक्त क्रियाओं के योग से 'सत्तर' के आरंभिक 'स' में उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तन होते हैं—

पछत्तर नक्श लिख लाया नक़्क़ाश (फूल)

(**पछत्तर**<पांच+**सत्तर**)।

असी—द० असी, ख० बो० अस्सी<प्रा० असीइ<सं० अशीति। खड़ी बोली के प्रभाव से कहीं कहीं 'अस्सी' का उपयोग भी हुआ है—

एक लक **असी** पैग़बरां (कु क़ु)

नवद, नब्बद—दक्खिनी में 'नब्बे' के लिए 'नवद' अथवा नब्बद का प्रयोग होता है। 'नवद' की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार है—नब्वद<सं० नवति। ख० बो० के नब्बे की भांति नवद का सम्बन्ध प्रा० नब्बए से नहीं है। मराठी में नव्वद का प्रयोग होता है।

हिजरत नौ सद **नव्वद** मान (इ ना)

सौ—सौ<प्रा० सअ<सं० शत—

उठ **सौ** बार न्हावें (सु स)

कहीं कहीं सौ के स्थान पर फा०—सद का प्रयोग होता है—

अछो रहमत उनो पै सद हज़ारां (फूल)

सहस—कुछ स्थानों पर सहस<सं० सहस्र का प्रयोग हुआ है—

सहस जीवा सूं न आवे टाक (इ ना)

सहस बरस का माकड देखो (सु स)

हज़ार—सामान्यतया सहस्र के स्थान पर फा० हज़ार का प्रयोग होता है—

ऐसे आलम चन्द हज़ार (इ ना)

अगर जीब हर बाल होवें हज़ार (इब्रा)

लाक, लाख— लाक, लाख, लख<स० लक्ष—
सौ लख साल गाजे (कु क़ु)
अगर **लक** अमोलक रतन जोत होय (इब्रा)
पल में कई **लक** रतन (गुल)
....फ़न करे अक्ल लाख (गुल)
कर **लाक** तुकड़े.... (अली)

कडोर—कडोर<सं० कोटि, ट>ड, और ओ का परवर्ण पर अपसरण+ड (प्रत्यय) >र।

उदाहरण :—है कडोरन केरा हीरा (ख़ुना)

३५४. अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण—खड़ी बोली तथा दक्खिनी के अपूर्णसंख्यावाचक विशेषणों में अन्तर नहीं है।

पाव—पाव<सं० पाद—
अझूं दीस चड्या नहीं **पाव** घड़ी (सब)

आधा— आधा<सं० अर्धक—
पेशानी में रख्या **आधे** चंदर कूं (फल)
पिरत में क्या तूं **आधा** है के सारा (फूल)

पौन— पौन<सं० पादोन—
पौन रूपया खर्च करके चुप बैट गये ना (बो)

सवाया— पुल्लिग सवाया, स्त्रीलिंग सवाई<सं० सपादक—
है जिसमें फायदा देवड़ी **सवाई** (फूल)

देवड़ा— पुल्लि० देवडा, स्त्रीलिं० देवड़ी<प्रा० दिअड्ढ<सं० द्वयर्ध।
है जिसमें फायदा **देवड़ी** सवाई (फूल)

साड़े— संयुक्त क्रिया में 'आधा' के लिए 'साडे'<सं० सार्ध का प्रयोग किया जाता है—
साडे चार होर **साड़े** पांच मिलाये तो दस होते। (बो)

ढाई— ढाई, अढ़ाइ<प्रा० अडतीव<सं० अर्धतृतीय—
ढाई रुपये को पान सौ पड़ा ना (बो)

३५५. क्रमवाचक संख्या विशेषण—दक्खिनी में सामान्यतया आरंभिक न भा आ से प्राप्त क्रमवाचक संख्या विशेषण प्रयुक्त होते हैं। आरंभिक समय से ही फ़ा० क्रमवाचक संख्या विशेषण भी प्रयुक्त होते रहे हैं।

(१) चार की संख्या तक क्रमवाचक संख्या विशेषणों का रूप भिन्न-भिन्न रहता है, किन्तु चार के पश्चात् छः को छोड़कर अन्य संख्यावाचक शब्दों के साथ 'वां'<सं० तम 'जोड़ते हैं।

पहला—बीम्स के विचारानुसार सं० प्रथम से 'पहला' शब्द उद्भूत हुआ। स्त्रीलिंग में इसका रूप 'पहली' होता है—

पहली घड़ी सांति के मेह (कु क़ु)

बोलचाल की दक्खिनी में उच्चारण संबंधी परिवर्तनों के कारण पहला>पैला का प्रयोग होता है। पुरानी दक्खिनी में भी यह रूप मिलता है—

पैला तन वाजिबुल उजूद... (मे आ)
ना कुच तकसीम **पैले** लाग (इ ना)

दूसरा—बीम्स के मतानुसार सं० द्वि+सृत से 'दूसरा' शब्द की व्युत्पत्ति हुई।[1] ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति के कारण 'दुसरा' शब्द का प्रयोग भी होता है। स्त्री 'दूसरी'—

दूसरे आदिल...... (मन)
ना एक कू **दूसरा** क़बूले (मन)
दूसरी घड़ी चादर ओड़े है (कु क़ु)

दूजा—दक्खिनी में 'दूसरा' के साथ 'दूजा<सं० द्वितीय' विशेषण भी प्रयुक्त होता है। हिन्दी से सम्बन्धित कुछ बोलियों में 'दूजा' का प्रयोग अधिक किया जाता है।

उदाहरण:—**दूजा** हसन उल मजतबा (अली)

तीसरा—दक्खिनी तिसरा: ख० बो० तीसरा, सं० त्रि+सृत।

उदाहरण:—**तिसरी** घड़ी बाँधे प्रेम की गलसरी (कु क़ु)
तीसरा के साथ तीजा<सं० तृतीय भी प्रयुक्त होता है—
तीजा हुसेने मुक़्तदा...... (अली)

चौथा— चौथा<प्रा० चउत्थ<सं० चतुर्थ—
चौथे है अली........ (मन)
चौथा रहे ध्यान में धनी के (मन)
चौथी घड़ी चौकां रचे... (कु क़ु)

पांचवां— सं० पंचतम>पांचवां—
जो लगों **पांचवें** आकास पे दिसता है मंगल (अली)
पांचवीं घड़ी पांचो रँगां... (कु क़ु)

छटा-छट्टा— सं० षष्ठ>छटा, छट्टा—
छट्टी घड़ी छाती उपर (कु क़ु)

सातवाँ सप्ततम>सातवां, स्त्री-सातवीं-
सातवीं घड़ी सातों सक्यां... (कु क़ु)

---

१. **बीम्स—कं. ग्रा. आ. भाग २, §२७, पृ० १४३**

आठवां — सं० अष्टतम>आठवां, स्त्री० आठवीं—
आठवीं घड़ी छन्दां सेतीं (कु क़ु)

नव्वां — सं० नवतम>नवां, नव्वां—
नव्वां आदमी घोड़े पो बैठा (बो०)

दसवां — सं० दशतम>दसवां—
दसवां बाब सफ़र का (शम क़ु)

बारवां — बारह+तम>वां—
अै भाई यू बारवीं सदी है (मन)

चौदवां — चौद+तम>वां, स्त्री० चौदवीं—
ओ चौदवीं रात की चंदर थी (मन)

३५६. कुछ लेखकों ने हिन्दी के क्रमवाचक विशेषणों के अतिरिक्त फ़ारसी के क्रमवाचक संख्या विशेषणों का प्रयोग भी किया है—

अव्वल-अवल— हि० 'पहला' की अपेक्षा फ़ा 'अव्वल' का अधिक प्रयोग होता है—
अव्वल अली अल मुर्तजा (अली)
अवल कुछ न था... (न ना)

दोयम-दुअम — **दोयम** सखावत अछे दिल का... (मे आ)
और किसवत विसर के **दुअम** (इ ना)

सोयम — **सोयम** अमल अछ दानाई का... (मे आ)

चहारुम, चारम— चहारुम मुरीद के.... (मे आ)
कुम्मल इमामे **चारुमी**.... (अली)

पंजुम — पंजुम मुरीद के माल सूं.... (मे आ)

शशुम — शशुम अक़्ल अछे.... (मे आ)

हफ़्तुम — हफ़्तुम शुजाअत अछे (मे आ)

हश्तुम — हश्तुम याद में रहना (मे आ)

नहुम-नह्हुम — नहुम हाल पर हाल होए (मे आ)

दहुम — दहुम सो बूजा का मालिक (मे आ)

३५७. आवृत्तिवाचक संख्या विशेषण

सं० गुणक>गुना, गुण>गुन के योग से आवृत्ति वाचक संख्या विशेषण बनाये जाते हैं। न>ल>न के पारस्परिक परिवर्तन के कारण 'गुन' के स्थान पर 'गुल' का प्रयोग भी होता है :—

दुगन — कवाया दुगन नामवर नेकबख्त (गुल)
पन दर्द मेरा दुगन है उसते (मन)

दुगल	— अछे अमरित ते भर्या हौज यू समदूर ते दुगल	(अली)
	दिखाने नूर अपस का किया है दीस दुगल	(अली)
तिर्गुन	— दुगन तिर्गुन उसका तूं वाँ पाएगा	(कु मु)

३५८. संख्यावाचक विशेषणों के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं:—

(१) +एक। संख्यावाचक विशेषण के साथ 'एक' शब्द जोड़ते हैं। किसी संख्या के साथ 'एक' शब्द का योग होने पर उस संख्या के लगभग-कुछ कम अथवा कुछ अधिक का बोध होता है—

अगन यूं दिया बार केतक (इ ना)
(केतक<कति+एक)

भूल पड़े तुज भोतेक अंग (इ ना)
(बहुत+इक>भौतेक)

(२) संख्या की अनिश्चितता प्रकट करने के लिए एक साथ दो संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग किया जाता है:—

उदाहरण:— तालाब कट्टे के पास **दस-बीस** घर भोइयों के हैं (बोली)

(३) समुदायवाचक संख्या विशेषण बनाने के लिए संख्यावाची शब्द के अन्त में 'ओं' जोड़ते हैं। संस्कृत में विशेषणवाची शब्द के साथ विशेष्य के लिंग-वचन का प्रयोग होता है। षष्ठी के 'आम्' से 'ओं' की उत्पत्ति हुई। कुछ शब्दों में अनुस्वार रहित 'ओ' का प्रयोग भी किया जाता है। कुछ स्थानों पर श्रुति के रूप में 'ह्' अथवा 'व' का उपयोग हुआ है:—

सो **दोनो** आलम....	(मे आ)
पकड़ रात-दिन हाथ **दोनों** फिराय	(इब्रा)
और यू **दोन्हों** धातों खोल	(इ ना)
तीनों आलम कूं खबर देव....	(मे आ)
तीन्हों बातां पर भी शाद	(इ ना)
जे मन धावे **चारो** धीर	(इ ना)
......तेरे **चारों** घर	(इ ना)
वां के बेटियां **छेवों** शहज़ादों कूं...	(क इ पा)
जब **सातों** बेटे बड़े हुए	(क इ पा)

(४) पूर्ण संख्यावाचक विशेषण के साथ सम्बन्धकारक का चिह्न लगा कर उसी संख्या को दुहराया जाता है। इस प्रकार के शब्दयुग्म से समुदायवाचक विशेषण का बोध होता है:—

बीसके बीस पुरियां मेरे कू खिला डाली	(क नौ हा)
छैक छे ताट के कपड़े पेन लियां	(क इ पा)

(५) कुछ शब्द संख्यावाचक अथवा परिमाणवाचक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं :—

सारा — पिरत में क्या तूं आधा है के **सारा** (फूल)

कइ — कइ, हि० कई<सं० कति—
शाहो गदा **कइ** निपा. . . . (अली)

कुल (अफ़ा) — उमट्या रूह का **कुल** हिस्सा (इ ना)

जुमला (अफ़ा) — वहां सब जुमला अरवाह एक (इ ना)

भौ — भौ<सं० बहु :—
उदाहरण :—जूं है अगन भौ परकार (इ ना)

भोत — भोत, हिं० बहुत<सं० बहु :—
उदाहरण :—होर सिफ़्त भोत करना (शम कु)

भोतेरा — भोत, हि०—बहुत+एरा<केरा :—
और फ़ारसी भोतेरा. . . . (खु ना)

घना — घना<सं—घन :—
चुन चुन ल्यावे बोल घने (इ ना)

चन्द (अफ़ा) — ऐसे आलम चन्द हज़ार (इ ना)

३५९. आकारान्त विशेषणों के अतिरिक्त अन्य विशेषणवाची शब्द विशेष्य के लिंग-वचन से प्रभावित नहीं होते। पुरानी दक्खिनी में कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि विशेषणों में विशेष्य के लिंग-वचन सम्बन्धी परिवर्तन होते थे। इस प्रकार के प्रयोग अपवाद रूप में ही मिलते हैं :—

सुधन की **मनकियाँ अथियाँ** वो **ननकियां**—
लगियाँ पलाने कनर कदरा (अली)
लग्या खाने कूं झोले सब नवेल्यां—
अछपल्यां बाल्यां. . . (कु कु)
(अछपली<अचपला>अचपली>अछपली-ब० व०, बाली<बाला, ब० व० बाल्यां।)

पंजाबी में विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार विशेषण के लिंग तथा वचन प्रभावित होते हैं :—

हि० — यह बात भली नहीं —ए० व०
ये बातें भलीं नहीं —ब० व

पं० — अये गल चंगी नहीं —ए० व०
अये गलां चंगियां नहीं —ब० व०

दक्खिनी में इस प्रकार के प्रयोग पंजाबी के प्रभाव को प्रकट करते हैं। पुरानी हिन्दी के गद्य में अपवाद रूप में इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। हिन्दी की भांति उर्दू के पुराने कवियों ने कहीं-कहीं अपवाद रूप में विशेषणवाची शब्दों का प्रयोग विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार किया है:—

सौदा — दिवाना हो गया तू आख़िर रेख़्ता पढ़ पढ़
न मैं कहता था अै ज़ालिम के ये बातें नहीं भलियाँ।[1]

इंशा ने हिन्दी में विशेषणवाची शब्दों का प्रयोग करते समय कुछ इसी प्रकार के प्रयोग किये हैं:—

"उन सभी पर खचाखच कंचनियां, रामजनियां भरी हुई अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फांदती धूमें मचातियां अंगडातियां जंभातियां उंगलियां नचातियां ढुली पड़तियां थीं[2]।"

---

१. महमूद शीरानी—पंजाब में उर्दू, पृ० ६०।
२. रानी केतकी की कहानी।

क्रिया

३६०. धातु

आजकल की साहित्यिक हिन्दी की अपेक्षा उससे संबंधित बोलियाँ और उपभाषाएं 'धातु' की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं। पुरानी हिन्दी में सीधे धातु से बने क्रियापदों का प्रयोग अधिक होता था। धीरे-धीरे क्रियापदों में कृदन्त शब्दों के साथ सहायक क्रियाओं का उपयोग बढ़ा। इन दिनों साहित्यिक भाषा में संज्ञाओं से अधिक कार्य लिया जाता है। क्रिया के द्योतन के लिए नामधातु अथवा क्रियार्थक संज्ञा के स्थान पर संज्ञा के योग की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। बोलियों में आज भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं:—

(१) मेरा सिर पिड़ाता है।
(२) ग्वाला गाय दुहता है।
(३) वह उससे बतियाता है।

साहित्यिक हिन्दी में इन तीनों वाक्यों का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा:—

(१) मेरे सिर में पीड़ा है।
(२) ग्वाला गाय का दूध निकालता है।
(३) वह उससे बात करता है।

साहित्यिक दक्खिनी तथा बोलचाल की दक्खिनी के क्रियापदों में धातुओं का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। परिशिष्ट (१) में दक्खिनी की धातुसूची दी गई है। इस सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरंभिक काल से ही दक्खिनी धातुओं की दृष्टि से समृद्ध भाषा रही है। इसकी अधिकांश धातुएं संस्कृत की धातुओं से सम्बन्ध रखती हैं जो म भा आ तथा आरंभिक न भा आ के परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए इस तक पहुंचीं। कुछ धातुएं दक्खिनी ने अन्य भाषाओं से ग्रहण की हैं। अधिकांश धातुएं, सहायक क्रियापद, काल, वचन तथा पुरुष संबंधी प्रत्यय दक्खिनी और खड़ी बोली में समान हैं।

अयौगिक धातु

३६१. खड़ी बोली की भांति आरंभिक न भा आ से प्राप्त दक्खिनी की धातुओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) अयौगिक (२) यौगिक।

अयौगिक धातु मूल रूप में अथवा कुछ ध्वनि परिवर्तनों के साथ संस्कृत धातुओं से सम्बन्ध रखती हैं। यौगिक धातु शब्द और प्रत्यय के योग से बनती हैं। अयौगिक धातुओं के उदाहरण निम्नप्रकार हैं:—

घट =सं० घट्, आत्म०, अक. सेट:—
अक्ल का जिस घट मने पूर अछेगा घटा (अली)

धाव =सं० धाव, भ्वादि, आत्म०, अक०, सेट्:—
जे मन धावे चारो धीर (इना)

पीना <सं० पा, भ्वादि, पर०, सक०, अनिट्:—
हज़रत दूध पिये। (मेआ)

पड़ <सं० पत्-भ्वा०, अक०:—
जीव का बींज पड़ाया हूं (मेआ)

दिस <सं० दृश-भ्वादि, पर०, सक०, अनिट्:—
दिसे सपूरन हर एक भांत (इना)

छुट =सं० छुट्-भ्वा०, पर०, सक०, सेट्:—
क़हर ते तुज छुटे (गुल)

पाड़ <सं० पत्-भ्वा०, अक०:—
हरेक दिल में पाड़्या है कई भांत शोर (गुल)
पाड़े तो है यकपने मने पेच (मन)

बैस <सं० विश्-तुदा०, पर०, सक०, सेट्, गुज०:—
लैला के आ दिल में बैस (गुल)
न क्यों बैसें यकस ते एक लगलग (फूल)

फुट <सं० स्फुट,-तुदा०, अक०, सेट्—
.........कई पो फुटे (गुल)
वो फुटते थे होकर फूलों के फाँटे (फूल)

परख <सं० परि+ईक्ष-भ्वा०, आत्म०, सक०, सेट्-
परखने कूं लज़्ज़त कसौटी किया (गुल)

सुह <सं०-शुभ्-भ्वा०, आत्म०, अक०, सेट-
सही नहनपने में कमालत तुझे (गुल)

मूच <सं०-मिष्, भ्वा०, पर०, सेट-तुदा० पर०, सक०, सेट—
दन्दे देख तुझ मुख अंख्या मूचता (अना)

लह <सं० लभ्-भ्वा०, आत्म०, सक० अनिट्-

ऐसा साधू भाग लहे तो. . . . . (सु०सु०)

यौगिक धातु

३६२. यौगिक धातुओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—(१) व्युत्पन्न धातु (२) नामधातु।

(३) मिश्रित धातु।

(१) किसी शब्द के साथ प्रत्यय के योग अथवा मूल स्वर के परिवर्तन के कारण जो धातु बनती है उसे व्युत्पन्न धातु कहते हैं।

(२) जब संज्ञा धातु के रूप में प्रयुक्त होती है तो उसे नामधातु कहते हैं।

(३) मिश्रित धातु-मुख्य धातु के साथ सं०√'कृ' के योग से मिश्रित धातु बनती है। दक्खिनी में इन तीनों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

व्युत्पन्न धातु — चोड<सं० चुट् से व्युत्पन्न, कर्त्तृवाच्य, सकर्मक—

तो तूं फिक्र ऐसी जोड़ (इ ना)

बेहतर जो पिरत पिया सूं जोड़ (मन)

खिलाना<खेल् का सकर्मक रूप, खेल<सं० क्रीड़-

सिफ़ली खेल खिलाये दायम (खु ना)

नामधातु — जो=(संज्ञा ज्योतिष)<प्रा० जोएइ या जोअइ-

बिन रूप चंदा कौन जोए (इ ना)

भोग=संज्ञा-भोग। सब तो वही भोगे खास (इ ना)

नांद=(संज्ञा नाद)-सब में नांदूं मैं हूं एक (इ ना)

अँदेश<संज्ञा-अंदेशा (अ फ़ा)—

लग्या अँदेशने ला गल कूं हात (फूल)

ताज=संज्ञा ताज (अ फ़ा)—

के हज़रत बीबी हैं बीब्यां सीस ताजे (कु क़ु)

उपस=संज्ञा—उपासना—

ज्यूं वजही आशिक़. . . . . . उपसता है (सब)

रान=संज्ञा राणा—

वहीं अद्ल सूं मुल्क कूं रानता (इब्रा)

पेग=संज्ञा-पेंग—

जुल्फां के पेंग म्याने नेह सूं पंगाती मुंज कूं (कु क़ु)

मिश्रित धातु — फूंक=सं०, फूत्+कृत, प्रा० फुक्केई, फुक्कई—

फूंक्या बालेबाल इसमें कैसा पवन (अ ना)

चूक=सं० च्यु+कृ, प्रा० चुक्कई—

नित **चुक जो चूके** थे सो वो चुख सब तूं चुकाया है (अली)

थक=सं० स्तंभ+कृ, प्रा० थक्कई—

पारखी थके यू अहले नज़र (गुल)

सलक (सरक) सं० सर+कृ, प्रा० सरक्केइ, सरक्कइ

मछी के जल्द **सलकने** कूं (अली)

झलक<सं० झला+कृ>प्रा० झल्लक्केइ, भल्लक्कइ-

पिव सूर-सा झलकता (अली)

३६३. जिन धातुओं का संबन्ध संस्कृत धातुओं से है, उनमें से अधिकांश पर संस्कृत के वर्तमान कालिक रूप का प्रभाव है। संस्कृत धातुएं दस वर्गों में विभक्त हैं और प्रत्येक वर्ग में प्रत्यय आदि के कारण धातु भिन्न प्रकार का रूप धारण करती है। प्राकृत काल में इस प्रकार की विभिन्नता बहुत कुछ समाप्त हो गई। सभी वर्गों की धातुएं समान रूप से व्यवहृत होने लगीं। वर्गगत विशेष रूप लुप्त हो गये। हिन्दी में धातु का जो वर्तमानकालिक रूप ग्रहण किया गया वह छठे वर्ग से मिलता-जुलता है।[१]

३६४. दक्खिनी में आरंभिक काल से पंजाबी की कुछ धातुएं प्रयुक्त होती रही हैं। हिन्दी से संबंधित बोलियों में इन धातुओं का प्रयोग नहीं मिलता। पंजाबी की इन धातुओं का सम्बन्ध म भा आ के धातु-रूपों से है:—

(१) √आख (पं०)=कहना, बताना, वर्णन करना, पूछना, आख्या। गुजराती आखणु =कहना, दक्खि० आखना=पूछना, कहना।

उदाहरण:—तब आखे उसकी बूद (इना)

इस 'है' में 'नहीं' में भेद आख्या (मन)

(२) अँपड (पं०)√पहुंचना,<सं० आ+प्रापण—

ना य्हां अपड़े कुछ सुद बूद (इना)

(३) √लोड (पं०), आवश्यकता पड़ना, द० लोरना, लोड़ना, इच्छा होना, आवश्यकता पड़ना, चाहना—

अब तुज लोरे पछान खुदा (इना)

ना मुंज लोड़े पाट पितंबर (खुना)

---

१. हार्नली—हिन्दी धातु संग्रह

ना मुंज लोड़े पलंग निहाली (खु ना)
जो कुछ लोरे सो ही कर (इ ना)

(४) सट (द०)=डाल, पं०, सिट<डाल, छोड़। पंजाबी में सिट धातु सहायक क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त होती है, किन्तु दक्खिनी में इसका प्रयोग स्वतंत्र क्रिया के रूप में ही होता है—

पुन-पाप सट दीजे...... (खु ना)
गुस्ताख़ी सूं सटते हैं बहुत नादां सेती (कु क़ु)
सुख़न का सट तूं आलम में आवाज़ा (फूल)
सटे ओ जो अपने करम की जो छावं (गुल)

कुछ धातुएँ हिन्दी तथा पंजाबी में समान रूप से प्रयुक्त होती हैं, किन्तु दोनों भाषाओं के ध्वनि सम्बन्धी प्रभाव उन रूपों पर पड़े हैं। दक्खिनी ने इस प्रकार की कुछ धातुओं में पंजाबी का अनुसरण किया है। हिन्दी तथा पंजाबी में कुछ धातुएं समान हैं, किन्तु मुहावरों में उनका अर्थ भिन्न हो गया है। उदाहरण के लिए√लड धातु हिन्दी में बिच्छू के साथ और√काट अथवा √डस सांप के साथ। पंजाबी में सांप के डसने के लिए भी√लड का प्रयोग होता है—

भुजंग तिसमें बेताक़ती का लड्या (गुल)

३६५. मराठी तथा गुजराती की कुछ धातुएं दक्खिनी में प्रयुक्त होती हैं—√दिस= मरा० दिसणें=दिखाई देना—

दिसे सपूरन हर एक धात (इ ना)

दाट=गुज०√दाटवुं=गढे को मिट्टी से भरना, गाडना, दफ़नाना—

उदाहरण:—

जो सोरात आके उसके दिल दाटी (फूल)

√कंचव=गुज०, दिल दुखाना, असंतुष्ट करना—

अजल कंचवा बैठी जा फिरा मूं (फूल)

३६६. हिन्दी से संबंधित बोलियों तथा उपभाषाओं में प्रचलित धातुएं साहित्यिक दक्खिनी में प्रचलित हैं। साहित्यिक हिन्दी में इन धातुओं का प्रयोग प्रायः नहीं होता:—

चांप	— लगे सटने गले चुंगल सेती चांप	(फूल)
भोर-भोराना	— नवाजिश सूं पर्यां कूं फिरको भोराय	(फूल)
पेख	— यू बड़ा एक पेखना है	(सब)
हिलज	— उश्शाक़ सूं हिलजे हैं तेरे लट के सरक दाम	(कु क़ु)
पठ-पठाना	— गरम हो पठाये अपस बेदिरंग	(अली)
निह-निहाना	— माशूक़ के हुस्न कूं निहाते च नहीं	(सब)

भिरक-भिरकाना	— पाशा जल्दी एक पुड़ी भिरकाया	(क इ पा)
छिज	— जावे सदा जिया छिज......	(अली)

३६७. दक्खिनी में कुछ धातुएँ विशेष रूप से प्रयुक्त होती हैं। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

√न्हाट=भाग	— यहूदियां का लश्कर मंग्या न्हाटने	(अली)
	बादशाहां कूं न्हाटने का नई फबता दिल	(सब)
संपड-संपडाना	— सो वूं सँपड़ा लिया मुंज कूं प्यारा	(कु क़ु)
लिड-लिड़ना=लोटना	— लगी लिड़ने कूं ग़म की लग छुरी यूं	(फूल)
डु-डुना=ढुलकना, ढुलना	— जिधर हुंडी डई। उधर सब कोई	(सब)
ढंप-ढांपना, ढकना	— बड़ा सारका धड़ ज़मी कूं ले ढांप	(क़ु मु)
पलाना-पुकारना, चिल्लाना	— उतम डोमन्या मिल पलाने लग्यां	(कु मु)
	बेटा रो को पला को आ गाय	(क अ मा)
किचव-किचवाना	— बदनामी ते इश्क़ में किचवाना ख़ामी है	(सब)

३६८. ध्वनियों के आधार पर बनी हुई धातुओं का प्रयोग दक्खिनी में प्रचुरता से होता है:—

धड़धड़	— सुन हैदरी नारे कूं तुज मंगल के मस्तक धड़धड़े	(अली)
हड़बड़	— कुफ्फ़ार जग के हड़बड़े	(अली)
टिटक	— सकी ताल दे मुंज टिटकती खड़ी	(कु क़ु)
चुरमुर-चुरमुराना	— यक नवी आरस सरीकी चुरमुरा को शर्म से	(ख़तीब)

३६९. दक्खिनी की कुछ धातुएं अ फ़ा की संज्ञाओं अथवा धातुओं से सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकार के प्रयोग बहुत कम हैं। अ फ़ा की संज्ञाओं अथवा धातुओं का प्रयोग करते समय दो प्रकार के प्रयोग मिलते हैं:—

(१) अ फ़ा की संज्ञाओं अथवा धातु-रूपों के साथ सीधे हिन्दी के काल, और पुरुषसूचक प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(२) अ फ़ा की संज्ञाओं अथवा धातुरूपों को प्रयुक्त करते समय हिन्दी की सहायक क्रिया जोड़ते हैं। मुख्य क्रिया विशेषण के समान दिखाई देती है। काल-पुरुष सूचक प्रत्यय सहायक क्रिया के साथ जोड़े जाते हैं। उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

(१) मुख्य क्रिया के रूप में:—

नवाज़	— पीछें किसी नवाज़ने पर आये तो...	(सब)
ख़म	— ख़मे सो फूल डाल्यां......	(फूल)
नंग	— बहुतां कूं नंगाया है......	(सब)
क़बूल	— ना एक कूं दूसरा क़बूले	(मन)

लरज़ — यक झूट सूं दो जहां लरज़ता (मन)

(२) सहायक क्रिया के साथ :—

पैदा होना — नुक्ता पैदा अदीक हुआ (इ ना)
ताब लाना — तेरे हमले कूं डूंगर ताब क्यूं लाये (कु क़ु)
आज़ार पाना — वले किसते न कोई पाता है आज़ार (फूल)
रज़ा लेना — ......रज़ा ले भार आया (फूल)

३७०. क्रिया का साधारण रूप

क्रिया का साधारण रूप बनाने के लिए दक्खिनी में खड़ी बोली की भांति सामान्यतया धातु के साथ 'ना' जोड़ते हैं। इस 'ना' का संबंध सं० 'अन' से जोड़ा जाता है। पंजाबी में 'ना' के स्थान पर 'नां' का प्रयोग होता है जो नपुंसक लिंग के कर्त्ता तथा कर्मकारक के एकवचन 'अनम्' का रूपान्तर है। दक्खिनी में सानुनासिक 'ना' का प्रयोग नहीं मिलता। पुरानी हिन्दी तथा पंजाबी में 'ना' के स्थान पर 'न' के योग से भी क्रिया का साधारण रूप बनाया जाता है। यह रूप सं० 'अन' के अधिक निकट है। पुरानी दक्खिनी में भी यह रूप मिलता है। वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय 'त' <ता के योग से भी क्रिया का साधारण रूप बनता है। क्रिया के साधारण रूप का प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा के लिए होता है। कई स्थानों पर क्रियार्थक संज्ञा बिना कारक-चिह्न के सम्प्रदानकारक में प्रयुक्त होती है।

ना — जाना उन्हें किधर (खु ना)
सोते शौक़ कूं फिर उछाने थपक (गुल)
लगी **छिजने** कूं रयन दर्द थे दीस अंगे (अली)
न — **चलन** में डगमगे छिन छिन (कु क़ु)
देखन मने के जब आई (म न)
त — क्यूं कर ओ किताब **पढ़त** आवे (म न)

प्रेरणार्थक क्रिया

३७१. खड़ी बोली में सामान्यतया प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया बनाते समय धातु के अन्त में 'आ' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया में धातु के साथ 'वा' जोड़ते हैं। कुछ क्रियाओं के प्रथम प्रेरणार्थक रूप नहीं होते। एक व्यंजनात्मक धातु के साथ प्रेरणार्थक 'ल' प्रत्यय जुड़ता है। जिन एकाधिक व्यंजनवाली धातुओं के अन्त में महाप्राण व्यंजन रहता है, उनके अंत में 'ल' जोड़ कर प्रेरणार्थक रूप बनाया जाता है।[1] दक्खिनी में खड़ी बोली की भांति प्रथम प्रेरणार्थक रूप में 'आ' तथा द्वितीय प्रेरणार्थक रूप में 'वा' जुड़ता है।

---

१. कैलाग—ग्रा० हि० लें० § ४२१, पृ० २५३

प्रेरणार्थक 'वा' तथा 'ला' के सम्बन्ध में कैलाग का विचार है कि संस्कृत में प्रेरणार्थक 'अय' प्रत्यय के अतिरिक्त कुछ स्वरान्त धातुओं के साथ 'प' का योग भी होता है। प्राकृत में प्रेरणार्थक 'अय' 'ए' में रूपान्तरित होता है। अन्तिम अकार को दीर्घ बनाकर 'प' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ। आगे चलकर यह 'प' 'व' में परिवर्तित हुआ। सं० कारय7प्रा० कारे, करापे>हि० करावे, करा, गढ० करो। √भिगाना के प्रथम प्रेरणार्थक रूप भिगोना में 'ओ' आव का रूपान्तर है। प्रेरणार्थक 'ला' अथवा 'ल' का सम्बन्ध सं० 'ल' (=पालन) से है। प्रेरणार्थक रूप बनाते समय प्रथम व्यंजन के दीर्घ स्वर को ह्रस्व तथा 'ए' को 'इ' और 'ओ' को 'उ' बनाते हैं।

प्रथम प्रेरणार्थक—आ

मग़रूरी की शहबत कूं ग़ैर जागा न दौड़ाना सो (मे आ) (दौड़ना-दौड़ाना)
उन पांचा ख़वास कूं यक जागा मीलाना (मे आ) (मिलना-मिलाना)
सरफ़राज कर कूं भिजा दूं (मे आ) (भेजना-भिजाना)

द्वितीय प्रेरणार्थक-वा—

इसका माना सत्तर हज़ार परदे सैर कर लिवाए (मे आ) (लेना-लिवाना)
अब क्या तू झूटें आप गिनवाय (इ ना) (गिनना-गिनाना-गिनवाना)
ख़ाली कैसा नावं खवाय (इ ना) (खना<कहना,—खवाना<कहवाना)।

प्रथम प्रेरणार्थक-ल—

जली का काडा कर को पीलाना (मे आ) (पीना-पिलाना)
होर आलम कू दीखला (मे आ) (देखना-दीखलाना)
सुबाही राग गा कर मुंज सबा के तख़्त बिसलाओ (कु क़ु)
(बैसना-बिसलाना)।

वाच्य

३७२. क्रिया के वाच्य के सम्बन्ध में दक्खिनी खड़ी बोली से पृथक् मार्ग का अनुसरण करती है। खड़ी बोली में कर्ता, कर्म तथा भाव के अनुसार क्रिया के रूप परिवर्तित होते हैं। कर्तृवाच्य में क्रिया कर्ता के लिंग वचन को स्वीकार करती है और कर्मवाच्य में कर्म के अनुसार क्रिया का प्रयोग होता है। दक्खिनी में सामान्यतया कर्ता के अनुसार क्रिया का रूप रहता है। कर्म के लिंग-वचन का प्रभाव क्रिया पर नहीं पड़ता। इस सम्बन्ध में दक्खिनी पच्छमी हिन्दी की अपेक्षा पूरबी बोलियों के अधिक निकट है। खड़ी बोली के प्रभाव से दक्खिनी में कुछ लोग कर्मवाच्य रूप का प्रयोग भी करते हैं, किन्तु इस प्रकार के प्रयोग अपवाद रूप में ही मिलते हैं। कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

(खुदा) आलमे नासूत कूं मौजिज़ ए अफ़्ज़ल बताये (मे आ)
हज़रत दूध पिये (मे आ)
तुमने दूध पिये सो खूब किये (मे आ)

{ सो बरस की घूंस पुरानी जनम गंवाई खोद
{ कूड़ा कसपट अंबार कीती मानिक ना लेती गोद (स स)

सुनी सुखन जब वो उठी तड़क कर कही करूँगी इता पुकारा (अली)

इसी थे कवाई रयन ने मोहन (अली)

मुजकूं वही थपक सुलाई (मन)

कुहक कोयल बसन्त के राग गाई (कु क़ु)

रखा इस सतर में कइ लाख माने (फूल)

आक़िलां ने अक़्ल दौडाये (सब)

सहायक क्रिया

३७३. हिन्दी की काल-रचना में क्रिया के कृदन्त रूपों तथा सहायक क्रियाओं से सहायता ली जाती है।[१] नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में मुख्य सहायक क्रियाओं के रूप में सं०√ अस्, √भू, √ स्था से उद्भूत रूपों का प्रयोग होता है। इन तीनों क्रियाओं के अतिरिक्त एक चौथी क्रिया√ अच्छ का उपयोग भी किया जाता है। जहां तक खड़ी बोली का सम्बन्ध है उसमें√ अच्छ का प्रयोग नहीं होता। वर्तमान में√ 'अस्' से उद्भूत 'ह' का प्रयोग होता है। भूत तथा भविष्य में प्रयुक्त होने वाले '√ हो' के विभिन्न रूपों का सम्बन्ध सं०√ भू से और 'था' का सम्बन्ध सं० √स्था से है। दक्खिनी में इन तीनों का प्रयोग मिलता है, किन्तु साथ ही अछ् धातु भी प्रयुक्त होती है।√ अछ के सम्बन्ध में हार्नली का विचार है कि यह सं० अस् धातु का परिवर्तित रूप है[२] किन्तु डाक्टर चटर्जी इससे सहमत नहीं हैं।[३] हम इस बात से भी परिचित हैं कि राजस्थानी से सम्बन्धित कुछ बोलियों में√स<√ सं० अस् प्रचलित है। मराठी में भी अस् का प्रयोग होता है। 'स्' का 'छ' में परिवर्तन संभव नहीं है। चटर्जी 'अछ' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनुमान लगाते हैं कि यह धातु आदिकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में विद्यमान थी। वेदों में 'अच्छ' का प्रयोग नहीं मिलता। यह संभावना की जाती है कि उन दिनों कुछ बोलियों में इस धातु का प्रचलन रहा होगा।√ आछ, √अछ,√ छ का सम्बन्ध उसी 'अच्छ' से है। वररुचि ने 'अस्' को 'अछ्' में परिवर्तित होने का उल्लेख किया है।[४] चटर्जी का विचार है, वररुचि के इस उल्लेख से केवल इतना ज्ञात होता है कि प्राकृत में अस् के साथ साथ अछ का प्रयोग भी होता था। संस्कृत में अच्छ का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु प्राकृत में इस धातु का प्रयोग बहुत हुआ है।[५]

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हिं० भा० इ० § ३१६, पृ० २९६

२. हार्नली – क. ग्रा. गौ. § ५१४, पृ० ३६६

३. चटर्जी – ओ. डे. ब. § ७०, पृ० १३६

४. वररुचि – प्रा. प्र. १२. १९

५. चटर्जी – ओ. डे. बें. § ७०, पृ० १३६

नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में√ अछ की स्थिति के सम्बन्ध में डाक्टर चटर्जी ने जो विवरण दिया है, वह इस प्रकार है—मैथिली और बंगाली में√ अछ का प्रयोग मिलता है। गंगा के दक्षिण में अंग (भागलपुर) जनपद तथा सन्थाल परगने की बोली में इसका प्रयोग होता है। मागधी से सम्बन्धित भोजपुरी और मगही में √ अछ', आजकल प्रयुक्त नहीं होती, किन्तु इस बात का प्रमाण मिलता है कि पुराने समय में इन दोनों भाषाओं में यह धातु विद्यमान थी। कबीर की कविता में इसका प्रयोग मिलता है। आजकल की पूरबी हिन्दी में इस धातु का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु पुरानी अवधी में इसका प्रयोग होता था। बहिरंग भाषाओं में सिन्धी में यह धातु प्रचलित नहीं। गुजराती में √अछ से सम्बन्धित रूप प्रचलित है। राजस्थानी, पहाड़ी और काश्मीरी में इसका प्रचलन रहा है। पच्छिमी हिन्दी में √अछ का प्रयोग नहीं मिलता।[1] पूर्व में बिहारी तथा बंगाली और उड़िया तथा पश्चिम में गुजराती ने इस धातु को स्वीकार किया है। आरंभिक काल से दक्खिनी में √होना तथा √रहना के अर्थ में इस धातु का प्रयोग होता रहा है। जहां तक बोलचाल का प्रश्न है भोजपुरी की भांति आजकल दक्खिनी में भी इसका प्रयोग नहीं मिलता। पहले बोलचाल की भाषा में इसका प्रचलन रहा होगा। दक्खिनी में इस धातु का प्रयोग गुजराती अथवा पूरब की बोलियों के प्रभाव से आया। √अस् तथा √अछ् के प्रयोग के सम्बन्ध में विभिन्न भाषाओं की स्थिति इस प्रकार है।[2]

एकवचन

	उडिया	बंगा०	मैथि०	नेपा०	कुमायूं	मार०	गुज०	पंजा०	सि०	मरा०
प्रथम पुरुष	अछि, छि	आछि छि	छी	छुं	छूं	छुं	छूं	सां	सि	असें
द्वितीय पुरुष	अछु छु	अछिस् छिस	छें	छस्	छै	छै	छे	सो	—	असस्
तृतीय पुरुष	अछइ छइ	आछे	छे अछि	छ्	छ	छै	छे	सी	—	असे

बहुवचन

	उडिया	बंगा०	मैथि०	नेपा०	कुमायूं	मार०	गुज०	पंजा०	सि०	मरा०
प्रथम पुरुष	अछुं छुं	आछि छि	छी	छूं	छौं	छां	छै	सां सीं सूं		असूं
द्वितीय पुरुष	अछ छ	आछ छ	छी	छी	छा	छौ	छौ	सो	—	असां
तृतीय पुरुष	अछति छंति	आछेन् छन्	छथि	छन्	छन्	छै	छै	सण्	—	असत्

दक्खिनी में √अछ का प्रयोग प्रायः स्वतंत्र रूप में हुआ है। वर्तमान तथा भविष्य में इसका प्रयोग होता है, किन्तु भूतकाल में था √ स्था का प्रयोग किया जाता है। √ अछ से सम्बन्धित कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

वर्तमान काल — उत्तम पु० ए० व०—में सब पर अछूं निसंग (इना)
,, ,, इबादत पै आने तो काहिल अछूं (गुल)
,, ,, ,, ब० व०-ना हम अछें सुख संसारा ना हम अछें चाव (खुना)

---

१. चटर्जी – ओ० डे० बें० §७०, पृ० १३६
२. हार्नली – कं० ग्रा० गौ० §५१४, पृ० ३६५

,, ,, —मध्यम पुरुष—ए० व०—गुफ्त तूं च होर तूं च परघट अछे (गल)
,, ,, —अन्य पु०—एक० व०—हक़ की बातां ना बोलना सो अछे (मे आ)
,, ,, ,, ,, अछे इश्क़ जैसा भी.... (गल)
,, ,, ,, ब० व० सारे खुशक़द अछें थांबां (अली)
,, कृदन्त प्रत्यय युक्त, अन्य पु० ब० व०
यूं इसमें अछतें जीव (इना)
खडे अछते हैं ज्यूं हर यक कोई आ (फूल)
ऐसे अछते हैं खुदा के प्यारे (सब)
भविष्य—अछेगा बुढा होवेगा नातवां (न ना)
न तारे अछेंगे न सात आसमां (न ना)
प्रार्थना—अछो रहमत उनो पै सद हज़ारां (फूल)
आशीष—उम्र दराज अछो (सब)
सामान्य संकेतार्थ—भइ होर यक पांव अगर अछता चलते (फूल)
संभाव्य वर्तमान—दीवा कोई अछो अस्ल पन नूर तूं च (गुल)
गर कोई सुगड अछो व गर कूड (मन)
विधि—हर आन सुधन के सुद अछ (मन)
क्रियार्थक संज्ञा—मुरादे सादिक़ अछना (मे आ)

३७४. काल-रचना की दृष्टि से स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु ने क्रिया के रूपों को तीन भागों में विभक्त किया है। (१) पहले वर्ग में वे काल आते हैं जो धातु में प्रत्ययों के लगाने से बनते हैं। (२) दूसरे वर्ग में वे काल हैं जो वर्तमानकालिक कृदन्त में सहकारी क्रिया "होना" के रूप लगाने से बनते हैं और तीसरे वर्ग में वे काल आते हैं जो भूतकालिक कृदन्त में उसी सहकारी क्रिया के रूप जोड़कर बनाये जाते हैं। वर्गीकरण इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग—(१) संभाव्य भविष्यत (२) सामान्य भविष्यत् (३) प्रत्यक्ष विधि (४) परोक्ष विधि।

द्वितीय वर्ग—(१) सामान्य संकेतार्थ (हेतुहेतुमद्भूतकाल) (२) सामान्य वर्तमान (३) अपूर्ण भूत (४) संभाव्य वर्तमान (५) संदिग्ध वर्तमान (६) अपूर्ण संकेतार्थ।

तृतीय वर्ग—(१) सामान्य भूत (२) आसन्न भूत (पूर्णवर्तमान) (३) पूर्ण भूत (४) संभाव्य भूत (५) संदिग्ध भूत (६) पूर्ण संकेतार्थ।[1]

संभाव्य भविष्यत्, सामान्य भविष्यत, प्रत्यक्ष विधि, परोक्ष विधि, सामान्य संकेतार्थ और सामान्य भूत इन छः कालों की रचना में धातु के साथ प्रत्यय लगाये जाते हैं, अतः कुछ वैयाकरण हिन्दी की काल रचना में केवल इन्हीं का उल्लेख करते हैं। शेष कालों की रचना सहायक क्रियाओं के योग से होती है। इन सहायक क्रियाओं के रूप, लिंग-वचन-काल-पुरुष के अनुसार परिवर्तित

---

१. कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण §३८५, पृ० ३४९

होते हैं। इन रूपों का समावेश उपर्युक्त छः श्रेणियों में होता है, अतः यहां उनकी जानकारी विस्तार से दी जाती है।

सामान्य भविष्य

३७५. दक्खिनी में सामान्य भविष्य काल के दो रूप प्रचलित हैं। सामान्य भविष्य के लिए धातु के साथ "गा" तथा "स" जोड कर पुरुष-वचन सूचक चिह्न लगाये जाते हैं। "गा" की उत्पत्ति बीम्स ने इस प्रकार दी है—सं० गतः>प्रा० गदो>ब्रज आदि में गया, गओ। स्त्री-लिंगी—गई>गी, पु० वाची गए>गे। पु० ए० व०—गा, पु० ब० व०-गे। मूल धातु और "गा" के मध्य ए, एं अथवा ऊं का आगम होता है। ये स्वर संस्कृत के काल-पुरुष-वचन वाचक ति, तः आदि के परिचायक हैं। अकारान्त धातु को एकारान्त, एँकारान्त अथवा ऊंकारान्त बनाकर "गा" अथवा "गे" जोड़ते हैं, तथा आकारान्त आदि धातुओं के अन्त में इन स्वरों का आगम होता है। ए, एं, उं और ऊं के साथ बोलियों में "य" श्रुति अथवा "व" श्रुति का प्रयोग किया जाता है। पंजाबी तथा उससे प्रभावित बोलियों में "व" श्रुति पाई जाती है। दक्खिनी के साहित्यिक तथा बोलचाल दोनों रूपों में कहीं "व" और कहीं "य" का प्रयोग मिलता है। एकारान्त धातुएं परवर्ती "ऊं" के वृद्धि-रूप "औं" के साथ संयुक्त हो जाती हैं। दक्खिनी में प्रयुक्त रूप इस प्रकार हैं—

अकारान्त√चल, सामान्य भविष्य

	प्रथम पुरुष	मध्यम पुरुष	तृतीय पुरुष
एकवचन	पु० चलूंगा, स्त्री० चलूंगी प्रेर० चलाऊंगा	चलेंगा, चलिंगा	चलेगा चलिंगा
बहुवचन	पु० चलिंगे, स्त्री चलिंगी	चलिंगे	चलेंगे, चलिंगे

एकारान्त√दे

	प्र० पु	म० पु	तृ० पुरुष
एकवचन	देउंगा, द्यौंगा	देगा	देगा
बहुवचन	देंगे, देइंगे	देंगे, देइंगे	देइंगे

कुछ ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जिनमें आकारान्त आदि धातुओं में मूल धातु और "गा" "गे" के मध्य कोई स्वर नहीं आता। इस प्रकार का प्रयोग पच्छिमी हिन्दी से सर्वथा भिन्न है। उत्तम पुरुष के एकवचन को छोड़ कर सभी पुरुषों तथा वचनों में इसका प्रयोग मिलता है।

आकारान्त√जा

	उ० पु०	म० पु०	अ० पु०
एकवचन	जाउंगा	जागा	जागा
बहुवचन	जांगे	जांगे	जांगे

सामान्य भविष्य के उपर्युक्त प्रयोगों के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं—प्रथम पुरुष, एकवचन—

√चल—चलूंगा मैं उस वक्त राहे नज़ारा (न ना)
√चल प्रे०—चलाऊंगी मैं नित तेरा मुल्क राज (गुल)
√ले—लेऊंगी मन भुला कर.... (अली)
मैं मोल ल्यौंगी (क जा फ)
√पेन<पहन—टाट के कपडे पेनूंगी (क इ पा)
√ला—शादी करको लाऊंगा (क इ पा)
√दे—मैं अपनी बेटी उसे द्यौंगा (क जाफ)

तृतीय पुरुष एक व०—(१)

√रह—क्यूं कर ठैर रहेगा मन (इना)
√अछ—अछेगा बूढ़ा होवेगा नातवां (न ना)
√मिल—रास्ते में एक बड़ा देव मिलिंगा (क इ पा)
√होना—यू बात पीर सूं मालूम होएगी (मे आ)

(२) "व" श्रुति के साथ—

√पी, √हो—शहद पीवेगा... ख़राब होवेगा (मे आ)
√खा—मंगे तो क्या खावेगा (मे आ)

(३) मूल धातु तथा "गा" के मध्य स्वर के आगम के बिना—

उत्तम पु० ए० व०—मैं हाज़िर हूंगी उस ठार (सब)
उत्तम पु० ब० व०—अब घर कूं जांगे (क नौ हा)
मध्यम पु० ए० व०—अगर तूं फूल का जो लागा (फूल)
मध्यम पु० ब० व—अजी छोटी शहजादी तुम क्या पेन को जांगे? (क इ पा)
,, ,, पूछे तो पस्तांगे (क इ पा)
तृतीय पु० ए० व०—सन्दूक़ में सूर क्यूं समागा (म न)
(समागा<समाएगा)
गर दिल तुजे धूंडने पर आगा (मन) (आगा<आएगा)
तृतीय पु० ब० व०—दँदी यूं घर डुबांगे कर न जानी (फूल)

(४) सामान्य भविष्य काल की रचना में "स" से भी सहायता ली जाती है। इस "स" का संस्कृत के भविष्य कालिक "स" से सम्बन्ध है। पूर्वी राजस्थानी में धातु के साथ "स" लगाकर इस प्रकार के रूप बनते हैं। पश्चिमी राजस्थानी में भविष्य काल की सूचना के लिए प्रत्ययों से सहायता ली जाती है।

पूर्वी राजस्थानी √मारना

	उ० पु०	मध्यम पु०	अन्य पु०
एकवचन	मारस्यूं, मारसूं	मारसी	मारसी
बहुवचन	मारस्यां	मारस्यो	मारसी

दक्खिनी √मारना

एकवचन	मारसूं	मारसे, मारसी	मारसे, मारसी
बहुवचन	—	मारसीं	मारसीं

उदाहरण निम्न प्रकार हैं

√आ—उत्तम पु० ए० व०—के हरगिज़ न आसूं तेरे कहे मने (कु मु)
√कर—उत्त० पु०, ए० व—झगड़ने कूं न करसूं तुज सूं सुस्ती (फूल)
√हल— ,, ,, दिये बाज उसे यां ते हलसूं न मैं (कु मु)
√जी— ,, ,, किसी हात ना पीवसूं मद पिरम का (कु कु)
√कर— मध्यम पु० ए० व०— जे तूं कहसे रह्या ना कुच (इना)
√जा— ,, ,, क्या मुजते जासे न यां इस वजा (कु मु)
√हो— ,, ,, ऐस्यां केरा क़रीब न राखें जे तूं होसी सूरा (खुना)
√ला— ,, ,, आप जिस मारग लासी (खुना)
√आ— मध्यम पु० ब० व०— सभी दूरां न आसीं अजि तुज सम (कु कु)
अन्य पुरुष—एकवचन—
√कर— क्या उस करसे कोई निशान (इना)
√सक— अपड़ सकसे न उसकी गर्द कूं बाद
√आ— न आसे किसे याद दुश्मन का नाम (अ ना)
जा यूं ख़ुदी बेख़ुदी न आसी (मन)
√पा— इसकी बासों कित न पासे (कु कु)
√समज—ना समजसी कोई जो तेरी क़द्र का है— (अली)
√जा— गर यूं बी करे ख़ुदी न जासी (मन)
√हिल— प्रेर० हिला—इस किताब कूं सीने पर ते हिलासी ना भुलासी ना (सब) (सब)

सा—सी का प्रयोग पंजाबी में भी भविष्यकाल की रचना में किया जाता है, यह रूप संस्कृत के अधिक निकट है।

३७६. सम्भाव्य भविष्य

संभाव्य भविष्य काल में दक्खिनी में क्रिया का रूप खड़ी बोली से साम्य रखता है। खड़ी बोली में संभाव्य भविष्य के लिए निम्न प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

	उ० पु०	म० पु०	अन्य पु०
एकवचन	ऊं	एं	ए
बहुवचन	एं	ओ	एं

इन प्रत्ययों का संबंध संस्कृत के तिङ् प्रत्ययों से है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

उत्तम पुरुष ए० व० —√सट — सटूं गैर का तबअ ते धो गुबार (गुल)
,, ,, √चितर— ऐसा चितर चितरूं... (सब)
,, ,, √देख — ना कुच जुदाई देखूं (इना)
अन्य पुरुष ए० व० √घड़ — तुज घडे कहां अपार रूप (इना)
,, ,, √तुट — मैं करन हार ना तूटे तब (इना)

आकारान्त क्रियाओं के साथ "ए" "य" में परिवर्तित होता है—

√पा—जे अप खोजे पीव कूं पाय (इना)
अन्य पुरुष ए० व० √देख—याके देखें जैसा धूल (इना)

विधि और प्रार्थना

३७७. मध्यम पुरुष के एकवचन को छोड़कर विधि और संभाव्य भविष्य के रूपों में साम्य है। मध्यम पुरुष के एकवचन में बिना किसी प्रत्यय के धातु का प्रयोग होता है। आदर के लिए धातु के साथ "ओ" जोड़ देते हैं। खड़ी बोली की भांति दक्खिनी में "आप" सर्वनाम के साथ प्रयुक्त विधि अथवा प्रार्थना के लिए "इये" अथवा "ईजिये" का योग नहीं होता। इन दोनों प्रत्ययों का प्रयोग दक्खिनी में अपवाद स्वरूप ही हुआ है और वह खड़ी बोली के प्रभाव का द्योतक है। "ओ" का उद्‌भव "अत" से माना जाता है। "ए" की उत्पत्ति इस प्रकार है—असि>अहि>अइ>ए। खड़ी बोली के प्रभाव से दक्खिनी में जो "इय" का प्रयोग हुआ है उसकी उत्पत्ति कैलाग ने इस प्रकार दी है—मध्यम पुरुष ए० व० प्रा०-चलिज्जह, चलिज्जे, हि० चलिये।[1] मध्यम पुरुष के एकवचन में सामान्यतया बिना प्रत्यय के प्रयोग मिलते हैं। आदर के लिए प्रेरणार्थक क्रिया में "ओ" जोड़ा जाता था जो "आय" में परिवर्तित हुआ। कहीं कहीं "ओ" का प्रयोग भी होता है। कुछ शब्दों में "ओ" से पूर्व "व" श्रुति का प्रयोग होता है। एकारान्त धातुओं में राजस्थानी की भांति "ओ" से पूर्व "ए" "य" में परिवर्तित होती है। कुछ आकारान्त क्रियाओं में "य" श्रुति पाई जाती है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

√समज, √देख, √ला समज, देख, ल्या अताल (सब)
√अछ हर आन सुधन के सुद अछ (मन)
√दे आलम कूं ख़बर देव (मे आ) (देव=देओ)
√कर यक ख़ातिर करें करार (इना)
√देख मुहम्मद हमें ज्यूं दिखलाए त्यूं तुम्हें देखो (मेआ)
√सट नजर ना लगे त्यूं सटो अग सपन्द (कुकु)
√कह उसका क्या मुंज कहो अख़बार (इना)

---

१. कैलाग—ग्रा० हि० लैं० § ६०५, पृ० ३४७

√बिसला (प्रे) सबा के तख्त बिस लाओ (कुकु)
√जा कोई जाओ कहो मुज साजन सात (अली)
√जी जम जम जीवो (कुकु)
√दे वो जादूगर को नक्को द्यो (अ जा फ)
√भेज (प्रे) . . . अपने बेटे कूं जरूर भिजवाव (क चो रा)
√कर ना कीजे कहीं बंधान (इना)
√आ जो नजदीक जूं मिस्र के आइए (कुमु)
√दौड़ा (प्रे) अंगे एक हाजिब कूं दौड़ाइए (कु मु)

क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग विधि के रूप में किया जाता है :—

√खा सूजी सगुन के शकर निरगुन के पानी में पका कर खाना (मे आ)
√बैस उस पछानत में बैसना (शम कु)

३७८. कैलाग ने हिन्दी के सम्भाव्य भविष्य, सामान्य भविष्य तथा विधि के रूपों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी दी है।[1] इस जानकारी के आधार पर दक्खिनी के रूपों के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

भविष्य काल—प्रे० पु० ए० व०—चालसूं < प्रा० चलिस्सामि, चलिस्सम < सं० चलिष्यामि
" मध्यम पु० ए० व०—चालसी < प्रा० चलिस्ससि < सं० चलिष्यसि
" मध्यम पु० ब० व०—चालसो < प्रा० चलिस्सथ < सं० चलिष्यथ
" अन्य पु० ए० व०—चालसी < प्रा० चलिस्सइ < सं० चलिष्यति
" अन्य पु० ब० व०—चालसी < प्रा० चलिस्सन्ति < सं० चलिष्यन्ति

मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष में 'चलसे' आत्मनेपदी रूप का परिचायक है।

विधि प्रार्थना—उत्तम पु० ए० व०—चलूं < प्रा० चलामु < सं० चलाम
" उत्तम पु० ब० व०—चलें < प्रा० चलामो < सं० चलामः
" मध्यम पु० ए० व०—चल प्रा० चल < सं० चल
" मध्यम पु० ब० व०—चलो < प्रा० चलह, चलथम् < सं० चलत
" अन्य पु० ए० व०—चले < प्रा० चलो सं० < चलतु
" अन्य पु० ब० व०—चलें < प्रा० चलन्तु सं० चलन्तु

३७९. खड़ी बोली में सामान्य संकेतार्थ और सामान्य भूत को छोड़कर अन्य वर्तमान तथा भूतकालिक रूप धातु में प्रत्यय लगाने से नहीं बनते। कृदन्त रूपों तथा कृदन्त रूपों के साथ सहायक क्रिया 'होना' के योग से सामान्य वर्तमान, अपूर्ण भूत, सम्भाव्य वर्तमान, संदिग्ध वर्तमान, अपूर्ण संकेतार्थ, आसन्न भूत, पूर्ण भूत, सम्भाव्य भूत, सन्दिग्ध भूत और पूर्ण संकेतार्थ का बोध होता

---

१. कैलाग—ग्रा० हि० लैं० § ६०३, पृ० ३४४

है। वर्तमान तथा भूत काल के रूपों की रचना के लिए धातु के साथ कृत प्रत्यय जोड़े जाते हैं। कुछ वैयाकरण इस प्रकार के प्रयोगों को संयुक्त क्रिया का प्रयोग मानते हैं।

सामान्य वर्तमानकालिक

३८०. (१) कृत् प्रत्यय के रूप में धातु के साथ 'ता' जोड़ा जाता है। संस्कृत के वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय 'अत्' से इसका सम्बन्ध है। कैलाग ने इसके विकास का क्रम इस प्रकार दिया है—सं० पु० कर्ता—एकवचन चलन्—प्रा० चलन्तो, ब्रज— चलतौ, ख० बो० चलता।[1] संकेतार्थ सामान्य वर्तमानकालिक रूप का प्रयोग विशेषण के लिए भी किया जाता है। कहीं-कहीं इसका प्रयोग स्वतन्त्र क्रिया के रूप में भी होता है :—

स्वतन्त्र संज्ञा के रूप में—बहते में बाहर ल्याव (इ ना)
विशेषण के रूप में—कर्ता जानता भोक्ता है (इ ना)

सामान्य संकेतार्थ :—दक्खिनी में बिना किसी सहायक क्रिया के सामान्य-संकेतार्थ का वर्तमान काल में प्रयोग अधिकता से होता है।

ए० व०—एगाने कूं उन्ने देता, बेगाने कूं उन्ने देता (मे आ)
दन्दे दुश्मन के सर पर पाँव धरता (कु कु)
. . .दुश्मन नित संपड़ता (कु कु)
गगन होर धरत कूं देता तूं हस्ती (फूल)

पूर्वी हिन्दी के प्रभाव से कुछ लेखकों ने 'अता' के स्थान पर 'अत' का प्रयोग सामान्य संकेतार्थ काल के लिए किया है। इस प्रकार के प्रयोग अपवादस्वरूप हैं :—

काग़ज़ देखत ना होये काम (इ ना)
तन थंडट लरज़त जोबन गरजत (कु कु)
पिया मुख देखत. . . (कु कु)
ब० व०— इस बीज कूं बोलते निराकार (मन)
होते अनन्द खुशहाल सब नट गाते नाटकसाल सब (कु. कु)
स्त्री० लिं०—बिन ग्यान लसती उसकी छांवं (इ ना)
जे सुद आवती आदम कूं (इ ना)

सामान्य वर्तमान

३८१. सामान्य वर्तमान काल में सामान्य संकेतार्थ रूप के साथ √होना क्रिया से सहायता ली जाती है। पुरुष-वचन का प्रभाव सहायक क्रिया पर पड़ता है। स्त्रीलिंग में प्रयोग करते समय 'ता' को 'ती' बना देते हैं। कुछ स्थानों पर सामान्य वर्तमान काल के लिए बिना सहायक क्रिया के सामान्य संकेतार्थ रूप का प्रयोग करते हैं।

---

१. कैलाग—ग्रा० हि० लें० § ५९७, पृ० ३३९

पुल्लिग उत्तम पु० ए० व०√दे—	मैं तुझे देता हूँ	(मे आ)
,, ,, √मंग (=मांग)—	तहक़ीक मँगता हूँ	(मे आ)
,, ,, √चल—	चलता हूँ किधर मैं सो नई कुछ ख़बर	(गुल)
,, ,, √तलमल—	तुज याद कर तलमलती हूँ	(अली)
,, ,, √टंगा (प्रे०)—	टंगाती हूँ मैं यक जरस	(गुल)

ध्वनि सम्बन्धी परिवर्त्तनों के कारण√होना से सम्बन्धित 'ह' का लोप हो जाता है और उससे सम्बन्धित स्वर सामान्य संकेतार्थक 'ता' के पश्चात् आता है और स्त्री० 'ती' से जुड़ जाता है। कहीं-कहीं 'ता' के साथ भी सहायक क्रिया का अवशिष्ट स्वर संलग्न रहता है:—

पुल्लिग उत्तम पु० ए० व०	पहले मैं मझली बेगम कूं पूछताऊँ	(प ना)
	तुमारा गुलाम बनतौं	(क नौ हा)
		(बनतौं=बनता हूँ)।
स्त्री उत्तम पु० ए० व०	तुमारे पांव पडत्युं	(क नौ हा)
		(पड़त्युं=पड़ती हूँ)
,, ,,	गुलगुले तल को खिलात्युं	(क अ मा)
		(खिलात्युं=खिलाती हूँ)
अन्य पुरुष ए० व०	छिपाता है दिन रैन के भेस में (गुल)	

बहुवचन में प्राय: मुख्य क्रिया के 'ह' का लोप हो जाता है:—

पिव सात रीज रहना लज्ज़त इसे कते हैं (अली)
(कते हैं<कहते हैं)

एक वचन में भी कहीं-कहीं मुख्य क्रिया के 'ह' का लोप हो जाता है:—

कता है ख़ाब का इस धात ताबीर (फूल)
(कता है√कहता है)

अपूर्ण वर्तमान

३८२. अपूर्ण वर्तमान काल की रचना के लिए मुख्य धातु के साथ√रह धातु जोड़ते हैं और फिर सहायक क्रिया जोड़ते हैं। एक प्रकार से यह संयुक्त क्रिया का रूप है और पुरानी दक्खिनी में इस प्रकार के रूप का प्रयोग बहुत कम हुआ है:—

अन्य पु० ब० व० बाज़े शराब प्याले बेकैफ़ हो रहे हैं (अली)

सामान्य बोलचाल की भाषा में सहायक क्रिया का 'ह' लुप्त हो जाता है और स्वर√रह में मिल जाता है।√रह का 'ह' भी लुप्त हो जाता है। कुछ स्थानों पर सहायक क्रिया के 'ह' के स्थान पर 'य' उच्चरित होता है:—

वां क्या देख रैं (क इ पा)
(देख रैं=देख रहे हैं)।

लिबास पेन को हल्लू हल्लू आ री ये (क इ पा)

(आ री ये√आ रही है)

सामान्य भूत कृत् प्रत्यय – आ

३८३. खड़ी बोली में आकारान्त धातु के अन्त में भूतकालिक कृत् प्रत्यय 'आ' जोड़ा जाता है। प्राचीन आर्य भाषाओं में भूतकालिक क्रिया के भिन्न-भिन्न रूप थे, किन्तु म भा आ तथा न० भा० आ० में सामान्य भूतकालिक क्रिया वैशेषणिक रूप धारण करती है। चटर्जी इस प्रवृत्ति को द्रविड़ भाषाओं का परिणाम बताते हैं।[१] आकारान्त और ओकारान्त धातु के अन्त में 'या' जोड़ते हैं। ईकारान्त धातु के 'ई' को ह्रस्व करके 'या' जोड़ा जाता है। एकारान्त धातु के 'ए' को 'इ' बना कर 'या' जोड़ा जाता है। ब्रज में स्वर-विकृति के कारण अन्तिम अकार के स्थान पर 'य' उच्चरित होता है और कृत-प्रत्यय 'आ' 'ओ' का रूप धारण करता है। कैलाग के विचारानुसार सामान्य भूतकालिक कृत् प्रत्यय 'आ' की उत्पत्ति इस प्रकार है :—

ख० बो० आ∠प्रा० इतकः, सं०∠इतः। सं० चलितः7प्रा० चलितकः, चलितओ, चलिअओ7ब्रज-चल्यो7ख० बो० चला।[२]

चटर्जी का मत है कि यदि भूतकालिक कृत् प्रत्यय 'त' और 'इत' धातु में सम्मिलित नहीं होते तो त7अ, इत7इअ में परिवर्तित होता है। पंजाबी में दित्ता, दीता, कीता आदि रूप मिलते हैं। पंजाबी के प्रभाव से दक्खिनी में भी कुछ लेखकों ने कृत् प्रत्यय ता∠तः, इतः का प्रयोग किया है, किन्तु बोलचाल में इसका व्यवहार नहीं होता। बीम्स ने सामान्य भूतकालिक प्रत्यय का विस्तार से विवेचन किया है। उनके कथनानुसार संस्कृत कृत् प्रत्यय 'इत' का 'त' प्राकृत में 'द' बना—सं० हारितम्7प्रा० हारिदम्। महाराष्ट्री में 'द' लुप्त हो गया—हसितम्7हसिदम्7हसिअं। पुरानी हिन्दी में पुंल्लिगी एकवचन में इतः7इअ7यो बनता है। स्त्रीलिंगी एकवचन इअ7ई तथा बहुवचन इअ7ईं। मध्यकाल में कुछ बोलियों को छोड़ कर स्वर विकृति का 'य' लुप्त हो गया, किन्तु ब्रज तथा राजस्थानी में कुछ परिवर्तनों के साथ उसका प्रचलन रहा है। ब्रज-ए० व० मार्यो, ब० व० मर्या। इस सम्बन्ध में पहाड़ी भाषाओं का उल्लेख भी आवश्यक है। कुमाऊँ की भाषा में सामान्य भूत के एकवचन में—मारियो, ब० व० मारिया। खड़ी बोली में—

पुंल्लिग ए० व० इतः>आ, ब० व० इताः>ए। स्त्रीलिंग ए० व० इतः>ई, बहु व० ईं। पंजाबी में 'इतः' का 'इ' अवशिष्ट रहता है—एक व० मारिआ—ब० व० मारे। स्त्रीलिंग ए० व० मारी, ब० व० मारीआँ।[३]

पंजाबी के भूतकालिक कृत् प्रत्यय न भा आ के आरम्भिक काल से लिए गये हैं। खड़ी बोली की भाँति उनका विकास नहीं हुआ है।

---

१. चटर्जी—ओ० डे० बें० § ६२४, पृ० ८८०

२. केलाग ग्रा० हि० लें० § ५९८, पृ० ३४०

३. बीम्स कं० ग्रा० आ०, भाग ३, पृ० १३२

जहाँ तक भूतकालिक सामान्य कृत् प्रत्यय का प्रश्न है, दक्खिनी एक ओर खड़ी बोली से साम्य रखती है तथा दूसरी ओर उसका सम्बन्ध न भा आ के प्रारम्भिक रूपों से भी है। दोनों प्रकार के रूपों का विवरण इस प्रकार है :—

(१) पुरानी दक्खिनी में कुछ स्थानों पर पंजाबी की भाँति सं० 'इत' का इकार अकारान्त धातुओं में अवशिष्ट रह गया है और 'तः' 'या' में परिवर्तित हुआ है।

√बूज —बूजिया तो पीर का रूह	(मे आ)
√रह —तब चुप रहिया कोने लग	(इ ना)
√बोल —जो कुछ बोलिया सो जरम ना भरे	(इब्रा)

(२) पुरानी साहित्यिक दक्खिनी तथा आजकल की बोलचाल की दक्खिनी दोनों में ब्रज की भाँति अकारान्त धातु के साथ अन्तिम अकार तथा 'इतः' के इकार की विकृति 'य' में होती है, किन्तु 'तः' का रूपान्तरण ब्रज के समान 'औ' में न होकर खड़ी बोली की भाँति 'आ' में होता है :—

√लोर	—ते तुज लोर्या उसका होय	(इ ना)
√लोड़	—बुजुर्गी यूं आदमी की लोड्या सो तू च	(गुल)
√लोप	—ना कुच लोप्या फूफ पतर	(इ ना)
√घड़	—मथन कर तुज घड्या होय	(इ ना)
√मांड	—खेल जो मांड्या सदा काल	(इ ना)
√उमट	—उमट्या रूह का सब ठस्सा	(इ ना)
√सरज	—दो आलम कूं सरज्या	(गुल)
√दिस	—दिस्या जो नूर का झलका . . .	(अली)
√आख	—इस है में, नहीं में भेद आख्या	(मन)

(३) खड़ी बोली की भाँति अकारान्त धातु के साथ कृत् प्रत्यय आ<इतः का उपयोग भी दक्खिनी में बहुत पुराने समय से हो रहा है, किन्तु 'इया' अथवा 'इ' की स्वरविकृति के साथ 'इआ' का प्रचलन आ∠इतः की अपेक्षा अधिक रहा है।

एकवचन—पु०	√फूट—जे ऐसा ग्यान मुंज फूटा	(इना)
,,	√दीठ—संग उसके यूं कर दीठा	(इना)
,,	√देख—देखा रूप अपना . . .	(इब्रा)
एकवचन—स्त्री०	√घड़—ख़फ़ी सूं मिल घड़ी विसाल	(इना)
	√सट—नसीहत का तख़्ता सटी बुध विचार	(गुल)
	√सुह—सुही नहनपने में कमालत तुजे	(गुल)
	√मंग (मांग) मेरे सर पे दौलत जब आने मंगी	(गुल)
	√हो— . . . अक़्ल कसौटी हुई	(अली)

√कर के दोनों रूप करा और किया दक्खिनी में प्रचलित हैं। 'करा' का प्रचलन सामान्य बातचीत में अधिक है :—

यूं करा चांद निरमल रतन (इब्रा)
खल्क़ कूं इज़हार किया (मेआ)
किया रतन नागन . . . (इब्रा)
बहुवचन पु० √पहुँच— शहर कूं पहुँचे (मे आ)
√कूत— . . . अक़्ल ले कूते जितै (अली)

बहुवचन स्त्री०, पुरानी दक्खिनी में कहीं-कहीं यह रूप मिलता है :—

√हो— नक्द हज़ार बातां अल्ला कियां होर मुहम्मद किया हुयां (मेआ)

(४) आकारान्त धातु के साथ कहीं-कहीं इया ∠प्रा० इतकः से जोड़ते हैं :—

√आ— अक्ल जो भीतर सूं आइया भार (मन)

(५) आकारान्त धातु के साथ 'इया' ∠प्रा० इतकः के 'इ' का लोप होता है :—

ए० व० जा—तूं सुलतां मुहम्मद का जाया अली (गुल)
" कवा (कहवा, √कह का प्रे० रूप)—तो अहमद नाम कवाया (खु ना)
" पना (पहना, √पहन का प्रे० रूप)—पवन पर पनाया गगन का हवाब (अ ना)
" दिला (दे, प्रे० रूप)—अनारां वो गुलनार मुंज हत दिलाया (कु .कु)

बोलचाल की भाषा में स्त्रीलिंग के एकवचन में दीर्घ आ को ह्रस्व कर देते हैं :—

√बुला—शहज़ादी चुड़ियां पेनने कू बुलई (क सा। भा)

बहुवचन √बना (√बन, प्रे० रूप)—अरायश बनाये (मे आ)

(६) ईकारान्त धातु के अन्तिम 'ई' को ह्रस्व बना कर 'या' जोड़ते हैं :—

एक० व० √जी—जो अम्रित पिलाए तभी नई जिया (गुल)
बहु० व० √पी—हज़रत दूध पिये (मे आ)
" √कर—तुमने दूध पिये सो खूब किये (मे आ)

आसन्न भूत

३८४. आसन्न भूत के लिए धातु के सामान्य भूतकालिक कृदन्त रूप के साथ सहायक क्रिया √हो के वर्तमानकालिक रूप को जोड़ते हैं। उत्तम पुरुष के एकवचन में बोलचाल के समय हूँ √हो के 'ह' का लोप होता है और 'ऊं' अविकृत अथवा विकृत रूप में मुख्य क्रिया के साथ जुड़ता है। अन्य पुरुष में कुछ स्थानों पर 'है' < √हो के स्थान पर 'य' का प्रयोग मिलता है जो उच्चारण सम्बन्धी विकृति का परिचायक है। कुछ स्थानों पर 'है' 'ये' का रूप लेता है :—

अन्य पु० √खिला (प्रे०) केते फूल ऐसे खिलाया है होर (गुल)
" √सोस सोस्या है सफ़र के गरम होर सर्द (मन)

,,	√बोल— आपकू यो बोल्याय	(क जा फ)
,,	√कै (=कह)— शहज़ादी तुम कू लेको आव कैये	(क प श)
उत्तम पु०	√भिजा (भेज, प्रे०) सरफ़राज कर को भिजायूं	(मे आ)
		(भिजायूं=भिजाया हूँ)
,,	√जान—अता अनगिनत तेरी जान्या हूँ मैं	(गुल)
,,	√दिखा (देख, प्रे०)—दिखाया हूँ कर आज ऐसा हुनर	(गुल)
,,	√होना—मैं भोत खुश हुयौं	(क इ पा)
		(हुयौं=हुआ हूँ)

पूर्ण भूत

३८५. क्रिया के सामान्य भूतकालिक कृदन्त रूप के साथ सहायक क्रिया होना के भूतकालिक रूप के योग से पूर्ण भूतकाल की रचना होती है :—

पुल्लिग —√चितर —के सूरत अजायब वह चितर्या अथा	(फूल)
स्त्रीलिंग —√दहक —आग इश्क़ मने दहकी थी	(मन)

अपूर्ण भूत

३८६. अपूर्ण भूत की रचना मुख्य धातु तथा √रह के साथ √हो के भूतकालिक रूप के योग से की जाती है। उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण √रह √रा, रे बनती है :—

धड़क —दिल धड़क राय था	(क नौ हा)
√डूब—सूरज डूब रा च था	(क जा फ)
√पछता—अपने आप पछता रै थे	(क नौ हा)

३८७. दक्खिनी में √कर, √दे आदि कुछ धातुओं के भूतकालिक रूप पंजाबी से प्रभावित हैं :–

√दे	—उन इसमें जवाब दीता	(इ ना)
√कर	—इस्थूल थे तू कीता साक	(इ ना)
√कर	—सब कीता इसके काज	(इ ना)
	—फ़हम कीता इदराक़ धर हाथ तोल	(इ ब्रा)
	—तुम्हीं दिल के आलम कूं कीता वसी	(गुल)

३८८. सामान्य भूतकालिक कृदन्त रूप का प्रयोग विशेषण और संज्ञा के समान भी किया जाता है :—

विशेषण —हिर्स के कान सूं ग़ैर न सूना सो	(मे आ)
संज्ञा —चाहे तो खँडे कूं फिर मंडेगा	(मन)

संयुक्त क्रिया

३८९. दक्खिनी में मुख्य रूप से निम्नलिखित धातुएँ अन्य धातुओं से मिल कर संयुक्त क्रिया का निर्माण करती हैं :—

कर, जा, दे, पड़, लग, ला, ले, सक।

आरम्भिक काल से ही संयुक्त क्रिया के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। लिंग-वचन, पुरुष और काल के प्रत्यय संयुक्त क्रिया के द्वितीय अंश में जुड़ते हैं।

(१) क्रियार्थक संज्ञा के योग से—

"क्यूं बयान करने सकेगा (कु कु)
इशरत लग्या अत नाचने (कु .कु)
थान देखने लागा बालक (खु ना)
किस ठोर तूं है कहन लागा (इ ना)

(२) कृत् प्रत्यय युक्त क्रिया के मेल से :—

पैदा किया है (मे आ)
रूह कूं मोकल किया जतन (इ ना)
क्या लज़तें लज़त चाख्या जाय (इ ना)
लिख्या क्यों मेटा जाय (इ ना)
सो भूँ संपड़ा लिया मुंज कूं प्यारा (कु .कु)

(३) मूल धातु के योग से:—

गल आवे जूं पानी लौन (इ ना)
निस अँधारे जावे टल (इ ना)
खटपट में अवस यू उम्र घट गई (मन)
लिख्या क्यों मेट्या जाय (इ ना)
बारिक कमर ते खिस गया (अली)
यहूदी गया न्हाट यक हत चला (अली)
ले जावे ओ तुझ नक्शबंद पर ख़्याल (गुल)
खड़ा जां हो रन खांप दे मुझ कलम (अ ना)
क्यूं दोस्त सूं दोस्त भेट लेता? (मन)
रंगीली ओढ ले चादर... (कु .कु)
कोई ना सके भई दम मार (इ ना)
मत्या हस्त हैबत ते सो ना सके (गुल)

(४) संज्ञा के योग से :—

मोर्चा खाय वहाँ सकला ग्यान (इ ना)
जवाब ल्यावे समजे यूं (इ ना)
सख्त मन कर रांक क़रार (इ ना)

क्रिया और मुहावरा

३९०. दक्खिनी में कुछ संज्ञाओं के साथ विशिष्ट क्रियापद का प्रयोग होता है। उसी अर्थ को व्यक्त करनेवाले किसी अन्य क्रियापद के प्रयोग से वाक्य का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के प्रयोग बहुत पहले से रूढ़ रहे हैं। खड़ी बोली (उर्दू तथा हिन्दी) में प्रचलित इस प्रकार के रूढ़ प्रयोगों का अध्ययन बहुत महत्व रखता है। संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, प्राकृत तथा अपभ्रंश में जो क्रियापद विशेष अर्थ में रूढ़ थे, खड़ी बोली ने उनका अनुवादित रूप स्वीकार कर लिया और यह अनुवादित रूप धीरे-धीरे रूढ़ हो गया। प्रत्येक रूढ प्रयोग के विश्लेषण के कारण हम उसके मूल रूप से अवगत हो सकते हैं। खड़ी बोली के इस प्रकार के प्रयोगों को समझने में दक्खिनी की क्रियाओं से सम्बन्धित रूढ़ प्रयोग बहुत सहायक सिद्ध होंगे। यहाँ उदाहरण के लिए मुख्य-मुख्य रूढ़ प्रयोग प्रस्तुत किये जाते हैं :—

नमाज़ करना अथवा पढ़ना—मेराजुल आशिक़ीन में नमाज़ पढ़ना तथा नमाज करना दोनों प्रयोग मिलते हैं। आजकल हिन्दी (उर्दू) में नमाज़ पढ़ना प्रचलित है। फ़ारसी में 'नमाज़ करदन' प्रचलित है। फ़ा० नमाज़=सं० नमस् के लिए 'करना' उपयुक्त धातु है, 'पढ़ना' धर्मग्रन्थ के पाठ के लिए आना चाहिए। यह प्रयोग भारतीय भाषाओं के कारण आया है। उर्दू के कवियों ने भी 'नमाज़ करना' का प्रयोग किया है।

इमान लाना, नाउं (नाम) लेना, (मे आ)

कंचुली छोड़ना, हात आना, झल उठना, दुख-सुख मानना, रांट खाना, खेल मांडना, लंगर देना (फ़ा० लंगर-अन्दाख़्तन), फौत होना (फ़ा० फ़ौत शुदन), अतीत होना, ग्यान फूटना, दुख लगना, गुन पकड़ना, क्यों कर पाना, मान पकड़ना, याद रहना, पन्त (पन्थ) फैलना, सवाल देना जवाब लाना, क़रार रखना (क़रार गिरफ़्तन), नज़र खोना, डांवाडोल करना, भरम गुजरना, अपना बखान करना, फ़िदा करना, ठस्सा उमटना, फ़क्र करना, मुरछा खाना, मीर होकर बैठना, औतार देना, भाव पकड़ना, चाव लेना, आंक खोलना, आग सोसना, दिया चढ़ाना (ना तन मूस कर दिया चढ़ाव (इ ना), काम न करना, आशा भरना, थान पकड़ना, भेद पाना, रूप की खान होना, दम मार सकना, हात आना, गुमान धरना, सिर बला पड़ना, ज़ेर ज़बर पूछना। (इ ना)

आसन मारना, मैल टूटना, हात चढ़ना, लोडी बांधना (सु सु)

पग लागना, धूल में मिलाना, अंझू ढालना, हुक्म चलाना, लाड़ चलाना, भरम टूटना, मीठा लगना। (खु ना)

खेल रचना, जप करना, कला जागना, दाद देना। (इब्रा)

राख होना, आग लगना, भद देना, उतावल होना, दूर पड़ना, काम न आना, बात आना, हाथ पसारना, पर मारना, थाट बांदना, दामन चाक करना, अन्त पाना, हट बंदना, काम चलना, सच पूछना, न्याय निबेड़ना, सांप लड़ना (हि० सांप काटना, पं० सांप लड़ना), बिस चड़ना। (गुल)

घट होना, भारी होना। (अ ना)
होड़ बांधना। (न ना)

कीवाड़ लगाना, हवाले होना, गमन करना, सरल करना, महफ़ूज़ धरना, गले डालना, नाम पाना, सिर चड़ाना, भरम गंवाना, दुराई फिराना, लड़ पड़ना, खडग खींचना, चित चढ़ना, पानी फिराना, मन लगना, धंडोरा मारना। (अली)

सौं खाना, कहा न जाना, डेरा देना, दोस देना, मोल लेना, दिल बांदना, विचार करना, दंग होना, बात बनना, सर धरना, गांट खोलना, हात जोड़ना, हात धोना, दिन जगना, अंजू ढुलाना, ताज़गी जगना। (मन)

ताब लाना, गलसरी बांधना, पांव पड़ना, मजलिस भराना, बर लाना, आरती ढाल कर वारना, बलबल (बलि बलि) जाना, झोले खाना, महल बांधना, मस्ती चढ़ना, सौगन्ध खाना, लाय लाना (आग लगाना), भंवों में गांठ बाना, समय कटना। (कु क़ु)

सान देना, आज़ार पाना, हद बांधना, ढिंढोरा मारना, जोश मारना, ताली बजाना, जीव तोड़ना, शीशा फोड़ना, रज़ा लेना, हल होना, कमर बैठना, दुख सुनना, फूल चुनना, फन्दे में पड़ना, खलावे बांदना, ईमान बदलना, आह खींचना, सार (सवार) होना, माटी उड़ाना, मांदा पड़ना, मुख मोड़ना, सौं खाना, लश्कर चलाना, हवा बहना, घात करना, भबूती लगाना, काम करना। (फूल)

रास करना, शक लाना, जी देना, जनम खोना, सर पछाड़ना, ज़मीन चुकना, यारी जोड़ना, धाड़ मारना, उचाट पकड़ना, बाट पाना, नांव धरना, भांडा फोड़ना, पाप झड़ना, होड़ खेलना, दिन चढ़ना, सुबह पड़ना। (सब)

तीर मारना, सवार छोड़ना। (क इ पा)
जान पड़ना, अंगली पकड़ना। (क इ पा)
मंतर पड़ना (पढ़ना), धंडोरी पिटना, हात देना। (क नौ हा)
बात बनाना। (क जा फ)
दरोजा मारना, दरोजे लगाना, पेट होना। (क सा भा)
पेट होना। (क भा व)
दिन फिरना। (क स पा)
चोटी दालना। (गीत)

पूर्वकालिक क्रिया

३९१. स्वर्गीय कामताप्रसाद गुरु ने पूर्वकालिक क्रिया को अव्यय माना है। उनके विचार से पूर्वकालिक कृदन्त अव्यय धातु के रूप में रहता है। अथवा धातु के अन्त में 'के' 'कर' वा 'करके' जोड़ने से बनता है।[१] हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों में पूर्वकालिक क्रियाओं की दृष्टि से दक्खिनी कुछ विशेषता रखती है, अतः यहाँ पृथक् रूप से विचार किया जा रहा है। बोल-चाल की दक्खिनी में प्रायः मुख्य क्रिया के पहले उसके पूर्वकालिक रूप का प्रयोग भी किया जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

(१) उनो खाना बोल को खा लिया।
(२) मैं पढ़ना बोल को नईं च पढ़ा।
(३) तुम क्या गाली देना बोल को गाली दिये क्या ?

पूर्वकालिक क्रियाओं के सम्बन्ध में बंगाली तथा आसामी न भा आ में विशेष स्थान रखती हैं। इन दोनों भाषाओं में पूर्वकालिक क्रिया अथवा असमापिका क्रिया का अधिक प्रयोग तिब्बती-ब्रह्मी प्रभाव के कारण आया है। डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"कुछ विद्वानों का यह मत है कि बँगला व्यंजनों के ध्वनितत्व के विषय में पूर्वी बँगला की कुछ विशेषताएँ, तुर्क पूर्व समय के बँगला के विकास-काल में, उसपर पड़े हुए तिब्बती-ब्रह्मी प्रभाव के कारण ही आई हैं, विशेषतया 'च', 'ज' का त्स, द्ज़ के रूप में उच्चारण तथा रूप-तत्व एवं वाक्य-विन्यास विषयक कुछ बातें यथा बँगला, असमिया आदि भाषाओं में संस्कृत 'त्वा' और 'य' प्रत्ययों से संयुक्त 'असमापिका क्रिया' का बहुल प्रयोग।"[२] कुछ पहाड़ी बोलियों में पूर्वकालिक क्रियाओं का प्रयोग होता है।

बंगला-आसामी और पहाड़ी बोलियों की पूर्वकालिक क्रिया बहुलता और दक्खिनी के पूर्वकालिक क्रिया-बाहुल्य में अन्तर यह है कि धातु को क्रियार्थक संज्ञा का रूप देकर 'बोल के' अथवा 'बोल कर' जोड़ा जाता है। मुख्य क्रिया से पूर्व इस प्रकार के प्रयोग से क्रिया का उद्देश्य प्रकट किया जाता है। इस संबंध में तेलुगु और दक्खिनी में बहुत साम्य है। तेलुगु में प्रयुक्त पूर्व-कालिक क्रिया भी मुख्य क्रिया के उद्देश्य-द्योतन के लिए आती हैं। तेलुगु के कुछ वाक्य यहां उदा-हरण के लिए दिये जाते हैं :—

---

१. कामताप्रसाद गुरु—हिन्दी व्याकरण, पृ० ४४९

२. चटर्जी—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, पृ० १२३

वर्तमान काल — तिनवलेननि तिनुचुन्नानु —
मैं खाना बोलकर खा रहा हूं।

वेळ्ळवलेननि वेळ्ळुचुन्नानु —
मैं जाना बोल कर जा रहा हूं।

चदववलेननि चदुवुचुन्नानु —
पढ़ना बोलकर पढ़ रहा हूं।

भूतकाल — तिनवलेननि तिंटिनि —
मैंने खाना बोल कर खाया।

वेळ्ळवलेननि वेळ्ळितिनि —
मैं जाना बोल कर गया।

चदववलेननि चदिवितिनि —
मैंने पढ़ना बोलकर पढ़ा।

३९२. दक्खिनी में पूर्वकालिक क्रिया की रचना निम्न प्रकार की जाती है —

(१) खड़ी बोली की भांति दक्खिनी में भी कुछ स्थानों पर धातु के मूल रूप का प्रयोग पूर्वकालिक क्रिया के रूप में किया जाता है —

	यूं जान पूछना	(मे आ)
	उसकूं राखे ले वो हीर	(इ ना)
	है नहीं कर करे उनमान	(इ ना)
	बीब्यां कूं भी वही कर जाने	(खु ना)
	उस भूल जे कोई थाके	(खु ना)
	तेरे देक अदल कूं. . .	(फूल)
	न क्यों बैसे यकस ते एक लगलगग	(फूल)
	. . . .लह्या खुशकर नाम	(खु ना)
	मौजूद कर इस कर इसकूं क्यूं दिखाना	(मन)
	इश्क़ की सूरत कैसी है कर क्यूं कहा जाता	(सब)
प्रेरणार्थक क्रिया —	बोले उसकूं सब सिकला	(इना)
	दिखला नवल तमाशे	(अली)
	लग्या अहवाल पूछन बिसला	(फूल)

(२) हिन्दी से संबंधित कुछ बोलियों की भांति पुरानी दक्खिनी में धातु के साथ 'आय' प्रत्यय जोड़कर पूर्वकालिक रूप बनाया जाता था। आगे चलकर आय का प्रयोग लुप्त हो गया। जिन धातुओं के साथ 'आय' जोड़ा जाता था उन्हें भी 'क्त्वा' से संबंधित प्रत्यय जोड़कर पूर्वकालिक क्रिया के रूप में प्रयुक्त किया गया। 'आय' का संबंध संस्कृत के 'य' से है।

उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

जे कोई देखे खाक पझाय	(इ ना)
कोई लिया गुन निरन्तर धाय	(इ ना)
भर्या गंज क़ुदरत टिपारा भराय	(इब्रा)

(३) कर धातु के साथ √कर के योग से पूर्वकालिक क्रिया बनती है। इसका संबंध सं० कृ से है।

खुदा कू बिसर कर......	(मे आ)
दुसरा मलकूत की मंजिल सूं सैर कर कर..	(मे आ)
सो जाय कर आसमान पर	(कुकु)
भीतर गए हैं दीदे दुखों पैस कर	(कु मु)

(४) 'के' तथा 'को'—धातु में 'के' तथा 'को' के योग से भी पूर्वकालिक क्रिया बनाई जाती है। 'को' की उत्पत्ति √कृ+त्वा (सं० पूर्वकालिक प्रत्यय) से और 'के' की उत्पत्ति √कृ+य (सं० पूर्वकालिक प्रत्यय) से हुई।

उदाहरण:—

— के,	अगे होके......	(मे आ)
	चलो करके अर्ज़ किये।	(मे आ)
	फिर्या होके मजनूं	(गुल)
	के धरे ग़ैर कूं अछ के तेरी नज़र	(गुल)
	मिठाई पाके मन मेरा यू मजमूं चुन के ल्याया है।	(अली)
	यू नैन अवल धसके देखे नैन तुमारे	(अली)
	दरिया गर्मी सूं सुकके गदगड़े थे	(फूल)
	पूछ के बोलताऊं बोलके आया ऊं	(प ना)
	सात तीरां देके बोला	(क इ पा)
	वां के बेटियां छेवों शहजादों कूं करके लाए	(क इ पा)
—को'	ना कर सक को आलम कूं———	(मे आ)
	दिसें यक बुड़बड़े ते हो को कमतर	
	तमादारी सूं खाने जाको चारा	(फूल)
	हुआ ज्यूं सल्तनत कूं खोको पामाल	(फूल)
	शादी करको लाउंगा	(क इ पा)
	अम्मा-बावा मर को चले जाते	(क सा मा)

बोलचाल में 'कर' के पश्चात् 'को' के आने पर प्रायः 'र' का लोप होता है—

बिचारा हिरासा है कको जवैं बोले	(क नौ हा)
अच्छा कको पांचों काज़ी के सामने खड़े रिये	(क नौ हा)

अव्यय

३९३. दक्खिनी में प्रयुक्त अधिकांश अव्यय खड़ी बोली में भी प्रयुक्त होते हैं। कुछ अव्यय ऐसे हैं जो अन्य भाषाओं से प्राप्त हुए हैं अथवा जिन पर हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। अ फ़ा से प्राप्त होने वाले अव्यय हिन्दी में भी स्वीकार कर लिये गये हैं। कुछ अव्यय ऐसे हैं जो साहित्यिक खड़ी बोली में प्रयुक्त नहीं होते, किन्तु हिन्दी से संबंधित उपभाषाओं और बोलियों में उनका प्रयोग होता है। इस प्रकार के अव्ययों का प्रयोग इन उपभाषाओं के साहित्य में होता रहा है। हिन्दी तथा उससे संबंधित बोलियों के अतिरिक्त गुजराती तथा मराठी और पंजाबी ने दक्खिनी को कुछ अव्यय प्रदान किये और कुछ को प्रभावित किया है। यहां उन अव्ययों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, जो खड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से प्राप्त हुए हैं।

(१) अ फ़ा से प्राप्त अव्ययों में से अनेक को खड़ी बोली ने भी स्वीकार किया है। दक्खिनी में इस प्रकार के अव्ययों की संख्या अधिक है। अ फ़ा के अव्यय तत्सम रूप में ही प्रयुक्त होते रहे हैं। इस स्त्रोत से प्राप्त कुछ अव्ययों में उच्चारण संबंधी परिवर्तन हुए हैं—अ फ़ा से प्राप्त अव्ययों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:—

कालवाचक क्रिया विशेषण:—

बादज़	— बादज़ होए उस तन नास	(इ ना)
गाहे	— अहै गाहे मिठ गाहे कसाले	(फूल)
हमेशा	— हमेशा ताजा उस सूं सब जहां था	(फूल)
दायम	— मछी दायम जल में बसती	(सु स)
रोज़	— ——रोज़ करें तुज सरन	(अली)

स्थानवाचक क्रिया विशेषण:—

तरफ़	— बिछाया तरफ़ वो.....	(इब्रा)
नज़दीक	— तूं नज़दीक पन हम पड़े तुझ ते दूर	(गुल)
नज़ीक<नज़दीक	— नमाज़ के नज़ीक....	(मे आ)
	नज़ीक जाकर कह्या सुधन सुं	(अली)
क़रीब	— ऐस्या केरा क़रीब राखें....	(खु ना)

संबंध सूचक:—

	— दुक-सुक उसके क्या दुम्बाल	(इ ना)

दुम्बाल अथवा दुंबाला	— पीछे, पीछा। इसका प्रयोग शिवाजी के समय की मराठी में हुआ है।	
बिगर, बग़ैर	— सातवां शहज़ादा बिगर शादी के च था	(क इ पा)

परिमाणवाचक--

खूब	— मैं तो देख्या खूब ढंडोल	(इ ना)
कम	— मुहीतपने में दिसता कम	(इ ना)

विरोध दर्शक:—

वले	— वले अबके नज़रों यूं	(इ ना)
वलेकिन	— वलेकिन परस मिल कंचन मोल होय	(इब्रा)

संकेतवाचक व्यधिकरण:—

गर	— न होवे बाट गर फ़न करे अक्ल लाख	(गुल)
गरचे	— असमान गरचे गड़गड़े....	(अली)
अगर	— सब तुझमें अगर कहे तो सच है	(मन)
अगरचे	— अगरचे तेरा शाह लायक़ न होय	(इब्रा)

परिणामदर्शक—

बहरहाल	— बहरहाल मजलिस में राख्या पिरोय	(इब्रा)
ताके	— ताके करम तुज पै होय	(अली)
ता	— ता मस्त होके देखूं....	(अली)
यानी	— यानी यू भितर धसे ओ भार आये	(मन)

स्वरूपवाचक:—

गोया	— गोया ज्यूं नाल के ऊपर खिल्या है जल में कंवल	(अली)

संयोजक:—

व	— आदम व हव्वा....	(मे आ)
	खाकी रच्या व वैसा मूस	(इ ना)

उद्गारवाची—

काश	— काश, के दुनिया मैं होता में गदा	(पंछी)

(२) पंजाबी से प्रभावित:—

कालवाचक	— अज नूं (=आज ही, आज तक)	
	तरजता है गगन पर सूर अजनूं	(फूल)

स्थानवाचक — पिच्छे (हि०-पीछे)
तीरां छुटे पिच्छे... (क इ पा)

संयोजक — होर (=और)
होर यूं बी कहा न जाये तुझकूं (मन)
...नेम धरम होर किते (अली)

(३) मराठी तथा गुजराती :—

अवधारणवाचक—च, दक्खिनी में यह अव्यय मराठी से आया है और साहित्यिक तथा बोलचाल की भाषा में इसका प्रयोग बहुत मिलता है। मराठी में यह अव्यय अन्यव्यावृत्ति-वाचक अथवा कैवल्यवाचक है। दक्खिनी में कैवल्यवाचक अथवा अवधारणवाचक अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है। कुछ स्थानों पर "च" (ही) का प्रयोग मराठी की भांति शब्द में बिना किसी विकृति के होता है—

गर पीव सूं मिल पीव च होने मंगता है (सब)

कुछ स्थानों पर विभक्ति के पश्चात् 'च' का प्रयोग होता है—

यू इश्क़ जिधर लग्या उधर का च (मन)
है यू मेरा मेरे च पास (इ ना)

जिस शब्द के साथ दो कारक चिह्न लगते हैं, उन दो कारक चिह्नों के बीच में कभी-कभी 'च' का प्रयोग किया जाता है :—

बचन में च थे भार आते अहैं (क़ु मु)

कुछ शब्दों में 'च' से पूर्व अवधारण वाचक अव्यय 'ई' <ही का प्रयोग किया जाता है अकारान्त संज्ञा में यह 'ई' शब्द का अंश बन जाती है और अन्य शब्दों में स्वतंत्र बनी रहती है—

सूरज का आंच भोती च तेज होगा (फूल)
(भोती च,<भोत<बहुत+ई<ही+च)।
अव्वल दूदी च था (सब)
(दूदी च, दूद<दूध+ई<ही+च)।
के बनी च में हूं (सब)
(बनी च, बन+ई<ही+च)
.....येक ख़िले (क़िले) के अन्दरी च पाले पासे (क जा फ)
(अन्दरी च, अन्दर+ई<ही+च)
.....सैर सपाटे का भोति च शौक़ था (क जा फ)
चुपके ई च क्यों घबराते हैं। (पना)
यही है गोय ये ई च मैदान (फूल)

(जायसी के इस चरण से यह पंक्ति कितना साम्य रखती है—
अब यह गोइ इहै मैदानू (पद्मावत))

रीतिवाचक—हलूं, हल्लू हल्लू—

खड़ी बोली से सम्बन्धित बोलियों में हौले हौले (=धीरे धीरे) का प्रयोग होता है। मराठी में 'हळू' <प्रा० हलुअ<सं० लघु[1] का प्रयोग होता है। दक्खिनी का हलू, हल्लू इस रूप से अधिक साम्य रखता है—

या तूं बी बहुत हलूं चली जाय (मन)
....लिबास पेन को हल्लू हल्लू आरी ये (क इ पा)

नकारार्थक-नको, नक्को—

देखो पाशाजादे नको पूछो (क इ पा)
कलकल नको रे मूये जानां का घोर नक्को (खतीब)

स्थानवाचक और

सम्बन्धवाचक— अगल-गुजराती आगळ,
जिसके अगल सब हैं कार (इ ना)
धर्या है चांद नें ज्यूं टीक अपस मुक के अगल (अली)

(४) हिन्दी से संबंधित बोलियों से प्रभावित तथा प्राप्त अव्यय—

बाज — सम्बन्धवाचक अव्यय 'बाज' (=बिना)<प्रा० वज्ज<सं० वर्ज का प्रयोग अवधी में हुआ है—
गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक[2]

दक्खिनी के उदाहरण—

मुंज बाज तू दूसरा नहीं (इ ना)
पिया बाज प्याला पिया जाय ना (कु क़ु)
सजन मुख शमा बाज उजाला ना भावे (कु क़ु)
के उस बाज भइ कोइ दूजा न था (न ना)
सौगन्ध तेरा जो बाज तेरे... (मन)
......तुज शिफ़ा होय बाज (गुल)

---

१. जूल ब्लाक, पृ० ४८९, ४९०
२. जायसी—पदमावत २।९

ऐलाड़, पैलाड़--राजस्थानी से संबंधित कुछ बोलियों में ऐलाडी (=इस ओर) पैलाड़ी (= उस ओर) का प्रचलन है। दक्खिनी में 'ऐलाड़' तथा 'पैलाड़' स्थानवाचक क्रियाविशेषणों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

चोरी ऐलाड़ है (सब)
यू काम चोरी ते भी पैलाड़ है (सब)
नइं दिसता यू अक़्ल ते पैलाड़ है (सब)

३९४. दक्खिनी में प्रयुक्त अव्ययों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) अयौगिक (२) यौगिक।

यहां दक्खिनी के ऐसे अव्ययों का विवरण विशेष रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनका रूप खड़ी बोली के अव्ययों से भिन्न है। प्रसंगवश ऐसे कुछ अव्ययों का उल्लेख भी कर दिया गया है जो खड़ी बोली तथा दक्खिनी में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

३९५. क्रिया विशेषणवाची अव्यय :--

(१) स्थानवाचक क्रिया विशेषण—स्थानवाचक क्रिया विशेषण 'आगे' के निम्नलिखित रूप दक्खिनी में प्रचलित हैं—

अंगे, अंघे, अगल, आगे। इनका सम्बन्ध सं० अग्र, पं० अग्गे, हि०, आगे से है। अगल <गु० आगळ का परिचय पहले दिया जा चुका है।

जब सफ़ ते अंगे हो चल्या (अली)
जो उस नूर अंगे कर सके नमूद (गुल)
उसकी क़लमकारी अंगे..... (अली)
अंघे होना जे अफ़ाल (इ ना)
तुज तेग़ तेज आगे..... (अली)

पछे—सं० पश्च>राज० पाछे>द० पछे—

पछे मैं ले जाऊं जो होय मुज से टाक (गुल)

ऊपर-उपराल-ऊपर<सं० उपरि। उपारल की उत्पत्ति उपरि+आलय अथवा ख० बो० ऊपर+आल<आलय से हुई। इन दोनों का प्रयोग मुख्यतया संबंधसूचक अव्यय के रूप में होता है—

केते पलंग निहाली ऊपर केते पड़ें तल्हार (खु ना)
छिपें काम उपराल नाज़िर है वह (न ना)
इस निस में स्याह संग उपराल (मन)

तल्हार—दक्खिनी में 'तल' के अर्थ में 'तल्हार' का प्रयोग भी होता है। इस अव्यय का प्रयोग भी मुख्य रूप से सम्बन्ध सूचक अव्यय के रूप में किया जाता है—

केते पलंग निहाली ऊपर केते पड़ें तल्हार (खु ना)

नीड़े—द० नीड़े, राज० नीड़े, पं० नेड़े—

इस झूट के जिन पड़े नीड़े (मन)

पास—द०, ख० बो०—पास<सं० पार्श्व—

ककर पास तेरे च— (गुल)

न काल अंधारे पासा (इ ना)

सामने—सं० सम्मुख,—चल्या सामने उसके वईं ले के थाल (गुल)

कने—हि० कने, राज० कानी, गुज० काने<सं० कर्ण—

गुल आदम का लिया तुज कने मांग (फूल)

किधर, जिधर, इधर, उधर, तिधर, चौधर, चौंधिर—

बीम्स के विचार से इन अव्ययों में 'धर' का सम्बन्ध संभावित शब्द 'मुखर' से है, किन्तु डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने इस व्युत्पत्ति को ठीक नहीं माना है।[1] 'धर' का सम्बन्ध यदि सं० शब्द 'धरा' से मान लिया जाय तो व्युत्पत्ति में कठिनाई नहीं हो सकती। दक्खिनी, हरियाणी और खड़ी बोली के क्षेत्र के आस पास धर, धिर, धोरे आदि का प्रयोग दिशा और स्थान के अर्थ में होता है। दक्खिनी में प्रयुक्त धिर तथा चौधर अव्यय इस व्युत्पत्ति को प्रमाणित करते हैं। कि, जि, इ, उ और ति का संबंध प्रश्नवाचक तथा निश्चयवाचक सर्वनामों से है। 'चौधर' में 'चौ' संख्यावाचक है।

कां, कहां, कहीं, कईं, जां, जहां, यां, यहां, यहीं, वां, वहां, वइं, तहाँ

कहां, जहां, यहां और वहां का प्रयोग खड़ी बोली में होता है। निश्चयवाचक ई<ही के योग से कहीं, यहीं और वहीं रूप बनता है। 'ह्' के उच्चारण के सम्बन्ध में दक्खिनी की जो प्रवृत्ति रही है, उसके कारण इन अव्ययों से 'ह्' का लोप हो जाता है, जिससे कां, जां, यां और वां का रूप प्रयोग में आता है। इसी प्रवृत्ति के कारण 'कइं' और 'वइं' जैसे प्रयोग भी अस्तित्व में आये। इन अव्ययों में 'हां' की उत्पत्ति स० शब्द 'स्थान' से मानी जाती है। इन अव्ययों के प्रयोग निम्नलिखित उदाहरणों में देखे जा सकते हैं:—

मैं इस कारन भोत डरूँ डर कर जाऊं कहां
जहां मैं छिन लोडूं तो नहीं तहां तहां (खु ना)
. . . . डरूं तो कहां लग डरूं (खु ना)
ना कीजै कहीं बन्धान (इ ना)
वले काँ हुआ सो मालूम नहीं (मे आ)
हमें कां अर्थ कां से लाया है देक (न ना)

---

१. धीरेन्द्र वर्मा—हिं० भा० इ० § ३३२, पृ० ३१०

खड़े रह तो कां काफ़िये जोड़ पाय (इब्रा)
नहीं बज़्म इस सार का होर कइं (कु कु)
के ये जहां का तहां समाव (इ ना)
वले वो रखत पथर खान जां (इब्रा)
यू कुछ है यहां न हर कहां है (मन)
यं शाहिद तुरुम यहीं (इ ना)
सब वहां का जो कूच आरायश.... (मे आ)
वहां उस कूं दे ज्यूं के चिमटी कूं पर (गुल)
......न कर सक ओ वां (इब्रा)
वइं धड़ाम से गिर पड़ा (बो०)

दूर—सं० दूर—

तूं नज़दीक पन हम पड़े तुझते दूर (गुल)

वाहर—सं० बहिर्—

दक्खिनी में 'बाहर' के अतिरिक्त उच्चारण संबंधी प्रभावों के कारण इसी अव्यय का एक दूसरा रूप भी प्रचलित है— 'भार'।

इबलीस दिल थे दीसे भार (इ ना)
(भार<बाहर)

(२) कालवाचक क्रियाविशेषण—

आज<अद्य— कौल देखा या यूं कह आज (इ ना)
अजूँ<अज+हूँ— जें आज सौ काल था न कुछ और (मन)
अझूं<अज+हूँ— अजूं सन्दल शफ़क़ कां से (अली)
अझूं बन में तिस बुलबुलां का है शोर (गुल)

अताल (=अब) व्युत्पत्ति अज्ञात—

बहरी कर अताल बस यूं मज़कूर (मन)

अद, कद, कदी, कधीं, कधी, जकद, जद, जदाँ थें-तद—

'अद' (अब) 'कद' के अनुकरण पर बना है। 'कद' तथा 'जद' क्रमशः सं० कदा और यदा के रूपान्तर हैं। कद (=कब) और जद (=जब) का प्रयोग खड़ी बोली के क्षेत्र में होता है। हरियाणी में इनका प्रयोग प्रचलित है। कदी<कदा+ई<ही और कधी<कदा+ही (कभी)। कधीं में अनुस्वार का आगम हुआ है। जकद, जो, कद, तद, तदा-आजकल बोलचाल की दक्खिनी में इनका प्रयोग नहीं होता—

अद हुआ सब होनहार (इ ना)
निकली न थी कोठरी के कद भार (मन)

कदीं खूब चेहरा...... (गुल)
कधीं नूरे यूसुफ़.... (गुल)
ना मुंज कूं कधी भंग (इ ना)
जकद आव जिस काज तिस दाद दे (इब्रा)
न टुक धीर धर जद होवे बेक़रार (इब्रा)
जदां जीव तन सूं करेगा न दाग़ (न ना)
तद का यू हक़ीक़त मुहम्मद (मन)
फ़रिश्त्यां का न था फेरा तदां था नूर सो तेरा (अली)

अब, अबके, अबलग, अभी, अब्बी, कब, कभी, कभीं, कभू, कब्बी, जब, जभीं, तब, तभी—

बीम्स ने संकेतवाचक अ, इ और ए के साथ सं० शब्द 'वेला' के योग से इन अव्ययों का उद्‌भव माना है। 'अभी' और 'जभी' में अब और जब के साथ 'ही' का योग है। 'अब्बी' और 'कब्बी' दक्खिनी की द्वित्व प्रवृत्ति के द्योतक हैं। 'कब' में 'क' प्रश्नवाचक है।

अब तुज कहसूं तेरा मथन (इ ना)
वले अबके नज़रों यूं (इ ना)
अबलग तो किसे न राय पूछ्या (मन)
के कुच अपस ते अती नइं हुआ (न ना)
करें जभीं वह तीरत-पटन (खु ना)
कभू न परगट शौक़ (खु ना)
(कभू<कब+हू)
मैं भी मेरे लाड़ चलाया कभूं न हुआ उदास (खु ना)
जो अम्रित पिलाये तभी नइं जिया (गुल)

तुरतें<सं० त्वर, त्वरितम्—यह रूप पुरानी दक्खिनी में मिलता है—
कोइ यक हजें तुरतें जाय (इ ना)

(३) कालवाचक—अवधिसूचक—

'अब' 'जब' आदि के साथ 'लग' के योग से अवधि सूचक अव्यय बनते हैं—

अबलग — कोई अबलग हद तलक पोंचा सो नइं है (फूल)

जोलगों (जोलग)—
जो लगों नूर सूं दिनकर अछे... (अली)

तो लग — दिसता तो लग देखता मान (इ ना)

तबलग — तबलग तन थे ना होवे फ़ौत (इ ना)

जमजम — (स्थायी रूप से)—
जो कुछ मतलब सो तेरा है खुदा के पास जमजम (फूल)

नित<नित्य — करे खुरशीद कूं नित दस्तगीरी (फूल)
यत्ते में (=इतने में)—

यते में बडइ के घर कूं... (क नो हा)

लगालग — लगालग तीन दिन कीता सो मातम (फूल)

सदा — सदा सेहत की राहत सूं जिला तूँ (फूल)

३९६. सम्बन्धसूचक अव्यय

वाक्य में किसी शब्द का अन्य शब्दों से सम्बन्ध सूचित करने के लिए सम्बन्धसूचक अव्ययों का प्रयोग कारक-चिह्न की भांति होता है—

कन<सं० कर्ण, 'कन' (पास) का प्रयोग खड़ी बोली के क्षेत्र में किया जाता है—

वह मुक़ीम शाहिद कन (इ ना)
अपस कन बुला भेज.... (न ना)
सो उस शाह कन फूल क्यूं आन कर (इब्रा)
बचन अक़्ल कन सच पूछे तो गुलाम (गुल)

तल, तलें, तलार<सं० तल—इसका 'तले' रूप भी प्रयुक्त होता है, जो अधिकरण-कारक का रूप है। 'तलार' में 'तल' शब्द के साथ 'आर' सम्बन्धकारक का चिह्न है—

पुकार्या छजे तल..... (गुल)
चरन तल सीस ला अपना (अली)
टुटे गर्दन उसकी तलें सर पड़े (क़ु मु)
कंगोई अर्रे तले जो सर न देती (फूल)
......उस सर दायम तलार (सब)

तक, तलक, तलग—हार्नली ने 'तक' तथा 'तलक' की उत्पत्ति सं० 'तरित' से मानी है।[1] पूर्वी हिन्दी में 'तक' तथा पश्चिमी हिन्दी में 'तक' और 'तलक' का प्रयोग होता है। खड़ी बोली के साहित्य में 'तक' का प्रयोग होता है। दक्खिनी में तक और तलक के अतिरिक्त ध्वनि संबंधी परिवर्तन के कारण 'तलक' का प्रयोग भी किया जाता है—

झाड़ तलक (मे आ)
क़यामत तलग ना ढले बाद सूं (गुल)

धिर, धीर (निकट)=

पड्या शह यक धिर होर लश्कर यक धिर (फूल)
रहमत कर चुक मेरे धीर (इ ना)

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ३७५, पृ० २२६

पास<सं० पार्श्व—

ककर पास तेरे च.... (गुल)
न काज अंधारे पासा (इ ना)

पछे, पिच्छे<सं० पश्च—पछे तथा पिच्छे अधिकरण प्रयोग के कारण—

पछे मैं ले जाऊं जो होय मुज से टाक (गुल)
तीरां छुटे पिच्छे...... (क इ पा)

मंझार, मझ<सं० मध्य 'आर' सम्बन्धकारक का चिह्न-

वही नक़्श कर शाह दिल के मंझार (गुल)

बीच—हार्नली ने बीच की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा। उनका अनुमान है सं० 'वृत्ये' से इसका उद्भव हुआ।[1] अपभ्रंश में विच्च (=सं० वर्तमान) का प्रयोग हुआ है।

उदा०:— — पर्दा ओ जो बीच था गया फट (मन)

उपराल, भितराल—भितर सं० अभ्यंतर, आल<आलय। दक्खिनी में इसी तरह का दूसरा शब्द 'उपराल' भी प्रयुक्त होता है—

उपराल सं० उपरि+आलय।

रंगारंग जदवल उस उपराल कीता (फूल)
जज़ीरे के भितराल डरता धस्या (क़ु मु)

संग-संगात<सं० संग—

लाव-लश्कर के संगात जाता (क चो श)
फतर के संग सूं...... (फूल)

बिना—सं० बिना—

इन दो बिना ना हैं कुच (इ ना)

लक, लका, लगन (=तक)-लक और लका लग—

जिब्राईल तक उसे अंपड़ना (मे आ)
जोरू के तरफ़ पलट को देखते लका नै थै (क इ पा)
इस हद लगन ल्याये (सब)

३९७. रीतिवाचक अव्यय

यूं, जूं, ज्यूं, त्यूं, जूं के—कैलाग ने इनकी उत्पत्ति इस प्रकार मानी है—यूं<सं० इत्थम्।

---

१. हार्नली—कं० ग्रा० गौ० § ३७८, पृ० २४१

जूं, ज्यूं<यथा। त्यूं<सं० तथा।[1] चटर्जी के विचार से 'किम्' के अनुकरण पर जिम और तिम की उत्पत्ति हुई। पू० हि० में जिमि, तिमि का प्रयोग होता है। गुज० जेम, तेम। पश्चिमी अपभ्रंश में जेम्ब, तेम्ब, केम्ब का प्रयोग मिलता है जो जेवं, तेवं, केवं में परिवर्त्तित हुए। इन्हीं रूपों से हिन्दी के ज्यों, त्यों अथवा ज्यूं, त्यूं और जूं तूं का उद्भव हुआ। यह उत्पत्ति कैलाग की उत्पत्ति से अधिक उचित है।

किया जूं मेरे मन के मिस कूं कंचन (गुल)
यक भांत सूं यू बी यक ज्यूं है (मन)
जूं तुम आ कहें यूं उनमान (इना)
जूं उसका ठस्सा त्यूं (इना)
जूं के मुर्शिद कह्या जान (इना)

झट दना (झट से)—शहज़ादी झट दना दे डालती (कजाफ)
पटापट — पटापट फुलां मस्त पड़ते अथे (क़ुमु)
रामकरास (ठीक ठीक, उचित) व्युत्पत्ति अज्ञात—

सदक़े नबी का दास हूं मैं दास रासकरास हूं (कुक़ु)

सचींमुचीं--सचमुच—

सचींमुचीं यू फ़रिश्ता च है (सब)

३९८. अवधारणवाचक अव्यय

तो, तऊ—सं० तदपि—

निरगुन हुआ तो.... (मेआ)

भी, बी<सं० अपि—

उन्ने भी तबीब होवेगा (मेआ)
मैं भी मेरे लाड़ चलाया (खुना)
अछे इश्क़ जैसा भी...... (गुल)
यूं बी बूज...... (इना)
वो धनक बी क्या धनक जी...... (ख़तीब)

च (=ही) (सं० ३९३-३ में 'च' का विवेचन किया जा चुका है।)

३९९. (१) परिमाणवाचक—टुक हिन्दी से संबंधित बोलियों में इसका प्रयोग होता रहा है:—

उदा:— तू टुक हँस बोलती नई थी (कुक़ु)

---

१. केलाग—ग्रा० हि० लें०, § ६३७, सूची २६, पृ० ३७६

(२) संकेतवाचक व्यधिकरण—जे, जद<सं० यदि। ब्लाक ने इसकी उत्पत्ति सं० यत् से मानी है। मरा० और गुजराती में भी जे∠यदि का प्रयोग होता है।

जे मन धावे चारो धीर (इना)
जे ऐसा ग्यान पुंज फूटा (इना)

(३) कारणवाचक—क्यूँ कर, क्यूँ, केवं<अप० केम्ब<सं० किम् (किमिव)।

मून्या बीज क्यूं कर उगवे (सुसु)

(४) अधिकता बोधक—भोती च, भोत<बहुत+ई<ही+च—

सैर-सपाटे का **भोती** च शौक़ था (कजाफ)

(५) संयोजक—**और**∠सं०-अपर......और दूजा पढ़े (इना)

होर (संख्या-३९३।२ में विवेचन देखिए)

(६) स्वीकारार्थक—हो (=हां)—

हो मियां, मेरे से गलती हुयी (कसपा)
अरे हो मियां, सच्ची बी हम दोनों बेवखूबी च हैं (कसपा)

(७) निषेधार्थक—

न—आंक सूं गैर न देखना सो (मेआ)
नहीं—नहीं तो ये तन दिखता जड (इना)
नइं, नहीं—उन्ने नइं देता। (मेआ)
नैं, नैं, नइं, नई—
पन की सातवें की तीर कैं नैं मिली (कइपा)
कैं बी उसका पता लग्या नै (कइपा)

नको, नक्को (सं० ३९३।३ में विवेचन देखिए।)

(८) उद्देश्यवाचक—के (हि, कि)

यू आया तूं हुए फिर सारे मुरसिल
के फूल आगे, पिछे आते अहै फल (फूल)

(९) परिणामदर्शक—

सो—सो मुहम्मद कूं पांचा तन संवार कर.. (मेआ)
सो तिस कंदूरी लोन से... (कुक़ु)

(१०) विरोधदर्शक—

पर—मिलना होए पर... (इना)
पन-न काज अंधारे पासा

पन दीवे के परकासा (इ ना)

पन की—छह बेटों के तीर मिले, पन की सातवें की तीर. . . (क इ पा)

४००. उद्गारवाचक अव्यय

ऐयो (तेलुगु)— ऐयो, साया हुया तो बिल्ला च पैदा हो जाय। (क चो श)

ऐयो अम्मां — ऐयो अम्मां, तेरे से बड़ को है क्या ? (क स पा)

बारे — मुंज दुक-सुक ना है बारे (इ ना)

बारे, कहता हूं इता. . . . . . (अली)

बारे, रहे कुछ याद कारी (मन)

मां — कित्ता हुशार है मां। (क नौ हा)

वइ — (जोरू ने कहा) वइ, तुमारे अम्मां बी भैन रस्ते में मिल को. . . (क स पा)

वुइ — वुइ, मैं तो बन्दरनी हुयी। (क स पा)

वुइ, ये इनसान कू बिल्ला (क चो श)

वा रे वा (वाह रे वाह) —

अरे वा रे वा (क नौ हा)

वाक्य-विन्यास

प्राचीन काल में दक्खिनी का वाक्य-विन्यास किस प्रकार का था, यह जानने के लिए हमारे पास पर्याप्त गद्य-ग्रन्थ नहीं हैं। हमारे देश की अन्य भाषाओं की भांति दक्खिनी का प्राचीन साहित्य छन्दोबद्ध है, जो वाक्य-रचना की जानकारी प्रदान नहीं करता। प्रारंभिक काल के लेखकों में ख़ाजा बन्देनवाज़ ऐसे लेखक हैं, जो कई छोटी-छोटी गद्य-रचनाएं छोड़ गये हैं। शाह बुरहानुद्दीन जानम ने भी कुछ धार्मिक ग्रन्थ लिखे हैं। मध्यकालीन दक्खिनी के वाक्य-विन्यास की जानकारी वजही के दो गद्य ग्रन्थों—सबरस और ताजुल हक़ायक से भी अधिक सहायता नहीं मिलती। जहां तक 'सबरस' का सम्बन्ध है, वह यद्यपि कविता में नहीं लिखा गया है, फिर भी उसमें वाक्यांशों अथवा वाक्यों को तुकान्त बनाने की प्रवृत्ति है। 'ताजुल हक़ायक' इस सम्बन्ध में अधिक सामग्री प्रस्तुत करता है। इन दिनों बोलचाल की दक्खिनी और खड़ी बोली के वाक्य-विन्यास में विशेष अन्तर नहीं है। इसीसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुराने समय में भी खड़ी बोली और दक्खिनी के वाक्य-विन्यास में कोई अन्तर नहीं रहा होगा। जहां तक प्राचीन उदाहरणों का प्रश्न है, खड़ी बोली की अपेक्षा दक्खिनी के उदाहरण अधिक पुराने और विश्वस्त हैं।

आरंभिक काल में दक्खिनी का वाक्य-विन्यास आजकल की खड़ी बोली के गद्य के समान व्यवस्थित था, किन्तु कहीं कहीं अरबी तथा फारसी की वाक्य-रचना का प्रभाव दिखाई देता है। क्रियापद वाक्य के आरंभ अथवा मध्य में प्रयुक्त हुआ है—

कहे इन्सान के बूजने कूं. . .	(मे आ)
तिसरा शहद गाफ़िल कूं देव दुनियां की लज्जत में. . .	(मे आ)
खुदा कहा नमाज के नज़ीक नको हो मस्ती के हाल में	(मे आ)
ज़ौक़ हुआ वस्ल का. . .	(मे आ)
उनौ बी नमाज करते अपने अपै।	(मे आ)
शिफ़ा पाये तूं.	(मे आ)

ख़ाजा बन्देनवाज की रचनाओं में इस प्रकार के व्यवस्थित वाक्य भी मिलते हैं—

"नौ बापां के—सात मावां के—चार फ़रज़न्द थे। तीन नंगे, एक कूं कपड़ा च न था। उसके आस्तीन में पैके (पैसे) थे। चारों मिलकर बाज़ार कूं गये और बाज़ार चौबीस जनां का था। उस बाज़ार में चार कमानां थियां।" —शिकारनाम

वाक्य के पूर्वार्द्ध में विशेषण के रूप में वाक्यखण्ड को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह प्रवृत्ति १९वीं शती तक ब्रजभाषा में और खड़ी बोली के आरंभिक काल तक 'जो

है सो' वाली शैली में दिखाई देती है। मराठी में इस समय भी विशेषणवाची वाक्यखंड का प्रयोग प्रचलित है। खाजा बन्देनवाज़ की रचनाओं में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है —

पीव मना किया सो परहेज...... (मे आ)
जिसे कपड़े सो उसकी आस्तीन में पैंके थे। (शिकारनामा)

शाह मीरांजी और शाह बुरहानुद्दीन के गद्य में भी हम इसी प्रकार का वाक्य-विन्यास पाते हैं—

"होर दरूद अपने रसूल पर भेजना और उनके फर्ज़न्दां पर होर सब उम्मत के खासां पर सो ये मानी है के अपसकूं देखकर बन्दगी करो, कह्या पैग़बर कूं होर पैग़बर के फर्जन्दां कूं होर सब उम्मत कह्या। होर मुहम्मद पर दरूद भेजना, सो ये मानी होर उनों के फर्ज़न्दां पर...।

—शरह मरगूब उल क़ुलूब

मध्यकाल में वाक्य-रचना अधिक व्यवस्थित होने लगी। क्रियापद का प्रयोग आज की भांति होने लगा और 'जो है सो' की शैली लगभग समाप्त हो गई। आधुनिक खड़ी बोली के गद्य में हम जैसा वाक्य-विन्यास देखते हैं, उसका बहुत कुछ परिष्कृत रूप वजही की रचनाओं में मिलता है—

"....हर कोई भी अपने खुदा सूं एक राज़ रखता है।"

"अरे तालिब, कत्ते हैं अबल खुदा च था। भइ कुछ न था। तो एता कुच यूं कां ते पैदा हुआ है। कां थे आया है? उस ठार वो कुच लाज़िम आता है। या आपरी थे यू पैदा किया है। या आप में जुहूर हुआ है।"

—ताजुल हक़ायक़

आजकल बोलचाल की दक्खिनी में वाक्य-विन्यास इस प्रकार है—

उसके बाद छोटी शहज़ादी रोज़ जंगली फलां खाती, नमाज़ और क़ुरान पढ़ती हुई दिन गुजारने लगी। एक दिन छोटी शहज़ादी फलां तोड़ रह थी। क्या देखती है कि सामने से एक बुड्ढी आ रही है। जंगल बियाबान में बुड्ढी कू देख को शहज़ादी कू जरा हिम्मत हुई, जब बुड्ढी नज़दीक आई तो शाहजादी से पूछी अगे बेटी, तू इत्ती खूबसुरत है, आखिर तुझे क्या दुक है जो तू इत्ता रो री ये? शहज़ादी उसकू अपनी पूरी कता सुनाई और उसे बोली—'ऐ नानी, दुवा कर के खुदा मेरे दिन फेर दे।"

(कहानी सबर पाशा)

परिशिष्ट १

दक्खिनी का धातुपाठ

दक्खिनी की धातुओं को वर्गीकरण और व्युत्पत्ति के साथ देने के विचार से यह सूची तैयार की गई है। दक्खिनी में धातुओं का प्रयोग अधिक हुआ है और उनका अध्ययन भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहां कुछ धातुओं को अक्षर क्रम से केवल परिचयार्थ सूचिबद्ध किया गया है। अरबी-फ़ारसी की धातुओं के साथ करना, होना आदि लगा कर जो क्रियाएँ बनाई जाती हैं, उनका उल्लेख इस सूची में नहीं है। उच्चारण की दृष्टि से जिनसे धातुओं के एक से अधिक रूप प्रचलित हैं, उनका उल्लेख भी यथास्थान किया गया है। यह सूची पूर्ण नहीं हैं। लेखक इस दिशा में प्रयत्नशील है। शीघ्र ही दक्खिनी के शब्दकोश में इस सूची को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया जाएगा।

१. अंदेशना
२. अंपड़ना, अपडना (पहुंचना, पाना) अपड़ाना (सक०)
३. अघांना, अघवाना (प्रे०)
४. अचना, अछना (रहना, होना)
५. अटकना
६. अड़ना
७. अड्ड़ाना
८. अबरेकना (देखना)
९. अभासना (आभास देना)
१०. आना
११. आखना (कहना)
१२. आज़माना
१३. आनना (लाना)
१४. उगना
१५. उचना, उचाना-उछाना (सक)
१६. उछलना, उछालना (सक)
१७. उठना, उठाना (सक)
१८. उड़ना, उड़ाना (सक)
१९. उतरना
२०. उनपना (उत्पन्न होना)
२१. उपजना
२२. उपसना (उपासना करना)
२३. उपाना (उत्पन्न करना)
२४. उबरना
२५. उभटना (उभरना)
२६. उलंगना (लांघना)
२७. उलझना
२८. उलेंडना (लांघना)
२९. ऊठना-उठना
३०. ऐंठना
३१. ओड़ना-उढ़ाना
३२. कचकचाना
३३. कचवाना (गुज० असंतुष्ट होना)
३४. कड़ना (कढ़ना) काड़ना (काढ़ना)
३५. कड़कना

३६. कतरना
३७. क़बूलना
३८. करना
३९. कलकलाना
४०. कलाना (कहलाना)
४१. कसना
४२. कसबिकसना
४३. कहना, कहाना, कहवाना
४४. काटना
४५. कुड़ना (कुढ़ना)
४६. कुमलाना
४७. कुहकना
४८. कूकना
४९. कूतना
५०. कोसना
५१. खँडना (टूटना)
५२. खदेड़ना
५३. खपना-खपाना
५४. खमना (झुकना)
५५. खांपना (झुकना)
५६. खसना
५७. खाना, खिलाना
५८. खिकरना
५९. खिजना, खिजाना
६०. खिलना, खिलाना,
६१. खिसना
६२. खींचना, खेंचना
६३. खुजाना
६४. खुलना, खुलाना
६५. खोंचना
६६. खोजना
६७. खोरना
६८. गंवाना
६९. गड़गड़ाना (गरजना), गड़गड़ाना
७०. गमना (खोना), गमाना (सक)
७१. गहना (पकड़ना)
७२. गलना, गालना, गलाना
७३. गाजना (गरजना), गजाना
७४. गाड़ना
७५. गाना, गवाना (प्रे०)
७६. गिनना, गिनवाना (प्रे०)
७७. गुंदना (गूंथना), गूंदना (गूंथना-सक)
७८. गुज़रना, गुज़ारना
७९. गुनना (गूंथना), गुनाना (प्रे०)
८०. गुमना (खोना)
८१. गुरगुराना
८२. घटना
८३. घड़ना
८४. घालना
८५. घूरना
८६. घेरना
८७. घोलना
८८. चकना (चखना), चाखना, चकाना
८९. चड़ना, चढ़ना, चढ़ाना
९०. चमकना
९१. चलना
९२. चहचहाना
९३. चांपना (दबाना)
९४. चाटना
९५. चाबना
९६. चिंतना, चींतना
९७. चिकलना (कुचलना)
९८. चितरना-चितारना
९९. चिलाना (चिल्लाना)
१००. चीनना (पहचानना)
१०१. चुंकना, चूखना
१०२. चुनना
१०३. चुबना (चुभना)

१०४. चुरमुराना
१०५. चुराना
१०६. चुलबुलाना
१०७. चुभना
१०८. छकना
१०९. छपना (छिपना)
११०. छड़ना, छाड़ना (छोड़ना)
१११. छलना
११२. छानना
११३. छाना
११४. छिजना
११५. छिनकना, छिनकाना
११६. छिपना, छुपना, छिपाना
११७. छुटना, छूटना
११८. छेदना
११९. जकड़ना
१२०. जगमगाना
१२१. जड़ना
१२२. जनना (जन्म देना)
१२३. जनाना (प्रकट करना)
१२४. जपना (सेवा करना)
१२५. जलना, जलाना, जालना
१२६. जागना-जगाना
१२७. जानना
१२८. जामना
१२९. जीना-जिलाना
१३०. जुड़ना-जुड़ावना
१३१. जुरोना (जुड़ाना)
१३२. जोड़ना
१३३. जोना (देखना)
१३४. झगड़ना
१३५. झड़ना
१३६. झड़झड़ाना
१३७. झमकना
१३८. झलकना
१३९. झलझलना
१४०. झांकना
१४१. झांपना (ढक देना)
१४२. झड़ना
१४३. झुटलाना (असत्य भाषी बनाना)
१४४. झुटालना (खाद्य पदार्थ झूटा करना)
१४५. झूलना, झुलाना
१४६. टलना, टालना
१४७. टांगना-टंगाना
१४८. टिकना
१४९. टिटकना
१५०. टुटना, टूटना
१५१. ठाड़ना (खड़े रहना)
१५२. ठानना
१५३. ठारना (ठहरना)
१५४. ठेलना
१५५. ठोकना
१५६. ठोसना
१५७. डंकारना
१५८. डगमगाना
१५९. डाटना (भीड़ करना)
१६०. डालना
१६१. डूना (ढुलकना)
१६२. डूबना, डुबना-डुबाना (सक)
१६३. ढुलमुलना-ढुलमुलाना (सक)
१६४. ढंढोलना
१६५. ढलना
१६६. ढलकना
१६७. ढांपना
१६८. ढालना
१६९. ढुंडना, ढूडना, ढुंदना
१७०. ढोना, ढुलाना
१७१. तकना

१७२. तलना
१७३. तड़खना
१७४. तड़तड़ना
१७५. तड़पड़ना, तरफड़ाना
१७६. तपना, तापना
१७७. तरसना
१७८. तलना
१७९. तलमलना
१८०. ताजना (ताज पहनना)
१८१. ताड़ना
१८२. तिलमिलाना
१८३. तैरना, तीरना-तिराना, तैराना (सक)
१८४. तोड़ना
१८५. तोलना
१८६. थडना (ठंडा होना)
१८७. थकना, थाकना
१८८. थपकना
१८९. थपना
१९०. थमना, थामना
१९१. थिजना (चकित रहना)
१९२. थिरकना
१९३. थूकना
१९४. थोपना
१९५. दपना (पीना)
१९६. दबना
१९७. दड़ना (छिपना)
१९८. दटाना (डटाना)
१९९. दहकना
२००. दागना (दाग़ना)
२०१. दाटना (डाटना-मारना)
२०२. दालना (डालना)
२०३. दिकना, दिखना, दिखलाना
२०४. दिसना (दिखाई देना)
२०५. दीठना, दिठना
२०६. दीपना-दिपाना
२०७. दुंदलाना, धुंदलाना
२०८. देखना
२०९. देना-दिलाना
२१०. दौड़ना-दौड़ाना
२११. धकधकाना, धगधगाना
२१२. धड़धड़ना
२१३. धरना
२१४. धसना
२१५. धाना (दौड़ना)
२१६. धारना
२१७. धुजना, धूजना
२१८. धुनना
२१९. धूंडना
२२०. धूजना, धुजना
२२१. धोना, धुलाना (प्रे०)
२२२. नंगाना (लज्जित करना)
२२३. नवाजना
२२४. नांदना (ध्वनि करना, रहना)
२२५. नाना (झुकाना), नवाना (प्रे०)
२२६. नाचना, नांचना-नचाना (प्रे०)
२२७. निकलना
२२८. निगलना
२२९. निझाना
२३०. निपजना
२३१. निपाना (पैदा करना)
२३२. निबाड़ना (निबेड़ना)
२३३. निभाना
२३४. निवारना
२३५. निसारना
२३६. नहाटना (भागना)
२३७. न्हासना (नष्ट होना)
२३८. पंगाना (पेंग मारना)
२३९. पकना

२४०. पकड़ना
२४१. पछानना (पहचानना)
२४२. पझाना
२४३. पठाना
२४४. पड़ना
२४५. पड़ना, पढ़ना-पढाना
२४६. पनपना
२४७. पनवाना (पालन कराना)
२४८. पन्हाना (पहनाना)
२४९. परखना
२५०. पलटना, पलठना
२५१. पलाना (रोना, चिल्लाना, गाना)
२५२. पसारना
२५३. पस्ताना (पछताना)
२५४. पाना
२५५. पागना (तर करना, डुबाना)
२५६. पाड़ना (नष्ट करना)
२५७. पालना
२५८. पिंजना (पीनना)
२५९. पिगलना (पिघलना)
२६०. पिटना
२६१. पिनजना (पैदा होना)
२६२. पिनाना, पिन्हाना (पहनाना)
२६३. पीना
२६४. पीसना-पिसाना (प्रे०)
२६५. पुकारना
२६६. पुराना (पूरा करना इच्छा पूर्ण करना)
२६७. पूचना, पूछना-पुछाना (प्रे०)
२६८. पेखना (देखना)
२६९. पेरना (खेत बोना, हल चलाना)
२७०. पैनना (पहनना)
२७१. पैसना (प्रवेश करना)
२७२. पोंचना, पौंचना (पहुंचना)
पोंचाना (सक)
२७३. फंसाना
२७४. फड़कना
२७५. फड़फड़ना-फड़फड़ाना
२७६. फबना
२७७. फरमाना
२७८. फहना
२७९. फाँकना
२८०. फांदना (लांघना)
२८१. फाटना (फटना)
२८२. फाड़ना
२८३. फिरना
२८४. फिसलना
२८५. फुलना-फुलाना
२८६. फुसलाना
२८७. फूंकना
२८८. फूटना, फुटना
२८९. फेंकना
२९०. फेड़ना (कर्ज उतारना, चुकता करना)
२९१. फैंटना (पैठना)
२९२. फैरना (पहरना, प्रवेश करना)
२९३. फैलना
२९४. बंटना, बंटाना (प्रे०) बांटना
२९५. बंदना, बंधना, बांधना, बंधाना
२९६. बकना
२९७. बखानना
२९८. बड़बड़ाना
२९९. बनना, बनाना
३००. बखेरना
३०१. बख्शना
३०२. बजावना (बजाना)
३०३. बढ़ना-बढ़ाना
३०४. बताना
३०५. बनना (बांधना)
३०६. बरजना

३०७. बरतना
३०८. बरसना-बरसाना
३०९. बलना (जलना)
३१०. बसना
३११. बहकना
३१२. बहलाना
३१३. बांचना (बचना)
३१४. बाजना (बजना)
३१५. बाना (डालना)
३१६. बिकना-बिकाना
३१७. बिघाना (भगाना)
३१८. बिचकना
३१९. बिचारना
३२०. बिछाना
३२१. बिछुड़ना
३२२. बिड़ाना (नष्ट करना)
३२३. बिनजना, बिनजाना (उत्पन्न करना)
३२४. बिरखाना (बखेरना)
३२५. बिलखना
३२६. बिलोना
३२७. बिसरना-बिसराना
३२८. बिसाना
३२९. बिहाना (बिताना)
३३०. बीराजना
३३१. बुझना, बुझाना
३३२. बूड़ना, बुड़ाना
३३३. बूजना (बूझना)
३३४. बेचना
३३५. बैठना-बिठाना (प्रे०)
३३६. बैसना (बैठना)-बिसलाना (प्रे०)
३३७. बोलना
३३८. बौराना
३३९. ब्यापना
३४०. भगना-भागना
३४१. भजना
३४२. भड़कना
३४३. भरना
३४४. भरमना
३४५. भाना (अच्छा लगना)
३४६. भाजना (भागना)
३४७. भिड़ना
३४८. भिगाना
३४९. भिनभिनाना
३५०. भिरकना (बुरकाना) भिरकाना
३५१. भूनना
३५२. भूलना
३५३. भेजना-भिजाना (प्रे०)
३५४. भेदना
३५५. भोकना (भोंकना)
३५६. भोगना
३५७. भोराना (बहकाना, बहलाना)
३५८. मंगना
३५९. मंडना, मांडना, माडना
३६०. मडना (मढ़ना), माड़ना
३६१. मड़ोड़ना, मरोड़ना
३६२. मतना (विचार करना)
३६३. मतरना
३६४. मनना-मनाना
३६५. मरगोलना (पक्षियों का कलवर करना)
३६६. मरना-मारना
३६७. मसलना
३६८. महकना
३६९. माना (समाना)
३७०. मानना
३७१. मिलना-मिलाना
३७२. मुचना (बन्द होना)
मूचना (बन्द करना)
मूंचना (बन्द करना)

३७३. मूंडना
३७४. मूसना
३७५. मोड़ना
३७६. मोलना
३७७. मोहना
३७८. रंगना-रंगाना (प्रे०)
३७९. रखना, राखना-राकना
३८०. रगड़ना
३८१. रचना-रचाना
३८२. रहना
३८३. राजना (राज्य करना)
३८४. रानना (राज्य करना)
३८५. रीजना, रीझना-रिझाना
३८६. रूसना
३८७. रोना
३८८. रोलना
३८९. लकना (लखना)-लखाना
३९०. लगना
३९१. लजाना
३९२. लड़ना (लड़ना, डसना)
३९३. लपेटना
३९४. लरज़ना (कांपना)
३९५. लसना
३९६. लहना (प्राप्त करना)
३९७. लहलहाना
३९८ लागना (लगाना)
३९९ लादना
४०० लिखना
४०१ लिड़ना (पैरों में लोटना)
४०२ लिपटना
४०३ लीपना, लेपना
४०४ लुबदाना, लुबधाना
४०५ लुभाना
४०६ लूंचना
४०७ लूटना
४०८ लेखना-लेकना (देखना)
४०९ लेटना-लिटाना (प्रे)
४१० लोचना (नोचना)
४११ लोड़ना (इच्छा करना)
४१२ लोरना (इच्छा करना)
४१३ वटवटाना (बड़बड़ाना)
४१४ वारना
४१५ सँचना
४१६ सँपड़ना (सपड़ना)
४१७ सँवरना, सँवारना
४१८ सटना (डालना, रखना, पटकना, अलग करना)
४१९ सताना
४२० सनना
४२१ समजना, समझना
४२२ समाना
४२३ समेटना
४२४ सरना (पूरा होना)
४२५ सरजना
४२६ सलना
४२७ सलकना (सरकना)
४२८ सहलाना
४२९ सांदना
४३० साजना
४३१ साधना
४३२ सारना
४३३ सिकना (सीखना), सिकाना, सिखाना, सिकलाना
४३४ सिदारना, सिधारना
४३५ सिरजना
४३६ सुंगना-सुंगाना
४३७ सुखना, सुकना
४३८ सुनना-सुनाना

४३९ सुमरना
४४० सुहना, सुहाना
४४१ सूतना (पीटना)
४४२ सेकना
४४३ सेवना (सेवा करना)
४४४ सोना-सुलाना
४४५ सोचना
४४६ सोधना
४४७ सोसना
४४८ सोहना
४४९ सौंपना
४५० शतालना (गंदा करना)
४५१ हँसना
४५२ हकालना
४५३ हटकना
४५४ हड़बड़ाना
४५५ हारना
४५६ हिलना-हिलाना
४५७ हिलगना
४५८ हिलजना
४५९ हुंकारना

परिशिष्ट २

सहायक पुस्तकें

(१) पाणिनि — अष्टाध्यायी

(२) वररुचि — प्राकृत प्रकाश, व्याख्याकार—रामपाणिवाद, सम्पादक—डाक्टर सी० कुन्हनराजा, के० रामचन्द्र शर्मा।

(३) हेमचन्द्र — प्राकृत व्याकरण, प्रकाशक—श्री हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटण—१९८३ वि०।

(४) कामताप्रसाद गुरु — हिन्दी व्याकरण, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(५) मोरो केशव दामले — शास्त्रीय मराठी व्याकरण, प्रकाशक—केशव भिकाजी ढवले, बुक्सेलर बम्बई-१९२५ ई०।

(६) — — मध्य गुजराती व्याकरण ने साहित्य रचना।

(७) डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी भाषा का इतिहास, (तृतीय संस्करण) प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, १९४९ ई०।

— ब्रजभाषा, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग—१९५४ ई०।

(८) डाक्टर बाबूराम सक्सेना — एवोल्यूशन आफ़ अवधी, प्रकाशक—इंडियन प्रेस, इलाहाबाद—१९३७ ई०।

— दक्खिनी हिन्दी, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग—१९५२ ई०।

(९) किशोरीदास वाजपेयी — हिन्दी-शब्दानुशासन, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी—सं० २०१४ वि०।

(१०) थामस एफ़. कमिंग्स और टी. ग्राहम बेली — पंजाबी मैनुअल ऐण्ड ग्रामर, प्रकाशक—बेपटिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता—१९२५ ई०।

(११) डाक्टर मसऊद हुसेन खां — तारीख ज़बान उर्दू, (उर्दू में) प्रकाशक—आज़ाद किताब घर, दिल्ली—१९५४ ई०।

(१२) डाक्टर मुहीउद्दीन क़ादरी ('ज़ोर') — हिन्दुस्तानी फोनेटिक्स—१९३० ई० इम्प्रिमेरी ला यूनियन टाइपोग्राफिक विलेन्यूव-सेंट-जार्जेस।

(१३) जी० ए० ग्रिअर्सन — लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया।

(१४) महमूद शीरानी — पंजाब में उर्दू (उर्दू में), प्रकाशक—अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू, लाहौर—१९२८ ई०।

(१५) डी० सी० फिल्लट — हाइअर पर्शिअन ग्रामर, प्रकाशक—कलकत्ता-यूनिवर्सिटी, कलकत्ता—सन् १९१९।

(१६) डब्लू० एच० टी० गर्डेनर — द फोनेटिक्स आफ़अरेबिक, प्रकाशक—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस—१९२५ ई०।

(१७) केटल — ग्रामर आफ़ कनडा लैंग्वेज

(१८) के० वी० सुब्बैया — द्राविडिक स्टडीज़ (भाग २), प्रकाशक—मद्रास गवर्नमेंट, मद्रास—१९१९ ई०।

(१९) डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी — ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट आफ द बेंगाली लैंग्वेज, प्रकाशक कलकत्ता यूनिवर्सिटी—कलकत्ता—१९२६ ई०।

— भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, प्रकाशक — राजकमल प्रकाशन, बम्बई—१९५४ ई०।

(२०) जान बीम्स — ए कम्परेटिव ग्रामर आफ़ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस आफ़ इण्डिया, प्रकाशक—ट्रबनर ऐण्ड कम्पनी, लन्दन, प्रथम भाग १८७२ ई०। द्वितीय भाग १८७५। तृतीय भाग १८७९ ई०।

(२१) डाक्टर ए० एफ० रूडोल्फ हार्नली — ए कम्परेटिव ग्रामर आफ़ द गौडियन लैंग्वेज़ेस, प्रकाशक—ट्रबनर ऐण्ड कम्पनी, लन्दन—१८८० ई०।

(२२) डाक्टर ए० एफ० रूडोल्फ हार्नली — हिन्दी धातु संग्रह, प्रकाशक—आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा—१९५६ ई०।

(२३) जूल ब्लाक — ला फार्मेशन दे ला लैंग्वो मराथे का मराठी अनुवाद 'मराठी भाषे चा विकास' अनुवादक--वासुदेव गोपाल परांजपे। १९४१ ई० प्रकाशक--वासुदेव गोपाल परांजपे, फर्ग्युसन कालेज, पूना-४।

(२४) पिशेल् — जर्मन भाषा में लिखित पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद, कम्परेटिव ग्रामर आफ द प्राकृत लैंग्वेजेस, अनुवादक--सुभद्र झा, प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी। १९५७ ई०।

(२५) कृ० पां० कुलकर्णी — मराठी भाषा : उद्गम व विकास-१९३३ई०।

(२६) कृ० पां० कुलकर्णी और पारसनीस — अर्वाचीन मराठी, प्रकाशक--कर्णाटक पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई।

(२७) जी० ए० ग्रिअर्सन — मैथिली लैंग्वेज आफ़ नार्थ बिहार। एशियाटिक सोसाइटी, ५७ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-१८८१ ई०।

(२८) राबर्ट काल्डवेल — ए कम्परेटिव ग्रामर आफ़ द्रविडियन लैंग्वेजेस, प्रकाशक--ट्रबनर ऐण्ड कम्पनी, लन्दन-१८७५ ई०।

(२९) तगारे, गजानन वासुदेव — हिस्टारिकल ग्रामर आफ़ अपभ्रंश, डेक्कन कालेज, पूना-१९४८ ई०।

(३०) एम० शेषगिरि शास्त्री — नोट्स आन आर्यन ऐण्ड द्रविडियन फिलोलाजी।

(३१) एस० एच० कैलाग — ग्रामर आफ़ दी हिन्दी लैंग्वेज, केगन पाल, ट्रेंच, प्रकाशक ट्रबनर ऐण्ड कम्पनी लि०, ब्राडवे हाउस, ६८-७४, कार्टर लेन, इ० सी० ४; १९३८ ई०।

(३२) प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ — प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ-समिति, टीकमगढ़-१९४६ ई०।

(३३) चन्दबरदाई — पृथ्वीराज रासो, प्रकाशक-साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर--प्रथम संस्करण २०११ वि०।

(३४) कबीर — कबीर-ग्रन्थावली, सम्पादक—श्यामसुन्दर-दास, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी—२०११ वि०।

(३५) मलिक मुहम्मद जायसी — पद्मावत, व्याख्याकार—डाक्टर वासुदेव-शरण अग्रवाल; प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झांसी)—२०१२ वि०।

(३६) तुलसीदास — रामचरित-मानस, प्रथम संस्करण। प्रकाशक—राजपाल ऐण्ड सन्स, दिल्ली, टीकाकार—रामनरेश त्रिपाठी।

(३७) पृथ्वीराज राठौड़ — बेलि क्रिसन रुक्मणी, सम्पादक—रामसिंह और सूर्यकरण पारीक, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

(३८) इंशा — रानी केतकी की कहानी।

(३९) ख्वाजा बन्देनवाज़ — मेराजुल आशक़ीन।

1. सम्पादक—अब्दुलहक़; प्रकाशक—ताज प्रेस, छत्ताबाज़ार, हैदराबाद।
2. सम्पादक—खलीक़ अंजुम, प्रकाशक—मकतबे शहे राह, उर्दू बाज़ार, दिल्ली।
3. सम्पादक—गोपीचन्द नारंग, प्रकाशक—आज़ाद किताब घर, कलाल महल, दिल्ली।

— शिकार नामा (हस्तलिखित)

(४०) मीरांजी शम्सुल उश्शाक़ — खुशनामा (हस्तलिखित)

(४१) बुरहानुद्दीन जानम — इर्शाद नामा (हस्तलिखित)

— सुख सुहेला (हस्तलिखित)

(४२) मुहम्मद क़ुली क़ुत्बशाह — कुल्लियात मुहम्मद कुली क़ुत्बशाह, सम्पादक—डाक्टर मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' प्रकाशक—सालारजंग दक्खिनी प्रकाशन, समिति, हैदराबाद।

(४३) वजही — ताजुल हक़ायक (हस्तलिखित)

(४४) वजही — सबरस, सम्पादक—श्रीराम शर्मा प्रकाशक—दक्खिनी प्रकाशन समिति हैदराबाद—१९५५ ई०।

— क़ुत्ब मुश्तरी, सम्पादक—विमला वाघ्रे और नसीरुद्दीन हाशमी, प्रकाशक—दक्खिनी-प्रकाशन समिति, हैदराबाद–१९५४ ई०।

(४५) मोमीन दकनी — इसरारे इश्क़ (हस्तलिखित)

(४६) ग़वासी — सैफुल मुलूक व बदी उल जमाल, सम्पादक—राजकिशोर पांडे और अकबरुद्दीन सिद्दीकी, प्रकाशक—दक्खिनी प्रकाशन समिति हैदराबाद–१९५५ ई०।

(४७) इब्ने निशाती — फूलबन

१. सम्पादक—अब्दुलक़ादर सरवरी, सालार-जंग दक्खिनी पब्लिकेशन, हैदराबाद।

२. सम्पादक—शेख चांद, प्रकाशक—अंजुमन-तरक्क़ी-ए-उर्दू पाकिस्तान, करांची।

(४८) अली आदिल शाह (द्वितीय) — अली आदिल शाह का काव्य संग्रह, सम्पादक—श्रीराम शर्मा और मुबारिज़ुद्दीन 'रफ़त', प्रकाशक—आगरा विश्वविद्यालय, आगरा-१९५८ ई०।

(४९) अब्दल — इब्राहीमनामा (हस्तलिखित)

(५०) नुसरती — अलीनामा (हस्तलिखित)

— गुलशने इश्क़, सम्पादक—अब्दुलहक़, प्रकाशक—अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू, पाकिस्तान, करांची।

(५१) वजदी — पंछीनामा।

(५२) क़ाज़ी महमूद बहरी — मनलगन, प्रकाशक—अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू, पाकिस्तान, करांची।

(५३) मुहम्मद अमीन अयागी — नजात नामा, सम्पादक—मुबारिज़ुद्दीन 'रफ़त'।

(५४) श्रीराम शर्मा — दक्खिनी का पद्य और गद्य, प्रकाशक—हिन्दी-प्रचार-सभा, हैदराबाद–१९५४।

(५५) व्यास — महाभारत, सम्पादक—वी०ए० सुखटणकर, प्रकाशक—भांडारकर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, पूना-१९३२ ई० तथा इसके पश्चात्।

(५६) वाल्मीकि — रामायण, पंडित-सभा, काशी।

(५७) हारूंखा शेरवानी — द बहमनीज आफ़ द डेकन, प्रकाशक—सऊद मंजिल, हिमायत नगर, हैदराबाद—१९५३।

(५८) अबुल मजीद सिद्दीक़ी — हिस्ट्री आफ़ गोलकुण्डा। प्रकाशक—लिटरेरी पब्लिकेशन्स, हिमायतनगर, हैदराबाद।

(५९) यदुनाथ सरकार — हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब, प्रकाशक—सरकार ऐण्ड सन्स, कलकत्ता—१९१४ ई०।

(६०) — द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया (मुगलकाल)—१९३७ ई०।

(६१) विन्सेण्ट स्मिथ — अकबर, प्रकाशक—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी-१९१७ ई०।

(६२) बनारसीदास सक्सेना — हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ देहली, प्रकाशक—इण्डियन प्रेस इलाहाबाद—१९३२ई०

कोष

(६३) महाराष्ट्र-ज्ञान-कोश।
(६४) महाराष्ट्र-शब्द-कोश।
(६५) हिन्दी-शब्द-सागर।
(६६) जोडणी-कोश (गुजराती)
(६७) हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी (फालन)
(६८) फ़हरंगे आसफ़िया।
(६९) फहरंगे आनन्दराज।
(७०) नेपाली इंग्लिश डिक्शनरी (टर्नर)

अनुक्रमणिका

छ

ज

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

श